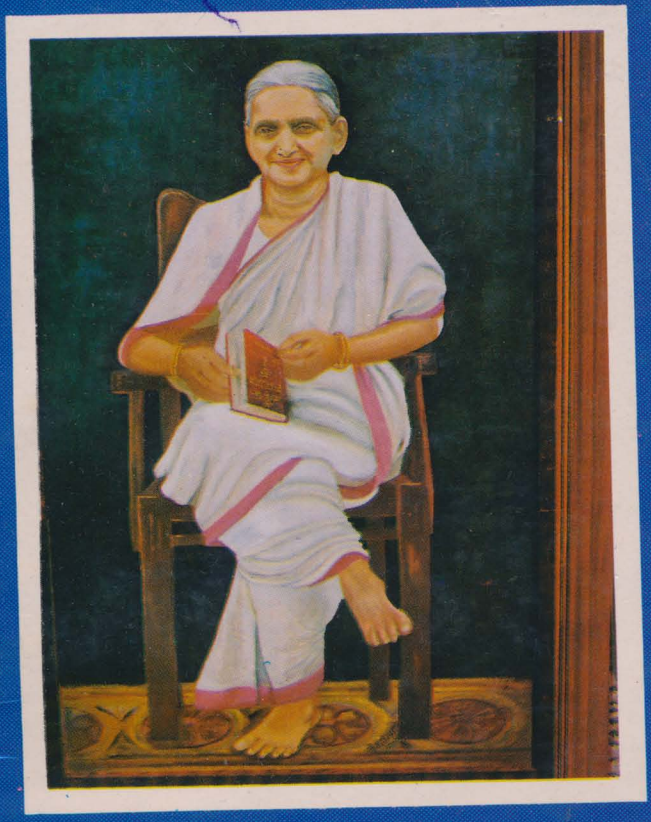

दीपज्योति नमोऽस्तुते

सुशीला महाजन

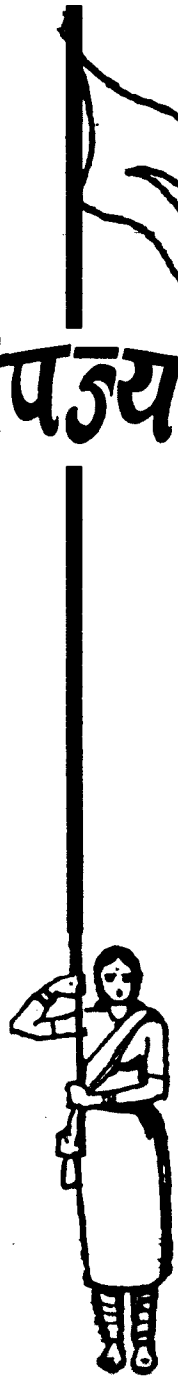

दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते

राष्ट्र सेविका समिति की
संस्थापिका कै. वं. लक्ष्मीबाई
तथा मौसी जी केलकर की
जीवन गाथा

मूळ लेखिका : सुश्री सुशीला महाजन

हिंदी रूपांतर : सुश्री सुनीता परांजपे
'चंद्रलोक' ४ थी मंजील,
टेम्भी नाका, ठाणे - ४०० ६०१.

◆ **सेविका प्रकाशन** ◆
अहल्या मंदिर, धंतोली
नागपुर.

© **सेविका प्रकाशन**

◆ **आवरण और अंतर्गत सजावट** ◆
अरुण फडणीस

◆ **मुद्रक** ◆
जनसेवा मुद्रणालय, पुणे.

◆ **टाईपसेटर** ◆
कॉम्प्युटेक्स्ट, पुणे.

मूल्य साठ रुपये

◆ **प्रथमसंस्करण** ◆
शके १९१७.
सन १९९५.

राष्ट्र सेविका समिति का कार्य निस्पृहता से
और निष्ठापूर्वक करनेवाली सभी
सेविकाओं को समर्पण

सदिच्छा

राष्ट्र सेविका समिति की संस्थापिका वं. लक्ष्मीबाई तथा मौसी केलकर का जीवनचरित्र मराठी में १९८६ में लिखा गया । श्रीमती सुशीलाताई महाजन से लिखी इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद होना जरूरी था। संयोगकी बात है, सुशीलाताई अनेक बार मुझे याद दिलाती रही पर अनुवाद का काम मेरे से नही हो सका। दिन बीतते रहे। अब देर से सही, पर हिंदी भाषिको को वं. मौसी जी के जीवन का परिचय अनुवाद के माध्यम से हो रहा है। एक स्त्री संपूर्ण देश की बहनों में स्त्री शक्ती का साक्षात्कार कर सकती है ; यह उदाहरण हम सभी को प्रेरणा देता है। दुर्गामाता यह भारतीय स्त्री का प्रतिक है यह वं. मौसी जी ने प्रथम समाज को बताया। इस पुस्तक में उसका भी विस्तार से वर्णन आया है।

वं. मौसी जी श्रद्धालु थी, परंतु अंधश्रद्धा से कोई भी पूजापाठ नहीं करती थी। प्रभु श्रीराम पर उनका अतीव श्रद्धा भाव था क्यों कि वह पुरुषोत्तम था, महामानव था। उनके रामायण प्रवचन से इसका अनुभव श्रोताओं को होता था। मैंने उनके साथ अनेक तीर्थ स्थान देखे। वहां हमें अनुभव आता था कि वं. मौसी जी हर स्थान का महत्त्व राष्ट्रीय दृष्टीसे बतलाती थी। केदारनाथ की यात्रा में उन्होंने हमे कहां, "देखो अपने पूर्वजोंकी दूरदृष्टी। सुदूर दक्षिणके लोग केदार नाथ के दर्शन के लिए आते है, तो स्वाभाविक हीं उन्हें अपनी उत्तर सीमाओंका ज्ञान होता है -" नेपाळ में हम गये थे वहां भी चीन की सीमा को लगा छोटासा व स्वतंत्र हिंदुराष्ट्र, हिंदु संस्कृती का दर्शन वं. मौसी जी को पुलकित कर गया।

वं. मौसी जी के व्यक्तीत्व के अनेक पैलू, जैसे आत्मविश्वास, देशभक्ति, कर्तव्य तत्परता अत्यादि गुणों का दर्शन इस जीवनी से हिंदी भाषिकों को अब हो रहा है। मूल मराठी में लिखी पुस्तक का हिंदी अनुवाद भी अच्छा हुआ है। इस तरह की पुस्तके पढकर अपने देशकी सीमा, देशके नागरिक, देशकी स्थिती इसका सम्यक ज्ञान पढने वालों को होता है। यह केवळ एक कर्तृत्ववान स्त्री की जीवनी नही किन्तु यह पुस्तक अखिल महिलाओं के जीवन की प्रेरक शक्ती है।

लेखिका और हिंदी रुपांतरकार सुश्री. सुनीता परांजपे जी को मन:पूर्वक धन्यवाद ! इस पुस्तक को हर व्यक्ती पढे और अपने घर-परिवार संस्कारित करे यही मेरी मनोकामना है।

सिंधुताई फाटक
महावीर मंदिर, सत्यम सिनेमा मोड
नई दिल्ली - ११०००८

कृतज्ञता

राष्ट्र सेविका समिति की शाखाए आज हर एक प्रांत में हैं। बालिकाओं से लेकर प्रौढ महिलाओं में समिती कार्य फैला हुआ है। उन्हे समिति की संस्थापिका वं. लक्ष्मीबाई तथा मौसी जी केलकर का परिचय होना अत्यावश्यक है। इसके साथ ही समिति कार्य के बारें में भी सम्यक व पूरी जानकारी हो इस धारणा से मैने सन १९८६ में वं. मौसी जी की जीवनी मराठी में लिखी। नागपुर संमेलन में इसका प्रकाशन हुआ। उस समय से अपनी राष्ट्रभाषा में इस पुस्तक का अनुवाद होने की अनेक सेविकाओं का मांग रही। मैने भी बहुत कोशिश की। आखिर हैदराबाद के हिंदी आर्टस कालेज की प्राचार्या डॉ. सुशीला जी व्यापारी ने मेरी मदद करने की ठान ली और अनुवाद करने की शुरुवात भी की। लेकीन उन्हें अपने पदभार से समय निकालना मुश्किल था। पर इससे मेरा हौसला तो बढ गया। बंबई में मेरी सहायता करने श्रीमती सुनीता जी परांजपे आ गयी। उन्होंने आत्मियता से अनुवाद की जिम्मेदारी उठायी और अथक परिश्रम से नियोजित समय में अनुवाद का कार्य पुरा भी किया। उनके पिता, ज्येष्ठ पत्रकार श्री. मो. ग. तपस्वीजी ने पुस्तक को आमुख से सम्मानित किया। उन सबके प्रोत्साहन से ही यह अनुवाद की थोडी देरी के बाद ही सही हिंदी भाषिकोके सामने आ रहा हैं। मैं इन तीनों की अत्यंत आभारी हूं।

समिती के सेविका प्रकाशन ने पुस्तक प्रकाशित करने की अनुमति दी, तथा छपाई के काम में पुणे के शिल्पा प्रकाशन ने पूरा सहयोग दिया, उनकी मैं ऋणी हूं। मुखपृष्ठ और अंतर्गत सजावट पुणे के चित्रकार श्री. अरुण फडणीस और छपाई का काम कॉम्प्युटेक्स्ट ने आकर्षक ढंग से किया है। मैं उन्हें धन्यवाद देती हूं।

बहुत दिनों की मेरी मनोकामना पुरी हो रही हैं। वं. मौसी जी के असामान्य कर्तृत्व व प्रखर ध्येयनिष्ठा से प्रेरणा लेकर अनेक सेविकाएं समिति कार्य में अपना तन मन अर्पित करे तब ही इस लेखन का हेतू सफल होगा।

सुशीला महाजन
५/५७ विष्णु प्रसाद सोसायटी,
विले पार्ले पूर्व, मुंबई ४०००५७.

आमुख

हमारे भारतवर्ष की महानता का तथा उसके चिरंजीवी बने रहने का कोई रहस्य हो तो यही कि उसकी माटी से समय समय पर ऐसे रत्न जन्मे है; जिन्होंने उसे महान बनाने में अपने सर्वस्व को होम दिया है। ऐसे असाधारण स्त्री-पुरुष हर युग में यहां हुए हैं। किन्तु सारे भारत के जनजीवन को उन्नत करने का ध्येय सामने रखते हुए सामान्य से असामान्य बने व्यक्ति यदा कदा ही जन्म लेते हैं। जनजीवन का आधा संसार नारी-जगत है। इस जगत में भी जो रत्न पैदा हुए उनकी तो सारे देश को जानकारी भी नहीं है। भारत की महान नारियों में जब भी देखों इनेगिने नामही पढ़े और पढ़ाए जाते हैं। उनके अतिरिक्त भी ऐसी कई नारियाँ यहां हो गइ हैं, जिन्होंने जीवनभर किए प्रयासों के कारण ही इस देश के नारी-जगत को समाजोन्मुख बनाया है। आवश्यकता है, समय की मांग भी है कि उनकी जीवन कहानी सारे देश को उसकी अपनी भाषाओं में पढ़ने को मिले। 'दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते' यह पुस्तक इसी आवश्यकता को कुछ सीमा तक अवश्य पूरा करती है।

यह श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर की जीवन-कहानी है। मूल मराठी में भी इसके प्रथम प्रकाशन में बहुत देरी हुई है। हिंदी में वह पहली बार श्रीमती केलकर के निधन के सोलह वर्ष बाद प्रकाशित हो रही है। अत्यधिक विलंब के बाद ही क्यों न हो, एक राष्ट्रोपयोगी कार्य हुआ है और इसके लिए इसका हिंदी रुपांतर करनेवाली सुश्री सुनीता परांजपे अभिनन्दन की पात्र हैं। सेविका प्रकाशन तथा मूल लेखिका श्रीमती सुशीला महाजन भी इस प्रयास के लिए बधाई की अधिकारी हैं।

राष्ट्र सेविका समिति की संस्थापिका श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर की कहानी आज भी सबको, तुलनात्मक दृष्टि से, ज्ञात नहीं है। जो लोग राष्ट्र सेविका समिति को थोडा बहुत जानते है; उन्हें भी इस भ्रामक धारणा ने घेरा है कि यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की महिला शाखा है। प्रारंभिक काल में समिति भी संघ की भाँति प्रसिद्धि एवम् प्रचार से दूर रही, यह भी इसका कारण है। अत: समिति को सही आयामों में जानने के लिए नितान्त आवश्यक है कि उसकी संस्थापिका की जीवन कहानी को जाना जाए, पहिचाना जाए तथा उनके चिन्तन को समझ जाए। इस दृष्टि से यह प्रयास सराहनीय है।

श्रीमती लक्ष्मीबाई को समिति-परिवार में 'मौसी जी' कहा जाता था। अब तो वे सारे देश में ' मौसीजी' के नाम से ही ख्यात हैं। आज से लगभग ९० वर्ष पूर्व मौसीजी का जन्म हुआ। सारा नारी जीवन उस समय वंचित, उपेक्षित तथा दुर्लक्षित था। आज 'नारी मुक्ति' का ढोल पीटनेवाली को बडा ही प्रगतिशील मानने का फैशन-सा हो गया है। मौसीजी के समय ऐसा प्रयास निंदनीय माना जाता था। उस मानसिकता में इस प्रयास की अभिनंदनीय बनाने का श्रेय मौसीजी को ही जाता है। इसीलिए मौसी जी निंदनीय से न केवल अभिनंदनीय बनीं, अपितु आज सब के लिए वंदनीय भी हो गई । निंदनीय से अभिनंदनीय और अभिनंदनीय से वंदनीय बनने तक की इस यात्रा का दूसरा नाम 'नारी को नारायणी' बनाने का राष्ट्रीय प्रवास है। इस यात्रा का वर्णन इस पुस्तक में मूल लेखिका ने सहज शैली में किया है।

क्योंकि पुस्तक पहली बार हिंदी में आ रही है, मूल मराठी पुस्तक के बारे में पाठकों के सम्मुख कुछ बात रखना परम आवश्यक है। मूल लेखिका श्रीमती सुशीला महाजन राष्ट्र सेविका समिति की एक अधिकारी हैं। मौसीजी के प्रति हर सेविका के मन में जो एक स्वाभाविक आदर पाया जाता है, जो एक आस्था पायी जाती है, वे एक सेविका होने के नाते मूल लेखिका के मन में भी है। फिर भी सेविका और लेखिका दो ऐसी भूमिकाएं हैं जो एक दूसरी पर हावी हो जाएं तो जनमानस पर अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल पातीं। इस परहेज़ को लेखिका ने निभाने का भरसक प्रयास किया है। अनावश्यक महिमा मंडन से उन्होने अपने आपको यथासंभव बचाने का अच्छा प्रयास किया है। यह एक कठिन काम होता है। अतीव श्रद्धा सोच को अंधा बना देती है। निरा बुद्धिवाद श्रद्धा को भावुक बना देता है। दोनों से बचने का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि लेखक अपनी आस्थाओं से समझौता करे अथवा लकीर का फकीर बन कर पिटीपिटाई लकीर को पीटता रह जाए। मूल लेखिका ने अपनी क्षमता नुसार यह सन्तुलन बनाए रखने की अच्छी चेष्टा की है।

एक सामान्य एवम् अच्छे खातेपीते परिवार में जन्मी मौसी जी अपनी हार्दिक संवेदनशीलता के बल पर कितनी दूरदर्शी बन सकीं, इसके लिए उन्होने अपने आपको कैसे ढ़ाला, क्या क्या नहीं सीखा, कितना अध्ययन किया, अविश्रांत परिश्रम कैसे करती गईं, इसका सारा वर्णन लेखिका ने विस्तारपूर्वक किया है, जो किन्ही स्थानों पर कुछ प्रदीर्घ भले ही लगता हो, लेखन धारा में लीलया समा जाता है। मौसी जी की यह पहली जीवन-कहानी हैं। हो सकता है, इससे प्रेरित हो कर स्वयम् लेखिका या कोई अन्य लेखक-लेखिका उनकी विस्तृत जीवन कहानी लिखे। ऐसा होता रहा है, होना भी चाहिए।

मौसीजी के जीवन के अनेक प्रेरणादायी प्रसंग पुस्तक में हैं, जिनका पुनरुच्चार करना आवश्यक नहीं। किन्तु उनके सारे जीवन-कार्य का एक बहुत ही सुंदर तथा अनोखा पहलु है। इसका उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में आया तो है, किन्तु स्वादिष्ट भोजन करने बैठने वाले को मात्र स्वाद के लिए अल्पाहार पर जैसे सन्तोष अनुभव नही होता, कुछ वैसी ही अवस्था उस उल्लेख को पढ़कर होती है। 'नारी-मुक्ति' की मौसी जी की अपनी परिभाषा काफी आगे निकल गई थी तथा बहुत ही परिकृत थी। आज, विशेषतः जब तथाकथित 'नारी - मुक्ति' पश्चिमी मान्यताओं का अंधानुकरण करते भारतीयता के मार्ग से भटक गई है, मौसी जी की इस विषय की संकल्पना, अवधारणा एवम् दृष्टि कुछ अधिक स्पष्टता से की जाती तो सोने में सुहागा होता। इस पर आगे काफी कुछ लिखा जाना आवश्यक है।

जमाना बदलता है। परिवेश बदल जाते है। साथ ही आवेश और अभिनिवेश भी बदल जाते है। जो नहीं बदलते ठहराव में फँस कर वहीं रह जाते है। हर चिंतन् एवम् विचारधारा का भी यही हाल होता है। मौसी जी का समिति के रुप में साकार हुआ चिंतन चिरप्रवाही रखने के लिए आवश्यक है कि वर्तमान तथा आधुनिक संदर्भ तथा परिवेश में उसकी चिरप्रवाहीता नई पीढियों को समझायी जाए। जैसा की प्रारंभ में लिखा हैं, मौसी जी के देहांत के आठ वर्ष बाद मूल मराठी पुस्तक का प्रथम संस्करण तथा सोलह वर्ष बाद हिंदी में प्रथम संस्करण आया है। इन सोलह वर्षों में सारे परिवेश, सारे संदर्भ बहुत बदल गए हैं। पुस्तक के मूल संस्करण में हिंदी संस्करण के लिए तदनुसार अनिवार्य परिवर्तन, संशोधन तथा परिवर्द्धन आवश्यक थे। पुस्तक १९९५ में हिंदी पाठकों के हाथों में दी जा रही हैं। उनको आज के संदर्भ में मौसी जी की क्रान्तिदर्शिता का दर्शन अधिक सुखद लगता। इसका बहुत ही हलका प्रयास कहीं कहीं देखने को मिलता तो हैं, किन्तु वह केवल सतही एवम् कालसापेक्ष है, कालजयी नहीं है। केवल समिती के कार्य के प्रति सहानुभूति रखने वालों के लिए नहीं, अपितु उसकी हिंदुत्ववादी विचारधारा के विरोधियों के लिए भी पुस्तक को अधिक पठनीय बनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। आशा है, यह पुस्तक हिंदी में भी अधिक लोकप्रिय होगी और जब अन्य भारतीय भाषाओं में भी वह लाई जाएगी तो उसके सभी आगामी संस्करणों में इन बातों की ओर उचित ध्यान दिया जाएगा।

अब कुछ बातें हिंदी में अनुवाद के बारे में। अनुवादिका ने अनुवाद के तंत्र और मंत्र को ध्यान में रखकर मूल पुस्तक को हिंदी में रुपांतरित किया है। अनुवादिका की हिंदी उत्तर भारत की - विशेषतः दिल्ली की हिंदी है; जिसपर दिल्ली की हिंदी का स्वाभाविक प्रभाव है। दिल्ली की भाषा, देश की भाषा बन जाती है। अनुवाद बहुत कठिन काम है। मूल पाठ में जो बातें होती हैं, उन्हें अनुवाद की भाषा में सहजता से लाना मूल लेखन से अधिक कठीन होता है। अच्छा

अनुवाद वहीं कहलाता हैं जिसमें अनुवाद बोध समाप्त हो जाता है। मूल पाठ की भावना तथा आशय के साथ अनुवादक इतना एकरुप हो जाता है, इतनी समरसता प्राप्त कर लेता है कि पाठक उसे मूल पाठ जैसा ही और कहीं कहीं तो उससे भी बढ़कर मौलिक मानने लगता है और यह कतई स्वीकार नही करता कि वह अनुवाद पढ़ रहा है। एक भाषा को दूसरी भाषा में इतनी एकरसता के साथ उतारना, मूल भाषा तथा अनुवाद की भाषा दोनों की भावनिकता, मानसिकता तथा सुंदरता को समझे बिना असंभव होता है। इसेही दोनों भाषाओं पर 'अधिकार' कहा जाता है। ऐसे कई श्रेष्ठ अनुवादक है जो मूलभाषा को बोल तो नहीं सकते, किन्तु उसके प्रत्येक शब्द की भावछटा को भली भाँती समझते हैं। अनुवाद की भाषा का ज्ञान भी उन्हें मूल भाषा के समान ही होता है।

इस पुस्तक की अनुवादिका सुश्री सुनीता परांजपे तो मराठी भाषिक हैं ही, हिंदी के वाक्प्रचार, कहावते तथा मुहावरों आदि से भी भली-भान्ति परिचित हैं। उनकी हिंदी महाराष्ट्र की हिंदी नहीं हैं। मौसी जी को उन्होने देखा भी नहीं हैं। फिर भी एक सामाजिक दायित्व के नाते उन्होने इस जीवन-कहानी को हिंदी में कुशलता से उतारा है। एक प्रकार की निर्लिपता उनके अनुवाद में प्रतीत होती है। इसीलिए अनुवाद सहज बना है और सुंदर भी। अंतिम गीत का हिंदी रुपांतर इसका साक्षी हैं। कई स्थानों पर भाषांतर एवम् शब्दानुवाद नहीं, भावानुवाद किया गया है। इसीलिए वह अनुवाद प्रतीत नहीं होता। एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान रखनेवाले हर सुशिक्षित व्यक्ति को अनुवाद अवश्य करने चाहिए। इसी भावना से अनुवादिका अपने साहित्यबोध, भाषाबोध एवम् सामाजिक बोध को चरितार्थ करती जाए, ऐसी अपेक्षा समीचीन होगी।

एक चिरप्रतीक्षित जीवन-कहानी मराठी में लिखने के लिए श्रीमती सुशीला महाजन तथा उसे पुरी क्षमता के साथ हिंदी में अनूदित करने के लिए सुश्री सुनीता परांजपे, दोनों और काफी योगदान द्वारा भारत भारती के भंडार को भरती रहें यहीं शुभकामना।

मो ग. तपस्वी
३, ध्रुपद सोसायटी, ६, जे. बी. नगर,
कॉलेज रोड, नासिक - ४२२ ००५.

राष्ट्र सेविका समिति की प्रार्थना

नमामो वयं मातृभू: पुण्यभूस्त्वाम्
त्वया वर्धिता: संस्कृतास्त्वत् सुता:
अये वत्सले मंगले हिन्दुभूमे
स्वयं जीवितान्यर्पयामस्त्वयि ॥१॥

नमो विश्वशक्त्यै नमस्ते नमस्ते
त्वया निर्मितं हिन्दुराष्ट्रं महत्
प्रसादात् तवैवात्र सज्जा: समेत्य
समालम्बितुं दिव्य मार्गं वयम् ॥२॥

समुन्नामितं येन राष्ट्रं न एतत्
पुरो यस्य नम्रं समग्रं जगत्
तदादर्श युक्तं पवित्रं सतीत्वं
प्रियाभ्य: सुताभ्य: प्रयच्छाम्ब ते ॥३॥

समुत्पादयास्मासु शक्तिं सुदिव्याम्
दुराचार-दुर्वृत्ति-विध्वंसिनीम्
पितापुत्रभ्रातृश्च भर्तारमेवम्
सुमार्गं प्रति प्रेरयन्तीमिह ॥४॥

सुशीला: सुधीरा: समर्था: समेता:
स्वधर्मे स्वमार्गे परं श्रद्धया
वयं भावि-तेजस्वि-राष्ट्रस्य धन्या:
जनन्यो भवेमेति देह्याशिषम् ॥५॥

भारत माता की जय ।

देवी अष्टभुजा स्तोत्र

नमो अष्टभुजे देवि लक्ष्मि पार्वति शारदे
बुद्धि वैभव दो मातर, हमें दो शक्ति सर्वदे ।।१।।
शीलरुपवती नारी तेरी ही प्रतिमा बनें
धर्म-संस्कृति रक्षा से, धन्य भारत को करें ।।२।।
सुगंधित सुवर्णाभ सुकोमल सरोज जो
हस्त में धृत देता हैं, पाठ निर्लेप तुम बनो ।।३।।
गीता-प्रदीप जो देता, विश्व को ज्ञानचेतना
कर में स्थित है तेरे, स्नेहले अम्ब मंगले ।।४।।
शील चारित्र्य की होवे आभा प्रसृत पावनी
अग्निकुंड इसीसे है प्रदीप्त धृत हाथ में ।।५।।
त्रिशूल है लिया मातर दुष्टसंहारहेतु से
खड्ग देवि लिया है जो सज्जनत्राण- बुद्धि से ।।६।।
विराग विक्रमों को जो फहराये नभ मे प्रभा
भगवाध्वज है तूने हाथ में पकडा महा ।।७।।
ध्येय का ध्यान ना भूले, कार्य में रत हो सदा
स्मरणी हाथ की देती हमें संदेश सर्वदा ।।८।।
घण्टानाद हमें देता, नित्य जागृति वत्सले
निद्रा आलस्य में खोवे अमोल क्षण ना कदा ।।९।।
सिंहवाहिनी अम्बे तू जगाती जनसिंह को
सटाओं से उठे सेना शक्तिसामर्थ्यदायिके ।।१०।।
सती तू पद्मजा तू है, तू है देवी सरस्वती
परित्राणाय साधूना काली माँ तू यशोमती ।।११।।
विनम्रभाव से देवि प्रणिपात सहस्त्रधा
सेविकायें करें आशिष देहि देवि सुमड़गले ।।१२।।
सर्व मंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणी नमोऽस्तु ते ।।१३।।

देवी अष्टभुजा की जय ।

विषय सूचि

१) अनूठा बचपन

२) वैवाहिक जीवन की धूपछांव

३) परीक्षा का समय

४) नारी जीवन की दुखभरी कहानी

५) महिला संगठन की नींव

६) राष्ट्र सेविका समिति की स्थापना

७) समिति के कार्य का विस्तार

८) रस्सी पर चलना

९) कुशल नेतृत्व

१०) नारी शक्ती की अनुभूति

११) समिति का अज्ञातवास

१२) कृतित्व की नई दिशाएं

१३) पारिवारिक तनाव

१४) कार्यक्षेत्र का विस्तार

१५) संगठन का परिवार

१६) रामायण का अध्ययन

१७) भारत भ्रमण

१८) संगठन का सामाजिक चिंतन

१९) सत्त्व परिक्षा

२०) अंतिम पर्व

॥ श्री अष्टभुजा देवी ॥

सर्व मंगल मांगल्ये, शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरी, नारायणी नमोऽस्तु ते ॥

१

अनूठा बचपन

''अरी, क्या हुआ ? क्या हुआ ?? '' घर की तीन-चार महिलाएं एक दूसरी सें पूछ रही थीं। प्रसूति-कक्ष से कान लगाए खड़े लोगों को लगा कि हो न हो, भीतर अवश्य कुछ गड़बड़ है। प्रसूती तो हो चुकी थी लेकिन बच्चे के रोने की आवाज नहीं आ रही थी। एक अजीब-सी खुसर-फुसर सुनाई दे रही थी। बाहर खड़ी महिलाओं की उत्सुकता चरम सीमा पर थी।

प्रसूति-कक्ष में एक बालिका ने जन्म लिया था ; परंतु कैसी अनूठी बात थी। बच्ची पारदर्शक झिल्ली समेत पैदा हुई थी। अतः मृत समझकर उसे एक सूपड़े में धर दिया था। तभी प्रसूति कार्य में निपुण और अनुभवी इस बच्ची की चाची का ध्यान उसकी ओर गया। दाई ने ठीक समय पर सही सूझ-बूझ दिखाते हुए कांच की एक चूड़ी से बच्ची की सारी झिल्ली सावधानी से धीरे-धीरे काट डाली। कैसा दृष्य था। अपनी अधखिली नन्हीं आखों से प्रकाश को निहारती उस नवजात बालिका ने 'ऊँ-आँ, ऊँ-आँ' की सलामी देकर अपने जिवित होने का प्रमाण दे दिया था। उसे देखते ही दाई बोली, ''सुंदर, अति सुंदर। लगता है शबनम में भीगा यह कोई कमल पुष्प है।'' आगे चलकर कमल की भांति अपने गुणों और कृतित्व को सुगंधित रखने वाली इसी कमल नें राष्ट्र सेविका समिति की स्थापना की। उसका नाम था कु. कमल दाते, जिन्हे हम लोग लक्ष्मीबाई केलकर या मौसी जी के नाम से जानते हैं।

कमल का जन्मदिन था आषाढ़ शुद्ध दशमी यानी ६ जुलाई १९०५।

कमल के पिता का नाम भास्करराव दाते और माँ का नाम था यशोदाबाई। दाते परिवार सातारा जिले के बावधन गांव का था। दादा रामचंद्रपंत उत्तम वैद्यराज थे। आयुर्वेद में उन्होने खूब नाम कमाया था। व्यवसाय के लिए सातारा छोड़कर वे महाबलेश्वर जा बसे। नाना प्रकार की वनस्पतियों से समृद्ध जावली नदी की घाटी व्यावसायिक दृष्टी से महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही शायद उन्होने चुनी होगी। दादी सीताबाई, गाडगील परिवार से थी। पति के साथ रहते रहते वे भी आयुर्वेद की बहुत कुछ बातें सीख गई थीं। आवश्यकता पड़ने पर वे भी गरीब और असहाय

लोगों को विनामूल्य दवाईयां दिया करती थी। अतः आस पास के परिवेश में दाते पति-पत्नी काफी लोकप्रिय हो गए थे। उनकी तीन संताने थी। दो लड़के बलवंत और भास्कर तथा एक लड़की अंबुताई।

मिरज का गोखले परिवार कमल का ननिहाल था। उनके नाना बलवंत गोपाल उर्फ नानासाहब गोखले नौकरी के लिए मिरज से विदर्भ आ गए। नागपुर में महालेखापाल की कचहरी में अधिकारी बन गए। इस विभाग के लिए आवश्यक हिसाबीपन, साफ सुथरापन और शुद्ध आचरण के वे धनी थे। वे बड़े ही हाजिरजवाब थे। नाना के ये गुण नाति में भी थे। नानी सरस्वतीबाई उनके अनुरुप थीं। रामायण और महाभारत की कथाएं वे बड़े मनोरंजक ढ़ंग से सुनाया करती थीं। नानी की विरासत को नातिन ने आगे चलाया।

कमल के पिता भास्कररांव दाते नौकरी के लिए महाबलेश्वर छोड़ नागपुर आए थे। संजोग से उन्हें भी नानासाहब गोखले के कार्यालय में नौकरी मिली। बुद्धिमान, होनहार लड़का देख नानासाहब गोखले ने अपनी लड़की भास्कररांव दाते से ब्याह दी।

यह दाते परिवार नागपुर के महाल विभाग में बापट जी के घर रहा करता था। तत्पश्चात वह बुटी महाल विभाग में रहने लगा। इसी परिवेश में कमल का बचपन बीता। दाते परिवार में भास्कररांव के साथ उनकी माँ, दो बालविधवाएं - एक बहन और एक भौजाई रहते थे। कमल के पिता प्रगतिशील विचारों वाले थे। वे जानते थे कि महिलाओं के लिए आत्मनिर्भरता अत्यंत आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने अपनी बालविधवा भौजाई लक्ष्मीबाई को प्रसूतिशास्त्र का प्रशिक्षण दिया। उन्हें आत्मनिर्भर बनाया और सम्मान से जीना सिखाया।

लक्ष्मीबाई बड़ी ही उत्साही और निडर थी। हमेशा कार्यरत रहना उनका स्वभाव था। उन्होंने फल की अपेक्षा से कभी कोई काम नहीं किया। यूं तो किसी भी अस्पताल में उन्हें दाई की नौकरी मिल जाती, परंतु उन्होंने अपने बलबूते पर स्वतंत्र रुप से निजी व्यवसाय प्रारंभ किया। प्रसूति विज्ञान के साथ ही वे कई दवाईयों की भी जानकारी रखती थीं। इन दवाओं का कईयों को बड़ा लाभ हुआ था। देर सवेर, रात बेरात जब भी किसी को आवश्यकता पडती, वे तुरंत वहाँ पहुँच जाती। प्रसव वेदना से त्रस्त हर महिला की सहायता के लिए वे सदा तत्पर रहती थीं। न कभी कोई शिकन न थकान। बचपन में ही पति निधन का दुख झेलना पड़ा था। इस विपत्ति को उन्होंने बड़े धैर्य से झेला और दृढ़तापूर्वक स्वाश्रयी बनने के मार्ग को अपनाया। दाई चाची के व्यक्तित्व की अमिट छाप संस्कारक्षम कमल के मन पर अंकित थी। इस इंस्पाति चाची के सेवामय जीवन को कमल ने बारीकी से देखा और समझा था। यही वह चाची थी जिसने कमल के जन्म के समय दाई की भूमिका निभाई थी। १९६१ में वे चल बसीं।

कमल के पिता भास्करराव दाते को सभी अण्णा कहकर पुकारते थें। कमल सहित उनकी नौ संताने थी। उन सब में कमल का दूसरा स्थान था। अतः सब उन्हें अक्का कहते थे। बहन भाईयों में चूंकि वे बड़ी थीं, बचपन में ही उनके व्यवहार में समझदारी और बड़प्पन छलकता था। शायद इसी कारण कमल अत्यंत सहनशील थी।

कमल के बड़े भाई महादेव उर्फ दादा गुजरात में सूरत के अग्निशमन विभाग में काम करते थे। वे असमयही चल बसे। अतः कमल ही अब सबसे बड़ी थीं। उनके छोटे भाई नीलकंठ उर्फ तात्या नागपुर में ही थे। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन ने उन दिनों अनेक युवकों को प्रभावित किया था। सैकडों युवकों ने देशभक्ती से प्रेरित हो कर पढ़ाई बंद कर दी थीं। तात्या भी उनके साथ हो लिए थे। म. गांधी के आवाहन पर तात्या पढ़ाई छोड़कर आंदोलन में कूद पड़े। उस समय घर में छिडने वाली चर्चाए, छोटे भाई की बेचैनी और गंभीरता से उस बारे में सोचने वाले अण्णा, सबको कमल देख रहीं थीं। और एक दिन तात्या के सत्याग्रह में शामील होने की खबर आई। १९२२ में सेनापति बापट के नेतृत्व में मुलशी सत्याग्रह में पंधरह वर्षीय नीलकंठ ने भाग लिया था। उसे कारावास की सज़ा हुई। सरकारी नौकरी में होने के कारण अण्णा अपने भविष्य के प्रति चिंतित थे। उन्हें आगे काफी परेशानियाँ झेलनी पड़ी लेकिन उन्होंने सब परेशानियों को चुपचाप झेल लिया। देशभक्ति उनकी रगों में जो थीं।

छोटे भाई को कारावास मिलने का समाचार कमलने ससुराल में सुना तो वह काफी बेचैन रही। किंतु उन्हे कोई शरम महसूस नहीं हुई। अपितु घर में जब इस बात पर बहस हुई तो उन्होनें कहा, '' किसी चोरी-डकैती के कारण तो जेल नहीं गया न ?'' छोटी सी उम्र में भी कमल देशभक्ति से इतनी प्रेरित थीं।

नीलकंठराव के बाद क्रम था यमूताई, पुरुषोत्तम उर्फ बंडू और वामन का। पुरषोत्तम और वामन नौकरी के लिए अलग प्रदेशों में गये और वहीं बस गए। उनके बाद मैनाताई, मधुकर तथा प्रभाकर।

ऐसा था यह बड़ा और बढ़ता कुनबा। इसे सफलता से चलाना कोई खेल नहीं था। परतंत्रता के उस युग में कई परिवारों को लोकमान्य तिलक के विचारों ने सम्मोहित कर दिया था। देश में चारों ओर देशभक्ति की लहर दौड रही थी। देश के लिए कुछ कर गुजरने की मानो हर दिल ने ठान ली थी। भास्करराव दाते भी कोई अपवाद नहीं थे। परंतु वे एक सरकारी नौकर थे। फिर इतने बड़े परिवार का पालन करना भी तो था। अतः भावनाओं के सैलाब को थामे रखना उनके लिए अनिवार्य था। उन दिनों लोकमान्य तिलक का समाचार पत्र '' केसरी '' लोगों के दिलों दिमाग पर छा गया था। और इधर सरकारी कर्मचारियोंद्वारा उसे पढ़ना राजद्रोह माना जाता था।

अब केसरी पढ़े तो कैसे पढ़े ? आखिर भास्करराव ने अपनी पत्नी यशोदाबाई के नाम पर यह समाचार पत्र लेना शुरू कर दिया।

समाज के प्रति प्रतिबद्धता का अहसास और संगठन का मूलमंत्र यों कमल जीं को उनकी माँ से विरासत में मिला। ''केसरी'' पढ़ने पर ही यशोदाबाई संतुष्ट नहीं थीं। बार-बार उन औरतों के बारे में वें सोचती रहतीं जो चूल्हा-चौकी और आटा-चक्की के कामकाज में ही उलझीं रहती थीं। वे चाहती थीं कि ''केसरी'' की बातें उन तक भी पहुंचे। उन्हें भी अपनें दायित्व का बोध हो, अंग्रेजों के अत्याचारों और देश की वर्तमान स्थिती की सही जानकारी हो और एक दिन इन विचारों की पूर्ती के लिए गृहस्थी में उलझी सामान्य परिस्थिति की इस महिला ने घर से बाहर कदम रखा। अपने मोहल्ले की महिलाओं को एकत्रित कर एकता का महत्त्व वें उन्हें समझाने लगीं। एकता का मंत्र देने लगी। इस वैचारिक मंथन की परिणति भगिनी समाज की स्थापना में हुई।

यह महिलाएं किसी एक के घर में एकत्रित होती और लोकमान्य तिलक की तस्वीर के सामने ''केसरी'' का सामूहिक पठन किया करती। यशोदाबाई को उस समय उमाबाई परांजपे, उमाबाई पाठक और लक्ष्मीबाई परांजपे आदि सहेलियों का बेजोड़ साथ मिला। लेकिन ''केसरी'' का पठन इन महिलाओं ने पर्याप्त नहीं समझा। वें तो तिलक जी पर कीर्तन भी किया करतीं। नन्ही कमल इन सब बातों को अपनें मन में सँजो रही थी। माँ के साथ वह भी इन कार्यक्रमों में बड़े चाव से जाती थी। आगे चलकर मौसी जी ने समिति के प्रचार कार्य में कीर्तनों और प्रवचनों को जो अहमीयत दी, उसकी जडें शायद इन संस्कारों में ही थीं।

भास्करराव यानी अण्णा की रग रग में समाजसेवा समाई थी। समाज सेवा उनका स्वभाव बन गया था। वे हर तरह से लोगों की सहायता किया करते। कोई उनके द्वार से निराश नहीं लौटता था। किसी संस्था का हिसाब किताब जांचना हो, या किसी बीमार की शुश्रूषा के लिए रात भर जागना हो, अण्णा हमेशा तत्पर रहते थे। अण्णा जी का यह सेवाभाव उन दिनों फैला ग्रंथी-रोग (प्लेग) की महामारी में पूरा दांव पर लगा था। तब पास पडोस में कई बारा तीन चार लोग इस महामारी के शिकार होते थे और अण्णाजी, प्रत्येक पर अंतिम संस्कार किया करते थे। कभी कभी तो भोजन के लिए बैठकर आचमन करते ही ''अण्णा'' कह कर कोई पुकारता। ऐसे में बिना भोजन किए ही वे बाहर सकी अर्थी को कांधा देने चल देते। इस कार्य में उन्होने न कभी अपनी जान की सोची और न कभी काम से जी चुराया। नित नई मिसालें देनें वाला यह सेवाव्रत नन्ही कमल को उसी साँचे में ढाल रहा था।

अण्णा जी एक अच्छे, नाट्य अभिनेता भी थे। ऐतिहासिक नाटकों में काम करना उन्हें बहुत पसंद था और यही उनका एक शौक भी था। ''महाल अमैच्यूयर क्लब'' नामक एक नाट्य संस्था

भी उन्होंने शुरु की थी। मौसी जी के बोलने की एक खास शैली थी। विषय के साथ समरस होकर हर बात को तन्मयता से कहने की उनकी खूबी, शायद अपने पिता से ही उन्होंने सीखी थी। अपनी बात वे इतने रसीले अंदाज में कहती कि विषय की पूरी तस्वीर उभर कर आ जाती थी। कमल, ऐसे मां-बाप के साये में पल रही थी और उसकी कुशाग्रता उनके अनमोल गुणों के मोतियों को चुगा रही थी।

नागपुर परिसर में कमल का बचपन खिल रहा था। सर्वसामान्य मध्यमवर्गीय वातावरण में ही वे बड़ी हो रहीं थीं। उन दिनों लोगों की यह मान्यता थी कि बच्चों के खान पान में कोई कसर न रहे और अनुशासन में कोई ढील न रहे। बडों की आज्ञा का उल्लंघन किसी कीमत पर गंवारा नहीं होता था।

सन १९१० में नागपुर में चेचक की भयंकर बीमारी फैली और एक दिन कमल बिटिया बुखार में तपी तडपती घर लौटीं। बुखार बहुंत तेज था। और तुरंत डॉक्टर के पास जाने का तो तब रिवाज ही नहीं था। सो, दो तीन दिन में ठीक हो जायेगी सोचकर घरेलू दवाईयाँ शुरु की गई। लेकिन तीसरे दिन यशोदाबाई जब कमल को जगाने गई तो चौंक पड़ी। कमल के पूरे शरीर पर छोटी छोटी फुँसियाँ नजर आ रही थीं। घबरा कर उन्होंने अपनी जेठानी अर्थात दाईन मां को पुकारा और बोली, ''देखिये ना, इसके शरीर की ये फुँसियाँ मुझे तो कोई दूसरा ही अंदेशा हो रहा है।'' दोनों उस समय चुप रहीं, पर दोनों को एक ही शक था। कहीं यह चेचक तो नहीं ? उनका अंदेशा सही था। देखते ही देखते चेचक की उन छोटी फुँसियों नें फोडों का आकार ले लिया। पूरा बदन फोडों से भर गया था। तिल रखनें को भी कहीं जगह नही थीं। सारे शरीर में भयानक जलन हो रही थी। वह नन्हीं जान तडप रही थी। गला सूख रहा था, पर पानी पीना भी संभव नहीं था। घर में, अब सभी परेशान थे। पडोस के डा. ल. वा. परांजपे दिन में तीन तीन बार आ कर कमल को देख जाते। सबके लिए उन्हीं का एक आसरा था।

बुखार अब उतर चुका था, चेचक के दाने भी सूखने लगे थे; पर मां को अब दूसरी चिंता सता रही थी। लड़की का जनम पाया है, चेचक के दाग कहीं उसे बदसूरत न कर डाले ? यह चिंता उन्हें दिन रात सताने लगी। परंतु कैसा आश्चर्य था ! यह बीमारी तो कमल के लिए एक वरदान साबित हुई। चेचक के दाग तो दूर उनका कोई नामोनिशान भी न रहा। काया तो और भी निखर आई। इतनी कि विश्वास करना कठिन था। इसे भी एक दैवी चमत्कार ही कहना पडेगा। लगता है, भगवान ने जनम से उन्हें संकट झेलने का आदी बना दिया था।

चेचक पूर्णतः स्वस्थ हो जाने पर कमल फिर घूमने फिरने लगीं। नागपुर एक उन्नत शहर था। स्त्री शिक्षा की आँधी नागपुर में भी पहुंच चुकीं थी। सुधारवादी लोग अपने लडकों के साथ

लड़कियों को भी स्कूल भेजते थे। कमल अब छः साल की हो गई थी। यानी स्कूल जाने लायक हो गई थी। बस फिर क्या था। कमल अपनी बाबा की अंगुली थामें जुलाई १९११ को वॉकर रोड के सरकारी स्कूल में दाखिल हो गई। चारों ओर अपनी चंचाय नजरों से कमल अपना स्कूल देख रही थी। शीघ्र ही वह उस वातावरण में घुल मिल गई।

उसी वर्ष दिसंबर में कमल के स्कूल में एक कार्यक्रम था। इंग्लैंड के सिंहासन पर, पंचम जॉर्ज को बैठे कुछ ही दिन हुए थे। उनके राज्यारोहण समारोह के सिलसिले में दिल्ली में एक शाही दरबार लगाया गया था। पंचम जॉर्ज उसके लिए खास तौर से आए थे। अनेक राजा-महाराजा, और अनेक रथी-महारथी इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। दिल्ली के बाद राजासाहब कलकत्ता जाने वाले थे। और नागपुर होते हुए वापिस दिल्ली जाने वाले थे।

नागपुर के राजनिष्ठों ने इसी अवसर का लाभ उठाने की सोची। लौटते समय कुछ देर नागपुर रुकने की राजासाहब से बिनति की गई। चूंकि उसे अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं था ; उसे स्वीकार कर लिया गया। कार्यक्रम तय किया गया। वैसे चंद जानेमाने लोगों को छोड़ कर इस कार्यक्रम में किसी को कोई दिलचस्पी नहीं थी। लोग तो तब लोकमान्य तिलक कें विचारों से प्रभावित थे। अतः मुठ्ठीभर लोगों के अतिरिक्त शेष सभी पंचम जॉर्ज का स्वागत अनिच्छा से ही करने वाले थे। इस स्वागत समारोह में शिशु छात्राएं स्वागत गीत गाने वाले थीं। कमल के विद्यालय को इस संदर्भ में सूचित किया गया था। सरकारी कर्मचारियों की लडकियों का गाने के लिए चयन किया गया। सुंदर, चतुर और सुरीली आवाज वाली निडर कमल का चयन स्वाभाविक ही था। छोटी कमल बहुत खुश थी। उस समय गाया गया वह प्रसिद्ध मराठी स्वागत गीत था -

''भो पंचम जॉर्ज एडवर्ड भूप धन्य
विंबुध मान्य सार्वभौम भूवस
नय धुरंधरा बहुतकाल
तुच पाल ही वसुंधरा।''

कमल ने अपनी सहेलियों के साथ यह गीत गाया। समारोह समाप्त हुआ। वहां दी गई मिठाई ले कर कमल खुशी खुशी घर लौटी। घर में सभीं को समारोह का वर्णन सुना रही थी। परंतु किसी को उसकी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई दी। बड़ा भाई तो उसकी खिल्ली उड़ा रहा था। बोला, ''अरे वाह। कौन कहां का और किसका राजा है, जो तुम उसके सामने नाचने लगी ?'' ले-देकर घर में सभीं के यही विचार थें। कमल समझ गई कि मामला गड़बड़ है। उधर विद्यालय में भी किसी ने कोई तारीफ नहीं की। तब एक बात कमल अच्छी तरह समझ गई कि

जिसके लिए उसने गाना गाया वह अपना राजा नहीं है। बाल मन पर यह बात हमेशा के लिए अंकित हो गई।

इसी विद्यालय में कमल ने तीसरी कक्षा तक पढ़ाई की। विद्यालय की प्रधानाचार्या अंबुताई सुले तथा अन्य शिक्षिका भागीरथीबाई धाराशिवकर ने उसे बहुत प्रभावित किया। पठन कार्य में उनकी आस्था और लगन की मिसालें आगे भी मौसी जी अक्सर हमें दिया करतीं थी। मौसी जी की सबसे प्रिय सहेलियाँ थीं हरणी देशपांडे (सुश्री लक्ष्मीबाई उर्फ ताई कोरडे), गोदू नाफडे (सुश्री पाध्ये, नागपुर) और शमा जोगलेकर (माई विंझे)।

सन १९१४ जून को, कमल ने एक ईसाई विद्यालय में चौथी कक्षा में प्रवेश लिया। मिशनरी विद्यालय था, अतः अनुशासन और पढ़ाई का स्तर निश्चय ही उत्तम था। लेकिन फिर भी यह विद्यालय पसंद नहीं था। घर में वह बड़े बूढ़ों से पुराणों की कथाएं सुना करती थी। राम, कृष्ण और अन्य देवताओं के प्रति मन में श्रद्धा बढ़ाने वालें जन्मोत्सवों में जाती थी। कथा, किर्तन वो प्रायः सुना करतीं थीं। और उधर इन विद्यालय में इन सब बातों को तुच्छता से देखा जाता और कभी कभी तो उनका मखौल उडाया जाता था। प्रतिदिन सायं भगवान के सामने दीप जला कर "शुभंकरोति" प्रार्थना करनेवाली कमल को, आकाश के पिता को हाथ जोड़ने पड़ते थे। बाल मन को यह बातें ना तो जचती थीं न गले उतरती थीं। यह टीस वास्तव में किस बात की थी उसे पता नहीं था ; परंतु विद्यालय में जी नहीं लगता था। कक्षा में भी पढ़ाते समय अक्सर ईसाई धर्म का गुणगान होता और हिंदू धर्म की खिल्ली उड़ाई जाती। कमल अपनी झुंझलाहट अपनी सहेलियों को अक्सर बताती थी। राष्ट्रीय विचारों से प्रेरित, हिंदुत्ववादी परिवार में रहनेवाली इस लडकी ने, एक दिन ,अपना विरोध शिक्षिका के सामने व्यक्त कर ही दिया।

बात मामुली थी। विद्यालय की प्रथा थी कि येशु की प्रार्थना आँखे बंद कर की जाए। लेकिन मन में कोई आस्था भाव नहीं और आँखे बंद कर के श्रद्धा का स्वांग रचाना कमल को गँवारा नहीं था। अतः वह आँखे खुली रखकर ही प्रार्थना करने लगी और एक दिन पकडी गई। "आँखे खुली रखकर प्रार्थना करती हो ? प्रार्थना का नियम भूल गई क्या ?" अध्यापिका ने क्रोधित हो कर पूछा। इस लड़की ने निड़र हो कर तपाक से प्रतिप्रश्न किया, "यह आपने कैसे देखा ?" अध्यापिका इतनी बुरी तरह अपमानित हुई कि कमल पर बेले बरसाने लगी। बचपन का यह किस्सा मौसी जी बड़ी हो जाने पर भी अक्सर सुनाया करती थीं।

यह घुटन और छटपटाहट कुछ ही दिनों में समाप्त हो गई। विद्यालय शुरु होने के दो तीन महिनों बाद ही सन १९१४ में "दादीबाई देशमुख हिंदु कन्याशाला" की स्थापना हुई। इसकी

स्थापना ''दैनिक महाराष्ट्र'' के संस्थापक और आद्य संपादक गोपालराव ओगले ने की। मिशन का विद्यालय छोड कमल ने इस विद्यालय में दाखिला ले लिया।

महाल विभाग में रुक्मिणी मंदिर था। उसके सामने डा. गद्रे रहते थे। उन्ही के घर में यह विद्यालय शुरु हुआ। गोपालराव स्वयं वहां पढ़ाया करते थे। उनके अतिरिक्त सर्वश्री नारायणराव पंढरपूरकर और भुस्कुटे नामक दो अध्यापक थे और एक अध्यापिका सुंदराबाई साने भी थी। सुंदराबाई ने तो अपना पूरा जीवन इस विद्यालय के लिए समर्पित किया था। विद्यालय की प्रगती के लिए वे दिन रात जुटी रहती थी। एक ओर लडकियों को पढ़ाने का प्रचारकार्य घर घर जाकर करती और दूसरी ओर विद्यालय में लडकियों को उत्तमोत्तम शिक्षा दिलवाने के प्रयास तन मन धन से करती थी। इस अहर्निश सेवा कार्य की कमल के संवेदनशील मन पर अमिट छाप पड रही थी।

कमल की गुणग्राहकता उसके ज्ञान में चौतरफा बढ़ौतरी कर रहीं थी। हँसते खेलते सखी सहेलियों के तरफ साथ प्राथमिक शिक्षण कब समाप्त हुआ पता भी नही चला और साथ ही उन दिनो लडकियों के लिए निर्धारित पढ़ने की सीमा भी समाप्त हो गई। शादी के बारे में सोचा जाने लगा।

अब चूँकि विद्यालयीन पढ़ाई समाप्त हो चुकी थी, घर के काम काज और खेल कूद में कमल का दिन बीतने लगा। साथ खेलने के लिए भाई थे। इसीलिए खेल भी शरारतों ,धींगामुश्ती और उछलकूँद से भरे रहते थे। दरअसल लडकियों का इस तरह के खेल खेलना अब उन दिनों निरी वाहियाती समझी जाती थी। लेकिन कमल को बचपन से यही खेल पसंद थे। भाईयों के साथ खेलते खेलते गिरना, पिटना, खरौंचे आना तो आए दिन लगा रहता था। परंतु कमल रोते रहने वालों में से नही थी। चोट को नजरअंदाज करके कमल पुनः उठ खड़ी होती थी।

ग्रंथी-रोग (प्लेग) की महामारी के कारण दाते परिवार महाल विभाग छोडकर वर्धा मार्ग स्थित गोरक्षण संस्थान के परिसर में जा बसा। उस दौरान चौंडे महाराज से लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में नागपुर में एक गोरक्षण सम्मेलन आयोजित किया था। तभी कमल को पहली बार लोकमान्य तिलक को देखने और सुनने का सुनहरा अवसर मिला। इस अवसर की परिणति ही थी कि कमल के मन में स्वराज्य और स्वदेशी के प्रति ज्वलंत अभिमान जागृत हो उठा। लोकमान्य के गोरक्षण कार्यक्रम का लोगों ने जोरदार समर्थन किया। इसी कारण कमल के मन में भी इस कार्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ, और शीघ्र ही अपने चाचा के साथ कमल भी इस कार्य में सक्रिय भूमिका निभाने लगी। गोरक्षण कार्यक्रम के लिए घर घर जा कर चंदा मांगा

जाता था। कमल के मन में एक बात स्पष्ट थी कि समाजकार्य के लिए लोगो से चंदा मांगने में कोई बुराई नही है।

कमल का सौभाग्य था कि वह अनेक समाजसेवकों को करीब से देख सकी। ''सर्व्हंटस् ऑफ इंडिया सोसायटी '' का काम करने वाले नरेश अप्पाजी द्रवीड उनके पडोसी थे। वे जनजागरण के लिए समर्पित एक समाचार पत्र '' हितवाद '' निकाला करते थे। उनकी सुविद्य पत्नी सुश्री. मथुराताई भी पति के देश कार्य में पूर्णतः सहभागी थी। उनके घर में सदैव समाजसेवकों और देशभक्तों का आना-जाना लगा रहता था। पडौसी का यह घर हमेशा ही कमल को आकर्षित करता और वह अक्सर वहा आया जाया करती। उसी घर में राष्ट्रीय मुद्दों को लेकर होनेवाली तीखी नोकझोक कमल हमेशा सुना करती थी। छोटी उम्र में ही उसे सामाजिक और राष्ट्रीय परिस्थिती का अच्छा आकलन था। कमल का व्यक्तिमत्व यों धीरे धीरे निखर रहा था।

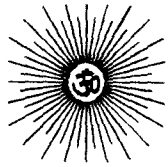

२

वैवाहिक जीवन की धूप छाँव

दिन बीते जा रहे थे। और कमल भी यौवन की देहलीज पर कदम रखती जा रही थी। देखते ही देखते वह चौदह साल की हो गई। इतना अच्छा रुप था, लेकिन शादी कहीं तय न हो पाई थी। केवल रुप अच्छा होने से बात नहीं बनती थी। पैसा भी उतना ही आवश्यक था।

एक दिन छत्रे वकील कमल के लिए वर्धा के केलकर परिवार का एक रिश्ता लाए। केलकर, बहुत बड़े लोग थे। उस इलाके के सुप्रसिद्ध मालगुंजार थे। किसी चीज की कोई कमी नहीं थी। दहेज की भी अपेक्षा नहीं थी। लेकिन लड़का दुहेजु था। उसे दो लड़कियाँ थी। उन दिनों कई घरों में दुहेजु लड़कों से लडकियां ब्याही जाती थीं। किसी को कोई ऐब नजर नहीं आता था। अतः दाते परिवार को भी कमल के लिए यह रिश्ता तुरंत पसंद आ गया। केलकर परिवार से जुड़े मोरुभाऊ अभ्यंकर और डा. ना. भा. खरे दाते परिवार के भी अच्छे परिचित थे। अतः इस विवाह में कोई परेशानी नहीं आई।

यह केलकर घराना रत्नागिरी जिले के "गबे" गांव का था। वामनराव केलकर एक सीधे सादे शांत और सत्शील आदमी थे। एक धनी परिवार में वे मुन्शी थे। उनके चार लड़के थे - गणेश, हरी, नारायण, और चिंतामणी। इनमें हरीभाऊ मौसी जी के ससुर थे। एक छोटी-सी घटना ने हरीभाऊ के जीवन को एक नया मोड दिया, एक नई दिशा दी। उनके पिता जिनके घर काम करते थे उन्होने सत्ता और पैसों के नशे में वामनराव के मुँह में थप्पड मारा। हरिभाऊ ने यह सारा दृश्य अपनी आँखो से देखा तो शर्म से पानी पानी हो गए। घर आते ही उन्होने कहा, " मै कभी किसी की नौकरी नहीं करुंगा। अपने खानदान को ऐसी ऊंचाई पर ले जाऊँगा, कि कोई उसका मखौल न उडा सके। मुझे कितने ही कष्ट क्यों न झेलने पड़े। ऐसा अपमान पुनः नहीं होगा।"

अतः अवसर पाते ही हरिभाऊ बंबई चल पड़े। वहां रिश्तेदारों का आसरा लिया, लेकिन

केवल पाँव पसारने के लिए। यहां, वहां, जहां खाना मिला वहीं जाकर पेट भर लिया। सड़क की बत्ती के नीचे बैठ पढ़ाई की। इस प्रकार, अनेक कठिनाइयों से जूझतें हुए उन्होने बी.ए.एल.एल.बी. तक की शिक्षा पूरी की।

शीघ्र ही धुले शहर में वकालत शुरु कर दी। साल डेढ साल बीत गया, लेकिन वकालत चल नहीं पाई। संयोगवश, एक दिन, वर्धा के श्री. कावले से, बंबई जाते समय हरिभाऊ का परिचय हुआ। बातचीत के दौरान श्री. कावले ने हरिभाऊ को वर्धा में वकालत शुरु करने की राय दी। क्योंकि वर्धा में उन दिनों दो-तीन वकील ही थे, और वो भी मराठी में ही काम किया करते थे। अंग्रेजी जाननेवाला कोई था ही नहीं। हरिभाऊ ने यह अवसर हाथ से जाने न दिया और सन १८८६ में अंग्रेजी में वकालत करनेवालें, वे वर्धा के पहले वकील बने।

देखते ही देखते, यहां उनकी वकालत भली भाँति चल पड़ी। लक्ष्मी भी अब प्रसन्न थी। अब हरिभाऊ के पास मान, सम्मान, पैसा सबकुछ था। फिर भी, अपने परिवार को उन्होंने कभी नहीं भुलाया। कोकण से अपने सभी भाईयों को उन्होने बुला लिया। गणेश और चिंतामणि पर जमींदारी और गांव की खेती संभालने का काम सौपा। इनके अतिरिक्त अन्य कई जरुरतमंदो को उन्होने अपने घर आश्रय दिया था। घर में पचास साठ लोगों का आना जाना लगा रहता था।इस सबके बावजूद अपने गांव की ओर भी उनका पूरा ध्यान रहता था। राजनितिक आंदोलनों में भी वे हमेशा भाग लेते थे। कांग्रेस दल में वे विदर्भ का प्रतिनिधित्व करते थे। वर्धा नगरपालिका में कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे। इन गतिविधियों के कारण इस घर के लिए राजनितिक और सामाजिक कार्य कोई नई बात नहीं थी।

हरिभाऊ को सदाशिव, पुरुषोत्तम, लक्ष्मण और यशवंत चार लड़के और कुशामाई, वेणू तथा रमा तीन लड़कियां थीं। लड़कियां अच्छे घरों में ब्याही गयी थीं। और लड़के पढ़ रहे थे। हरीभाऊ संतुष्ट थे। बड़ा लड़का सदाशिव, वकील बनकर हरिभाऊ के कामकाज में हाथ बटाने लगा था। इससे बढ़कर खुशी और क्या हो सकती थीं। लेकिन भगवान को शायद यह मंजूर नहीं था। सदाशिव को वकालत शुरु किये अभी डेढ साल ही हुआ था कि सन १९११ में ग्रंथी रोग(प्लेग) की महामारी उन्हें निगल गयी। इतने सक्षम और होनहार नौजवान बेटे का इस तरह चल देना अत्यंत दु:खद था। यह आघात वे सह न पाये। दूसरे ही दिन से उन्होने वकालत छोड दी और हजार रुपये की आमदनी से मुँह फेर लिया।

अतः मौसी जी के पति पुरुषोत्तमराव उर्फ भाऊसाहब पर परिवार की जिम्मेदारी आ पडी। वैसे तो वे कॉलेज में पढ़ रहे थे। बी.ए.सी. की पढ़ाई पूरी कर उन्हें ''बार एट लॉ'' पाने

के लिए लंदन जाना था। किंतु घरेलु जिम्मेदारी के कारण उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। उन्ही दिनों नागपुर के न्यायिक दंडाधिकारी, विष्णुपंत गाडगील की कन्या, सुंदराताई से, उनका विवाह भी संपन्न हुआ। और उनके गृहस्थ जीवन का प्रारंभ हुआ।

पिता हरिभाऊ, घर के मामले में यद्यपि विशेष ध्यान नही देते थे, पुरुषोत्तमराव के लिए बहुत बड़ा आधार थे। किंतु कुछ ही दिनों में उनका यह आधार छिन गया। १९१४ में हरिभाऊ चल बसे। परिवार की जिम्मेदारी अब पूरी तरह पुरुषोत्तमराव पर आ पडी। बड़ा परिवार, मेहमानों का आना-जाना, तीज त्यौहार, का झमेला भी बडा। वह सब कुछ संभालना एक टेढ़ी खिर थी। ऐसी नाजुक स्थिती में हरिभाऊ की, नगद आमदनी भी बंद हो गई थी। खेती बाडी से होने वाली प्राप्ती पर ही सब कुछ निर्भर था। घर में सासूजी की देखरेख में भौजाई उमाकाकू, पुरुषोत्तमराव की प्रथम पत्नी सुंदराताई वगैरा गृहस्थी चला रही थी। इसी बीच एक नये मेहमान के आने की आहट भी सुनाई दी। पुरुषोत्तमराव को लड़की हुई - शांता। थोडे ही अंतराल के बाद उनके एक और लड़की हुई जिसका नाम था वत्सला। इन बच्चियों की किलकारियों से घर में रौनक बनी रहती। उनका लाड प्यार करने में दिन तेजी से बीत रहे थे। पुरुषोत्तम राव का बचपन एकदम सुख में बीता था। किसी चीज की कोई कमी नही थी। अतः उनके रहनसहन में भी वही थाटबाट झलकता था। रईसी अंदाज में जीने वाले पुरुषोत्तमराव दिलदार थे। उनके इन्ही गुणों के कारण लोग उन्हे '' सरदार '' कहकर पुकारा करते थे।

सन १९१८ प्रारंभ हुआ। राज्यकर्तीओं के जुल्मो सितम में पूरा देश पिसा जा रहा था। इतना ही काफी नही था कि उन दिनो प्लेग, महामारी के साथ इन्फ्लूएन्जा की महामारी भी आ गयी। इस महामारी ने पुरे देश में कुहराम मचा रखा था। सैंकड़ो लोग इसके शिकार हो गए। यह राक्षसी प्रत्येक घर से किसी न किसीको लील रही थी। एक दिन केलकर परिवार पर उसका साया पड़ा। शांता, वत्सला की माँ - पुरुषोत्तमराव की पत्नी सुंदराबाई अपनी गृहस्थी की नैय मझदार में ही छोड़ गयी। पुरुषोत्तमराव पर यह दुसरा आघात हुआ। मन बहुत उदास था। माँ के चले जाने पर नन्ही बच्चियों की बडी ही दयनीय अवस्था थी। उन्ही दिनों पुरुषोत्तमराव की माँ ने दुसरी शादी के लिए राजी कर लिया। जून १९१९ में दाते परिवार की कमल नें केलकर परिवार में बहु के नाते प्रवेश किया। उस समय की प्रथानुसार विवाह समारोह तीन दिनों तक चलता रहा। कमल की डोली हाथी पर चढ़ा कर ससुराल आयी। महाराष्ट्रीय प्रथा के अनुसार कमल का ससुराल में लक्ष्मी नामकरण किया गया। नन्ही शांता और वत्सला को पुनः माँ के ममता भरे आँचल की छाँव मिल गयी। मझदार में भटकती पुरुषोत्तमराव की गृहस्थी की नैया को एक सक्षम माझी मिल गया। और उमाकाकू को एक मिलन-सार देवरानी मिल गयी। इसतरह शुरु हुआ मौसी जी का वैवाहिक जीवन।

चौदह वर्ष की बालिका लक्ष्मी ने केलकर परिवार में बहु बनकर कदम रखा। अन्य नवपरिणितिओं की भांती वह इस परिवार में केवल पत्नी, बहू, देवरानी या चाची बनकर नही आई थी। बल्कि, दो सुकोमल कन्याओं की माँ बनकर भी आई थी। प्रेम, ममता मौसी जी के जन्मजात गुण थे। इसी कारण अपनी इन सौतेली बेटियों पर भी मौसी जी ने खूब प्यार लुटाया।

दस बारह लोगों के इस बडे परिवार के सभी रीतिरिवाज, चाल-चलन मौसी जी शीघ्र ही सीख गयी। जेठानी उमाबाई बड़ी बहन की तरह उन्हे सब सिखाया करती, समझाया करती। छोटी-मोटी गलतियां सुधार लिया करती थी। मायके में मौसी जी सबसे बड़ी थी और ससुराल में उन्हें उमाकाकू के रुप में बड़ी दीदी मिली थी। घर में अन्य दो जेठानियाँ और दो देवर थे। सबका एक मिला जुला परिवार था।

दोनो जेठानिया भी अच्छे सुसंस्कृत घरों से थी। लक्ष्मणराव की पत्नी सावित्रीबाई, धुले के, समर्थ भक्त-देव की कन्या थी। और यशवंतराव की पत्नी अन्नपूर्णाबाई इंदौर के केतकर परिवार से थी।

परिवार की नई बहू पर सबकी निगाहे टिकी रहती थी। मौसी जी का दाते परिवार, केलकर परिवार की तुलना में बिल्कुल ही सामान्य था। सौतेली माँ की मुहर भी मौसी जी पर लगी थी। अतः मौसी जी बड़ी ही सजग और सतर्क रहती, बातचीत में कभी अपनी मर्यादा नही छोडती थी, सोच समझकर बोला करती और बच्चियों से तो बड़े ही प्यार से पेश आती थी। फिर भी भाऊसाहब इस नये रिश्ते के प्रति निश्चिंत नहीं थे। यह चौदह साल की लड़की मेरी बेटियों को नहलाते समय उनपर बहुत गरम पानी तो नहीं न डालती, उनके बाल बहुत जोर से तो नहीं न रगडती, यह देखने वे स्वयं अटारियाँ की खिड़की से झाका करते थे। परंतु मौसी जी ने कभी ऐसा नही किया। बडी लडकी शांती के बाल बहुत लंबे थे। दोनो लड़कियों को वे बड़े प्यार से नहलाती। उनके मिलनसार स्वभाव और प्यार ने देखते ही देखते सभी का मन जीत लिया। भाऊसाहब सहित अब सभीको विश्वास था कि नई बहुरानी में इस घरको संभालने की पूरी क्षमता है।

मौसी जी को उनकी सासूजी का साथ बहुत कम मिला। नई बहु में इस घर को संभालने की क्षमता है, यह वे भांप गई थी। शायद इसी आश्वस्त के कारण मौसी जी के ब्याह के चार महिनो बाद ही उन्हों ने शांती से अपनी जीवन यात्रा समाप्त की। कुछ ही दिनों बाद उनके देवर लक्ष्मणराव पीलिया के कारण चल बसे। थोडे अंतराल के बाद उनकी पत्नी सावित्रीबाई का भी निधन हो गया। एक के बाद एक, लगातार तीन मृत्युओंने मौसी जी को बुरी तरह झकझोर डाला। ऐसी घटना वे पहली बार देख रही थी। इन घटनाओं ने मौसी जी को और भी सहनशील

और निडर बनाया।

घर में नौकर चाकर बहुत थे। लेकिन रसोई बहू बेटियाँ ही बनाये यह दस्तूर था। भाऊसाहब के खाने-पीने के बड़े ही नखरे थे। उनकी पसंद नापसंद का मौसी जी को बड़ा खयाल रखना पडता था। इस मामले में जरासी लापरवाही भी उन्हे गँवारा नही होती थी। उपर से गर्म मिजाज बाप रे बाप, एक ओर खाने का स्वाद और दूसरी ओर पति का मिजाज, दोनो संभालना मौसी जी के लिए बड़ी मुश्किल बात थी। शायद भाऊसाहब की इसी तुनकमिजाजी के कारण ही शायद मौसी जी भी खाना बनाने में प्रवीण हो गयी। उनका पकाया भोजन बढ़िया और स्वादिष्ट हुआ करता था। खेत पर काम करने वाले नौकर चाकर भी घर आया करते थे। यहा कोकण की तरह केवल दालभात परोसने से काम नही चलता था। ढ़ेर सारी रोटियाँ बनानी पड़ती थी। घर की औरतों को भी इसकी आदत हो गई थी।

यह परिवार पुराने विचारोंवाला था। साथ ही कुल की मान, मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के अनुसार यहा एक खास अनुशासन भी था। औरते पुरुषों की उपस्थिती में न तो जोर से बोल सकती थी। न उनसे नजरे मिला के बात करने की चेष्टा कर सकती थी। और तो और, तीज-त्यौहार के अतिरिक्त औरते बालों को गजरों फुलों इत्यादि से सजा भी नही सकती थी। ऐसा करना कुल की प्रतिष्ठा के खिलाफ माना जाता था। और इधर मौसी जी बचपन से ही फुलों और गजरों आदि की बड़ी शौकीन थी। अतः मुक्त वातावरण में पली मौसी जी के लिए ऐसी दकियानूसी माहौल में जीना जरा मुश्किल जान पड रहा था।

जाहिर है, ऐसे माहौल में जीने वाली औरतों की दुनियां घर की चार दिवारों तक ही सीमित रहती थी। उन्हें महिलाओं के पारिवारिक सुहाग सम्मेलनों, शादी-ब्याह, नामकरण आदि मौकों पर ही एक दूसरे से मिलने जुलने का अवसर मिलता था। अलबत्ता ऐसे स्नेह सम्मेलन केलकर परिवार में अक्सर होते थे और मौसी जी हमेशा उनमें सहभागी होती थी।

सन १९२० में मौसी जी के विवाह को अभी एक साल ही हुआ था ; कि वे गर्भवती हो गई। पन्द्रह वर्ष की लड़की माँ बनने जा रही थी। आज ऐसी बात की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इधर मौसी जी को दोहद लगे थे और उधर इतने बड़े परिवार में इच्छानुसार आराम कर लेना भी नसीब नही था। लेकिन यह भी सच है कि इस बड़े परिवार ने मौसी जी की गर्भावस्था के सभी नखरों को बड़े प्यार से पूरा किया। लाड़ प्यार में कहीं कोई कमी नहीं थी। पहली दो लड़कियां थीं। चुनाचे, ''अब तो लड़का ही चाहिए'' बुजुर्गों की जबान पर ये ही शब्द आते थे। मौसी जी बार बार यही सोचती रहतीं कि लड़का होगा या लड़की ? भाऊसाहब भी लड़के की आस लगाए बैठे थे। अनिश्चितता का यह बोझ मौसी जी के मन पर बढ़ता ही जा रहा था

उस जमाने की प्रथानुसार मौसी जी प्रसूति के लिए अपने मायके नागपुर गई थीं। १० अक्तुबर १९२० को मौसी जी ने एक पुत्र को जनम दिया। हर कोई खुशी से झूम उठा। सबकी जबान पर एक ही बात थी लड़का हुआ है, लड़का हुआ है। मावशी के मन का बोझ उतर गया। केलकर खानदान में पहले पोता आया था। आनंद विभोर परिवार उस बालक पर चहूं ओर से प्रेम रस बरसा रहा था। बच्चे का नामकरण समारोह बड़ी धूम धाम से मनाया गया और नाम रखा गया- मनोहर।

बच्चे की अठखेलियां देखने और उसकी देखभाल में ही सारा दिन बीत जाया करता था बल्कि दिन के चौबीस घंटे कम पड़ रहे थे। उन्हीं दिनों दिसंबर महिनें में नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद होने वाला वह पहला अधिवेशन था। अतः पुरे देश की उस पर निगाहें टिकी थी। वर्धा से श्री. जमनालाल बजाज और उनकी पत्नी जानकी देवी बजाज भी पधारे थे। श्री. जमनालाल और भाऊसाहब की अच्छी मित्रता थी, अतः जानकी देवी और मौसी जी भी एक दूसरें से अच्छी तरह परिचित थीं। जानकी देवी, मौसी जी से मिलने उनके मायके गई थीं। तभी अधिवेशन की बात चली। जानकी देवी ने बताया की देश की बागडोर अब म. गांधी के हाथों में है। मौसी जी म. गांधी को देखने के लिए बड़ी ही उत्सुक थी। उस अधिवेशन में क्या क्या हुआ ? क्या तय हुआ आदि ढ़ेर सारी बाते मौसी जी ने जानकी जी से पूछी थीं। तभी उन्हें पता चला कि म.गांधी वर्धा में सत्याग्रह आश्रम शुरु करने वाले हैं। यह सुनकर तो वे और भी प्रसन्न हो गई और बोली, ''इसका मतलब है कि अब म.गांधी को करीब से देखने का अवसर मिलेगा।''

मौसी जी को राजनिती में बहुत रुचि थी। देश के तत्कालिन स्थिती को जानने समझने की बड़ी जिज्ञासा रहती थी। लेकिन केलकर परिवार में इन सब बातों को कोई विशेष महत्त्व नहीं था। भाऊसाहब पर परिवार की बड़ी जिम्मेदारी थी। और वे उसी की उधेड बुन में उलझे रहते थे। जब कभी समय मिलता, वे उसे दोस्तों से गपशप करने या बिलीअर्डस खेलने में बिताना पसंद करते थे। यह खेल उन्हें बहुत पसंद था। लेकिन राजनीति में भाऊसाहब को कोई रुचि नहीं थी। अतः वर्धा की राजनीतिक गतिविधियों से भी वे कोई विशेष संबंध नहीं रखते थे। जाहिर है परिवारवालों को भी इसकी अनुमति नहीं थी।

इसके बावजूद मौसी जी का ध्यान बाहर ही रहता था। गांव की गतिविधियों की जानकारी पाने की वे हर संभव कोशिश करती रहती थीं।

नन्हें मनोहर को लेकर वे वापस वर्धा लौटी। मनोहर छोटा था इसलिए मौसी जी का बाहर जाना - आना सीमित था। लेकिन एक दिन बाहर हो रही पुरुषों की बातचीत से उन्हें भनक लगी कि म.गांधी वर्धा आने वाले है। बस्स, फिर क्या था। थोडी और खोज बीन की तो उन्हें पता चला कि बजाज जी के लक्ष्मीनारायण चौक में म.गांधी भाषण देने वाले हैं।

''मैं जाँऊ भाषण सुनने''मौसी जी ने अपनी बड़ी जेठानी उमा काकु से धीरे से पुछा। उमा काकू की मौंहें यकायक तन गई,क्योंकि उनके खानदान में औरतें भाषण सुनने नहीं जाती थीं।

मौसी जी ने आग्रह और निश्चय से अपनी बात आगे बढाई, ''मैं अकेली नहीं जाऊँगी। अन्नपूर्णा बाई को साथ ले जाऊँगी। फिर तो ठीक हैं ना ? मुझे म.गांधी के दर्शन करने की जबरदस्त इच्छा हैं।''

''अच्छा ठीक है।चली जाओ। पर भाषण खत्म होते ही लौट आना। देर मत करना। ध्यान रहें घर में तुम्हारा छोटा बच्चा हैं।'' काकू ने इन शब्दों में मौसी जी को अनुमति दे दी।

दो देवरानियाँ चल पडीं भाषण सुनने। बहुत बडी संख्या में महिलाएं और पुरुष म.गांधी को सुनने आये थे। म.गांधी के भाषण ने लोंगो को बडा ही प्रभावित किया। म.गांधी के भाषण का यह मुख्य मुद्दा मौसी जी को बहुत भाया। '' स्वस्थ राष्ट्र ही स्वस्थ मनुष्य का निर्माण कर सकता है।'' म. गांधी ने बडे व्याकुल स्वर में लोंगों से आवाहन किया कि, ''राष्ट्र कार्य के लिए बनाए गए तिलक फंड को आपकी सहायता की आवश्यकता है। आप सब जितनी हो सके उतनी आर्थिक सहायता करें।'' वहाँ लोगों के सामने झोली फैलाई गई। देखते ही देखते लोगों ने पैसों से झोली भरना शुरु कर दिया। कई लोगों ने अपनी अंगुठियाँ भी डाली। मौसी जी और उनकी जेठानी भी पीछे नहीं थीं। उन्होनें अविलंब ही अपने अपने गले की सोने की मटरमाला राष्ट्र कार्य के लिए झोली में दान कर दी । मौसी जी को एक अनूठे आनंद की अनुभूति हो रही थी।

मौसी जी का पूरा दिन घर के कामकाज और बच्चों की देखभाल में ही बीत जाया करता था। लेकिन जब भी फुरसत मिलती, वे गांधी- जी द्वारा चलाए गए कार्यक्रमों में सहभागी हो जाया करती थी। वर्धा में स्थापित सत्याग्रह आश्रम में कई रचनात्मक काम किए जाते थे। ईन कार्यक्रमों में जानकी देवी बजाज के साथ श्रीमती कमलाबाई लेले, शरयूताई धोत्रे मालतीबाई थत्ते आदि मौसी जी की कई सहेलियाँ भाग लेती थीं। लेकिन तब मौसी जी का सहभाग बहुत सीमित रहता था। कभी कबार वे किसी का भाषण सुनने जाती और कभी किसी सभा में उपस्थित रहतीं। इससे काफी अधिक करनें की इच्छा तो मन में थी, लेकीन डर था किं कहीं भाऊसाहब

नाराज न हो जाएँ।

एक दिन अचानक ही मौसी जी की जेठानी अन्नपूर्णाबाई चल बसीं। १९२१ की यह घटना मौसी जी के लिए बहुत ही दुखद थी। उन्ही के साथ मौसी जी सभी सम्मेलनों में जाया करती थीं। उनकी इस अचानक मृत्यु के कारण मौसी जी ने अपने को एकदम निराधार पाया। अन्नपूर्णाबाई और मौसी जी में बहनों का सा रिश्ता था। कभी सोचा तक नहीं था कि इतनी सुंदर, मिलनसार और अच्छे स्वभाव वाली यह जेठानी, प्रसूति के दौरान इस तरह चल देगी। उमा काकू और मौसी जी दोनों बहुत दुखी थी।

घर में बहुत उदास वातावरण था। नन्हें मनोहर की अठखेलियों से जरा दिल बहल जाता था। कुछ अरसे बाद घर में नई जेठानी आने के आसार नजर आने लगे। धुले के प्रसिद्ध वकील महादेवराव आपटे की, लड़की का रिश्ता आया था। लड़की सभी को पसंद थी। वह अंग्रेजी पढी लिखी, बंबई पूना में रहने वाली थी। अतःवह कैसी होगी ?चाल चलन कैसा होगा? सभी जरा चिंतित थे। लेकिन मौसी जी ने इस नई जेठानी का शीघ्र ही दिल जीत लिया। और वह भी नये घर में तुरंत रच बस गई।

देखते ही देखते सन १९२२ प्रारंभ हुआ। एक दिन श्रीमती जानकीबाई बजाज ने, मौसी जी को दोपहर मिलने का बुलावा भेजा। अपनी कुछ सहेलियों के साथ वे जानकी जी के घर गई। वहां तय हुआ कि म.गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम में सूतकताई को समाविष्ट किया जाएँ। मौसी जी ने यह काम करना शुरु किया। वहां समाचार पत्रों का सामुहिक पठन भी होता था। उन दिनों में देश में स्वदेशी आंदोलन जोरों पर था। मौसी जी भला उससे कैसे अछूती रहतीं? इस देशव्यापी कार्य में अपने आप को झोंक देने का मौसी जी ने निर्णय लिया। प्रथम स्वयं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग शुरु किया। विदेशी कपडे, चुडीयाँ, वस्तु लाना बंद कर दिया। चिनी विदेशी थी। इसलिए स्वयं चाय-कॉफी पीना बंद कर दिया।

मार्च १९२३ को मौसी जी को दुसरा लडका हुआ। प्रसन्नता तो सभी को हुई लेकिन बच्चें में एक दोष था। उसका ऊपरी होंठ फटा हुआ था। मौसी जी हमेशा इस बात से चिंतित रहतीं थी। चार साल के पद्माकर को मौसी जी पूना के प्रसिद्ध सर्जन डा. वी. वी.गोखले के पास ले गई। उन्होंने पद्माकर के होंठ पर सफल शल्यक्रिया की। तत्पश्चात मौसी जी वर्धा वापस लौट आई।

लौटने के बाद उन्होने देखा कि, भाऊसाहब का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। वे बार बार पेट पर हाथ घुमाते रहते। भोजन भी ठीक से नहीं करते थे। अक्सर पेट में दर्द रहता था। शुरु शुरु में लगा किं बादी या अपचन के कारण पेट में दर्द रहता होगा। इसलिए कुछ घरेलू दवाईयाँ दीं।

लेकिन एक दिन पेट में असहय पीडा होने लगी। उन्हें अपैंडिक्स की बीमारी थी। अतः डाक्टर ने तुरंत बंबई ले जाने की सलाह दी। उन दिनों यह बीमारी भयानक समझी जाती थी। लेकिन मौसी जरा भी डगमगाई नहीं। हर संकट का डट कर सामना जो करती आई थी। आखिर बंबई में डा. गोपालराव देशमुख ने शल्यक्रिया की और भाऊसाहब की हालत सुधारने लगी। वे पुनः वर्धा लौटे। संकट के काले बादल छँट गये और सभी ने राहत की साँस ली। भाऊसाहब की तबियत सुधर तो गई ,लेकिन पहले जैसी सुदृढ न रही।

भाऊसाहब, धीरे धीरे अपने कामकाज में पुनः जुट गए। खेतीबाडी की ओर भी घ्यान देने लगे। गाँव के सोशल क्लब के वे कार्यवाह थे सो वहां का काम भी करने लगे।

कुल मिलाकर मौसी जी को अब काफी राहत मिली। फिर भी पड़े पड़े आराम फर्माना उनका स्वभाव नहीं था। समाज के लिए कुछ न कुछ करने की चाह उन्हें चैन से बैठने न देती। उन दिनों महिला मंडल , भगिनी मंडलों की , स्थापना होने लगी थी। मौसी जी ने भी अपनी सहेलियों के साथ वर्धा में एक महिला मंडल कि स्थापना की। श्रीमती रमाबाई केदार , सुशीलाबाई मोहनी , विमलाबाई बेहेरे आदि महिलाएं उसकी सदस्यांएं थी। मौसी जी की उम्र तब केवल २०,२१की थी। प्रकृति से मौसी जी समाज की महिलाओं के साथ हिलने मिलने के आतुर रहती थीं। इसीलिए वे उनके लिए कुछ न कुछ करती रहती थीं। प्रारंभ में उनके इस महिला मंडल में ज्यादा तर ताश खेली जाती थी। मावशी बिझिक बहुत अच्छी तरह खेलती थी। लेकिन इन खेलो में उनका मन ही नही लगता था। एक दिन वे मंडल में कुछ पुस्तके साथ ले गयी और अपनी सहेलियों से कहा रोजाना ताश खेलने की बजाय क्यों न हम कुछ पढ़ने का काम भी करे ? केवल मौज मस्ती करना उन्हे कभी जचता नही था। तभी से मंडल में ताश के साथ साथ पठन कार्य का भी समारंभ हुआ।

सन १९२५ में मौसी जी को एक और लड़का हुआ दिनकर। २०-२१ साल की उम्र में मौसी जी तीन बच्चों की माँ बन चुकी थी। अर्थात उमाकाकू के सहारे वे ये जिम्मेदारिया झेल रही थी। मौसी जी और भाऊसाहब उमाकाकू के महत्त्वको भली भांती पहचानते थे। भाऊसाहब घर की हर छोटी मोटी बात पर कडी नजर रखते थे। न्यायप्रिय भाऊसाहब को उमाकाकू का जरासा भी अपमान गंवारा नही था। एक बार घर की औरतों को साडियाँ लेनी थी, चुनांचे हमेशा का साडीवाला घर पर साडिया लेकर आया था। साडी तो हर जमाने की औरतो का पसंदीदा विषय रहा है। घर की सभी बहुओं ने अपनी अपनी पसंद की साडीया चुन ली। उमाकाकू ने अपने लिए थोडी महंगी साडिया पसंद की। तभी किसीने उनसे कहा, " आपको क्या करनी है इतनी महंगी साडी ? न कही आना न जाना। " उमाकाकू ने तुरंत साडी वापस गठरी में रख दी। मौसी जी को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होने दोपहर की यह घटना भाऊसाहब को

बताई। अगले ही दिन भाऊसाहब ने दुकानदार से किमती साडीया मंगवायी और उमाकाकू को उनकी मनपसंद साडीया दिलवायी। वे दोनो उमाकाकू की अहमियत अच्छीतरह जान चुके थे। इतना सहृदय और न्यायप्रिय पति पाकर मौसी जी ने अपार धन्यता अनुभव की।

सन १९२५ के बाद देश में अशान्ति बढ़ रही थी। जगह जगह हिंदू और मुसलमानों के दंगे भड़क रहे थे। विदर्भ के नागपुर, कामठी, आर्वी, अकोट आदि गांवों में कई बार दंगे भड़के थे। कई लोग मारे गए। इन दंगों की आड में कई महिलाओं का अपहरण किया गया। इन घटनाओं के कारण मौसी जी बहुत बेचैन हुई। घर का कामकाज तो यंत्रवत चलता रहता, लेकिन मन में भारी उथल पुथल मची थी। नारी कमजोर है, इसका मतलब यह तो नही की कोई भी उसपर अत्याचार करे। यह तो सरासर ज्यादती थी। लेकिन मौसी जी समझ नही पा रही थी की इस अन्याय पर प्रहार कैसे किया जाय ? इसीदौरान संपुर्ण हिंदू समाज को संघठीत करने की भव्य योजना के तहत नागपुर में डा. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। मौसी जी ने यह खबर सुनी। और अपनी एक सहेली से उन्होने कहा, "पता नही क्यों, लेकिन संघ की स्थापना के कारण मन सें थोडी राहत अवश्य जागी है। आशा की धुंदली किरण नजर आ रही है"। हालांकि मौसी जी की इन भाव विभोर बातों में उनकी सहेलियों को कोई विशेष रस नही था। लेकिन मौसी जी मन की बात किसी न किसी के सामने व्यक्त करना चाहती थी। इसलिए सहेलियों के सामने कह देती थी, क्योंकि उनके पति भाऊसाहब को भी इन सब बातों में कोई रुचि नही थी।

हिंदुओं के संघटन का महामंत्र देने वाले और हिंदुओं के हितो के रक्षक स्वामी श्रद्धानंद की एक मुसलमान ने २३ दिसंबर १९२६ मे हत्या कर डाली- नाम था रशीद। आँधी की तरह यह समाचार चारों और फैल गया। हिंदुओं में क्रोध की ज्वालाए भड़क उठी। मौसी जी बहुत उदास और परेशान थी। उनके मन में बार बार एक सवाल उठता था कि, "क्या हमारा कोई तारणहार नही ? क्या हम इसीतरह चोर उचक्कों के हातों में रौंदे जायेगे ?" कौन देता है इस प्रश्न का उत्तर?

घर के चुल्हा चौकी के चक्कर में इन विचारों को कोई स्थान नही था। उपर से हर दो तीन सालबाद आने वाली ज़चगी। १९२८ में मौसी को चौथा लड़का हुआ रत्नाकर। रत्नाकर के जन्म के दो दिन पूर्व दोपहर को मौसी जी जरा लेटी थी। तभी उन्हे लगा की उमाकाकू किसी से कुछ कह रही है।

"उमाबाई कावले ? हे भगवान ! बहुत बुरा हुआ" यह शब्द सुनते ही मौसी जी तेजी से उमाकाकू की ओर लपकी और पुछा, " क्या हुआ ?" " कुछ नही तुम लेट जाओ"

उमाकाकू बोली। किंतु मौसी जी इस उत्तर से असंतुष्ट थी। कुरेद कुरेद कर पुछने पर पता लगा की, मौसी जी की सगी सहेली उमाबाई कावले की प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई थी। मौसी जी की हालत भी काफी नाजुक थी। इस खबर ने उन्हे जबरदस्त सदमा पहुचा और उसी समय वे प्रसूत हो गयी। प्रसूति तो ठीक हुई लेकिन मौसी जी का तन और मन इतना दुर्बल और नाजुक हो गया था कि वे धनुर्वात की शिकार हो गई। उनकी यह हालत देख घरवालों की जान सुख गई। भाऊसाहब को तो भगवान याद आ गये। नन्हे मुन्ने मनोहर, पद्माकर एवं दिनकर का इतना सा मुँह हो गया था। भविष्य की भीषण आशंका से पूरा परिवार आतंकित था। लेकिन डा. ना. भा खरे भगवान के रुप मे आए। एकदम उचित निदान किया और योग्य दवाईया दी। और मौसी जी को मौत के मुँह से वापस ले आए। सभी की जान में जान आ गयी।

प्रसूति के दस दिनों बाद नन्हे रत्नाकर को उमाकाकू ने आँसू पोछते मौसी जी की गोद से उठा लिया था। अब पुरे डेढ़ महिने बाद उन्होंने उसे फिर मौसी जी की गोद में ला रखा तो उनके नयनों से सावन भादो बरसाए। ये आँसू हर्ष के थे।

वे मौसी जी से बोली, ''बधाईयाँ हो लक्ष्मी, तुम जीत गई। और हम भी विजयी हुए।'' मौसी जी की बिमारी के कारण नन्हा रत्नाकर थोडा कमजोर रह गया।

इस बिमारी से पूर्णतः स्वस्थ हो जाने पर मौसी जी फिर घुमने लगी। रोज के काम काज में हाथ बटाने लगी। और धीरे धीरे बाहरी दुनिया की गतिविधीयों पर ध्यान देने लगी। १९२८ में कुछ सुधारों के बहाने सायमन कमिशन नयी वार्ता के लिए भारत आनेवाला था। अंग्रेज सदस्यों के इस मंडल का नेतृत्व सर जान सायमन कर रहे थे। वे भारत आए किंतु उनके मंडल में एक भी भारतीय सदस्य नही था। और यह मंडल भारत बासियों को कुछ अधिकार धीरे धीरे प्रदान करने वाला था। पूरे देश में ये अधिकारी इस संदर्भ में जाच पडताल करनेवाले थे। भारत में कांग्रेस सहित सभी दल इसके विरुद्ध थे। सायमन वापस जाओ का नारा देश में गुँज रहा था। लाहौर में तो कहर बरपा गया। लाला लाजपतराय के नेतृत्व में निकाले गए विरोध मोर्चे पर जबरदस्त लाठी चार्ज हुआ। भारत के इस वृद्ध नेता पर लाठी से प्राणघातक प्रहार किये गए और इसी में उनका अंत हो गया। इसी घटना के कारण पूरे देश में क्रोध भड़क उठा। अब इस आंदोलन से दूर रहने की जनता सोच भी नही सकती थी। सायमन विरोध की आँधी चारो ओर बहने लगी।

१४ मार्च १९२९ के दिन सायमन कमिशन नागपुर आनेवाला था। उस दिन नागपुर, मध्य प्रदेश, तथा विदर्भ में जगह जगह हडताल का आवाहन किया गया था। नाग विदर्भ के अग्रणी नेता बै. नरकेसरी अभ्यंकर वर्धा आए थे। वे मौसी जी के नंदोई थे। उन्हे मिलने श्री. जमनालाल बजाज आदि कांग्रेस के नेता गण केलकर जी के घर आये और तय हुआ कि वर्धा में भी हडताल

कराया जाए और मोर्चा निकाला जाए। अबतक मौसी जी देश की परिस्थिती को दूर से ही देखती आई थीं। राजनीतिक गतिविधियों से उनका संबंध केवल सभा-सम्मेलनों तक ही सिमित था। लेकिन इस मोर्चे मे शामिल होकर उन्होने देश के सुखदुख में पहली बार सक्रिय योगदान दिया।

देश की स्थिती इतनी तेजी से बदल रही थी कि बदलते राजनैतिक माहौल से कोई भी अछूता नही रह सकता था। फिर मौसी जी, जिन्हें प्रारंभ से राष्ट्रीय विचारों के प्रति घनी आस्था थी, भला कैसे अलिप्त रहती ? सन १९३० प्रारंभ हुआ। महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का युगारंभ नमक सत्याग्रह से किया। उन्होने दांडी-यात्रा निकाली। अंग्रेजो से यह अलग प्रकार का संघर्ष था। समुचे देश में एक जबरदस्त आंदोलन हुआ और हजारो लोग सत्याग्रह में कुद पडे। महिलाए भी पिछे नही थी। श्रीमती सरोजिनी नायडू के पद चिन्होंपर सैकडों महिलाए भी आगे आई। एक महिला सुश्री. अनसुयाबाई काले नागपुर कांग्रेस की अध्यक्षा बनी जो कि एक अभुतपुर्व घटना थी। महिलाओं के जीवन विषयक दृष्टिकोण में महात्मा गांधी ने एक अभुतपूर्व क्रान्ति की थी। जो महिलाए बिना किसी कारण के घर की चौकट को कभी लांघती नही थी, आज सत्याग्रह में सहभागी हो रही थी। महिलाओं के देश सेविका ,संघो एवं सूत समितियों की स्थापना हो रही थी। प्रभात फेरियों में तो महिलाएं विशेष रुप से भाग लेती थी।

वर्धा भी इस आंदोलन की लपेट में आ गया था। घर की चार दिवारी में बैठे रहना मौसी जी के लिए अब असंभव था। भाऊसाहब को महिलाओं का इन आंदोलनों में सहभागी होना पसंद नही था। फिर भी मौसी जी उनके खान पान और अन्य बातों का पूरा प्रबंध करके प्रभात फेरियों, पिकेटिंग, सभा भाषणों आदि में यथासंभव भाग लेती। छोटे छोटे बच्चे, मेहमान और तुनुक मिजाज पति सभी को संभालकर मौसी जी अपनी देशभक्ती की प्यास बुझाती थी। अब तो केलकर परिवार की बहु बेटियां भी कारावास में जाने के लिए हिचकिचाती नही थी। हिंगणघाट में मौसी जी की चचेरी जेठानी रमाबाई केलकर रहती थी। वे सत्याग्रह में सहभागी हुई और उन्हे कारावास जाना पडा। घर में सभी इस समाचार पर हैरान थे। लेकिन मौसी जी को इस बात पर बडा गर्व था। उस दिन सब लोग इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। मौसी जी की बड़ी इच्छा थी कि वे भी इस आंदोलन में सक्रिय रुप से सहभागी हो। लेकिन यह कैसे संभव होता ? क्योंकि सत्याग्रह का यह आंदोलन पूरे जोरों पर था तभी ५ मई १९३० को मौसी जी पाँचवी बार प्रसूत हुई। उन्हे पाँचवा लड़का हुआ - कमलाकर। इन दिनों महिलाए इसी तरह अपनी घर गृहस्थी में फसी चली जाती थी। प्राकृतिक जिम्मेदारियों के बोझ तले युही दबती जाती थी। उनसे छुटकारा कभी मिलता ही नही था। किन्तु इतनी विपरित परिस्थिती में भी मौसी जी ने राष्ट्रकार्य की अपनी अंत:स्थ चिनगारी को कभी बुझने नहीं दिया। यही वे हम सामान्य

महिलाओं से बहुत आगे निकल जाती है। गांधी आयर्विन समझौता हुआ था। परिणाम शून्य था। लंदन में तीन बार गोलमेज परिषद हुई। विश्व में हर ओर मंदी छाई थी। भारत को भी इस मंदी की आँच लग रही थी। मौसी जी को इन सब बातों की ओर देखने की फुरसत ही नहीं मिलती थी। बच्चों और परिवार की देखभाल में दिन कब बीत जाता पता ही नहीं चलता। न कभी चार शब्द पढ़ने का अवसर मिलता और न कहीं आने जाने का। ऊपर से अप्रैल १९३२ को मौसी जी ने छठे लड़के को जन्म दिया। एक के बाद एक छह लड़कों को जन्म देने वाली इस माँ को उन दिनों लोगों ने खूब सराहा। छटे लड़के के आनंद में उसका नाम आनंद रखा गया।

इसी दौरान मौसी जी को अन्य चिंता कुतरने लगी। १९३० में भाऊसाहब को विषमज्वर का विकार हुआ था। इस ज्वर के बाद उनकीं प्रकृति पूरी तरह सुधरी ही नहीं। हमेशा की तरह डा. ना. भा. खरे को नागपुर से बुलवाया गया। मौसी जी को नया जीवदान देनेवाले इस डाक्टर पर सभी की असीम श्रद्धा और विश्वास था। उन्होंने भाऊसाहब को जाँचने के बाद सारे दाँत निकलवा लेने की राय दी। यह उपाय भी किया लेकिन फिर भी ज्वर हटा नहीं। भाऊसाहब अब अधिक तर घर में ही रहते थे। बाहर आने जाने की उनमें शक्ती ही नहीं थी। तत्पश्चात् १९३१ के मध्य में उनकी तबीयत थोड़ी थोड़ी सुधरने लगी। मूँह का स्वाद लौट रहा था। अतः थोडा बहुत खाने पीने की इच्छा होने लगी। मौसी जी भी पुनः उल्लसित हो उठीं। मौसी जी ने भाऊसाहब की उत्तम सेवा की।

किंतु भाऊसाहब की प्रकृति का यह सुधार एक छलावा साबित हुआ। आनंद के जन्म के कुछ दिनों बाद भाऊसाहब को पुनः थोडा ज्वर आने लगा। कमजोरी बढ़ती ही जा रही थी। पूरा परिवार पथरासा गया। एक भयानक काली छाया मंडराने लगी। दवा-पानी परहेज सबकुछ बाकायदा जारी था। फिर भी बुखार था कि हटता ही नही था। मौसी जी और परिवार वालों के मन में भय था कि कही यह वो बिमारी तो नही ? इस विचार से ही मन दहल जाता था। रोजाना का कामकाज यंत्रवत चलता रहता। बेजान, बरवस।

और एक दिन डाक्टर ने वही निदान किया जिस की मन में आशंका थी। तपेदिक (टी.बी.) का नाम सुनते ही मौसी जी को मानो साप सूंघ गया। लेकिन हिम्मत हारने से काम चलने वाला नहीं था। रही सही हिम्मत बटोरकर गिरती संभलती मौसी जी पुनः खडी हो गयी। आँठ बच्चों की इस जवान माँ ने कमर कस ली और भाऊसाहब को एक दृढ़ एवं परिपूर्ण साथ देने लगी। नियति उनके साथ एक क्रूर मजाक कर रही थी। डाक्टरी उपायों की पराकाष्ठा हो रही थी। जिसने जो कहा मौसी जी तुरंत उसे करती। क्या तंत्र, क्या मंत्र और क्या ओझा, क्या क्या नहीं किया उन्होने। दैवी उपायों की भी जोड़ दी। चतुर्थी का व्रत वे इतना सक्त रखती थी कि पानी का बूँद

भी नही पिती। वट-सावित्री का भी व्रत किया। इसके अतिरिक्त कई तरह की पुजाए, दान, धर्म आदि तो चल ही रहे थे।

एक दिन अपने भविष्य के बारे में सोचते सोचते, केलकर परिवार की सभी अल्पायु मृत्युएं मौसी जी को याद आने लगी। जेठ सदाशिवराव को ग्रंथी-रोग (प्लेग) निगल गया। तब वे २४ साल के थे। भरी जवानी में उमाकाकू बेचारी अकेली रह गयी। छोटी उम्र में मझले देवर लक्ष्मणराव के प्राण पिलिया ने हर लिए और अब मेरे पति! उनका कलेजा काप गया। यह कैसा अभिशाप है इस परिवार को? तभी उन्हे याद आया कि कही इस परिवार में किसी ने गूलर का पेड़ तो नही काटा? इस तरह की अल्पायु मृत्युओं का क्या यही कारण है? ना मौसी जी ने कभी ऐसी बात सुनी थी और नाही किसीको वह करते देखा था। लेकिन किसी अज्ञात व्यक्ती की भूल का प्रायश्चित्त करने की मौसी जी ने ठान ली। तथा गुलर के पेड़ को एक करोड प्रदक्षिणा डालने का उन्होने संकल्प किया। परमेश्वर के प्रति दृढ़ निष्ठा और अटूट विश्वास के कारण मौसी जी यह सब कर रही थी। भगवान मन्नते पूरी करता है या नहीं पता नही। किंतु इस प्रकार के तपाचरण से एक मानसिक शक्ती जरुर मिलती है। सब कुछ सहन करने का सामर्थ्य मिलता है ऐसा मौसी जी मानती थी। आगे चलकर इस शक्ति और सामर्थ्य का मौसी जी को बहुत लाभ हुआ।

सारे दैवी और डाक्टरी उपाय निष्प्रभ साबित हुए। भाऊसाहब की हालत बिगडती ही जा रही थी। मौसी जी के पिता बीच बीच में अपने दामाद को देखने आते थे। अपनी लाडली कमल की हालत उनसे देखी न जाती। एक बार उन्होने कहा, '' सुना है मद्रास में कही इस बिमारी पर अच्छा इलाज किया जाता है।'' पूछताछ की गयी। डाक्टर की सलाह ली गयी। और मद्रास के करीब मदनपल्ली सॅनिटोरियम में भाऊसाहब को भरती कराने का निर्णय लिया गया। मौसी जी और उनकी बडी बेटी शांता उनके साथ जाने वाली थी। सारी तैयारिया पूरी हो गयी और बड़ी उम्मीद से तीनों मदनपल्ली रवाना हुए। उपचार तुरंत शुरु किये गए। सुप्रसिद्ध डाक्टर डेव्हिड के मार्गदर्शन से उपचार होने लगे। पहले महिने में उनकी तबीयत काफी सुधारने लगी। भाऊसाहब को थोडी राहत मिली। लेकिन यह सुधार भी एक छलावा ही साबित हुआ। उनकी तबियत पुनः बिघडने लगी। मौसी जी महीना भर यहां भाउसाहब की शुश्रुषा में लगी थीं। और उधर घर पर उमाकाकू बच्चों की देखभाल में। वे भी सब काम करते करते थक जातीं। अतः यू तय हुआ कि मौसी जी वर्धा में बच्चों के पास रहे और उमाकाकू भाऊसाहब के पास। मौसी जी बड़ी अजीब दुविधा में थी। भाऊसाहब को छोड़कर जाना भी कठिन था और बच्चों से दूर रहना भी। अंततः दिल पर पत्थर रखकर मौसी जी ने भाऊसाहब से विदा

ली। दोनों मन ही मन बहुत व्याकुल थे। चलते समय मौसी जी के मन में घना अंधेरा छाया था।

उमाकाकू भाऊसाहब की देखभाल करने लगी। किंतु अपनी बिगडती हालत को देख भाऊसाहब ने पुनः वर्धा जाने का निर्णय लिया। भविष्य उन्हे स्पष्ट दिख रहा था एक दिनउन्होने उमाकाकू को उनके पास बुलाकर बैठने का इशारा किया। उमाकाकू पास जाकर बैठ गयी। भाऊसाहब की आँखे भर आयी। यह देख उमाकाकू भी विचलित हो गयी। भाऊसाहब बोले, "उमाभाभी, अब हम घर लौट चलते है। बड़ी उम्मीद से यहा आए थे। लेकिन कोई आशादायक परिणाम नही निकला।" निराश भाऊसाहब को उमाकाकू ने धीरज बँधाने की कोशीश की, परंतु अत्यंत क्षीण आवाज में भाऊसाहब बोले, "भाभी क्यों झूठी आस लगाए बैठी हो ? समय बहुत कम है। घर पहुँचकर समय मिले ना मिले, इसिलिए जो कुछ कहना चाहता हूँ अभी कह देता हूँ। भाभी, मेरे जाने के बाद लक्ष्मी और बच्चो को वही प्यार देना जो आज तक देती आयी हो। उन्हे संभाल लेना।" यह सुनते ही उमाकाकू की हिम्मतजवाब दे गयी। किंतु पुरा धैर्य बटोरकर वे बोली, "शांत रहिये देवरजी। यदि ऐसा कुछ होता है तो मरते दम तक लक्ष्मीबाई और बच्चों के प्रति मेरे व्यवहार में कोई अंतर नही आएगा।" भाऊसाहब के मन का बोझ हलका हो गया। वे सब पुनः वर्धा आ गये। जिस उम्मीद से वर्धा छोडा था वह तो अब नही थी। किंतु भाऊसाहब अब एकदम शांत नजर आ रहे थे। वे चिंतित नही दिखते थे। जबतक मनुष्य सोचता है कि, "शेर आ गया तो खा जाएगा।" तब वह शेर से डरता रहता है। जब वास्तव में शेर आता है तो पता नही कहां से उसमे शेर से लढ़ने की शक्ति आ जाती है। समस्या से डटकर झूंजने के लिए वह तैयार हो जाता है। भाऊसाहब की यही हालत थी। मौसी जी का पूजापाठ, व्रतादि देख भाऊसाहब व्याकुल हो उठते थे। परंतु मौसी जी के कृतित्व पर उन्हें भरोसा था। और उमाकाकू के दिए वचन से उन्हें काफी तसल्ली भी मिली थी।

तत्पश्चात, भाऊसाहब का स्वास्थ्य लगातार गिरता ही गया। सब उदास थे। रोजाना के कामकाज बस करना है इसलिए हो रहे थे। मौसी जी की बड़ी बेटी शांता अपने पिता की अविश्रांत सेवा कर रही थी। मौसी जी और उमाकाकू की लाख कोशिशों के बावजूद भी वह पिता जी से जरा भी दूर नहीं होती थी। अपनी इस गुणवान बेटी को देख भाऊसाहब बहुत ही व्यथित होते।

जीवन और मृत्यु की रस्सी खेंच में जीवन पिछड रहा था। जुलाई का महिना शुरु हुआ। बरसात का मौसम आया। और बीमारी का जोर बढ़ता गया। ३,४ जुलाई से भाऊसाहब की आवाज़ धँसने लगी। गात्र पूरी तरह शिथिल हो गए। घर के लोगों के तसल्ली के लिए डाक्टर

आते तो थे किंतु उनका आना निरर्थक हो चुका था। मन ही मन सब लोग भावी को समझ गए थे। किंतु बोल कोई नहीं रहा था। ऐसे में ६ जुलाई को १९३२ का सवेरा हुआ और केलकर परिवार में अँधेरा छा गया। भाऊसाहब दुनिया से चल बसे। मौसी जी पर गाज गिरी।

उस के बाद होने वाले सभी संस्कारो और क्रियाकर्मो को मौसी जी पथराई नजर से देखती रहीं। जिस संकट की आहट से मन चिंता में डूब रहा था वह आकर ही रहा था। घर में दो लड़कियाँ और छह लड़के थे। और उम्र केवल २७ वर्ष की थी। भविष्य मूंह बांधे सामने खडा था। नागपुर से माता-पिता आए और उन्हें देखते ही मौसी जी के मन का बांध टूट गया। अपनी लाडली कमल की यह दशा देख के दोनों जड से हिल गये। 'माँ', कह कर बिलगती हुई लक्ष्मी अपनी मां की गोद में मूंह छिपाकर फूट फूटकर रो पड़ी। मां का ममता भरा हाथ उनकी पीठ पर होले से फिरने लगा। तब जा कर कहीं उनके मन को कुछ शांती मिली।

मौसी जी के पिता अण्णाजी ने कहा, "कमल कुछ दिनों के लिए नागपुर चलों।" किंतु अब पहाड जैसा संकल्प कर पूरी तरह सें संयत हुई मौसी जी ने दृढता सें "नहीं कहा। उमा काकूने राहत की सांस ली। चंद दिनो के लिए ही सही मौसी जी यदि नागपुर गई होती तो उमा काकू को भगवान याद आ जाते। कारण यह था कि भाऊसाहब के देहांत पर उन्हीं उमा काकू ने मौसी जी से कहा था, "लक्ष्मीबाई, आज से हमारा देवरानीयों का रिश्ता समाप्त। अब से आगे तुम मेरी छोटी बहन हो।" और यह रिश्ता उन्होने अंत तक निभाया।

अपना दुख पी कर बच्चों की देखभाल करना मौसी जी के लिए अनिवार्य था। छोटा आनंद केवल चार माह का था। पिता की छत्र छाया से वंचित उस नन्हें जीव को देख मौसी जी का कलेजा मूँह को आ जाता था। किंतु बडे ही निश्चय से वे अपने मन को संयत करती थी। नन्हें आनंद को उन्होने कभी भूल से भी कुलक्षणी नहीं कहा। सर पर ढाये दुख को झेलती हुई वे दृढतापूर्वक खडी हुई।

किंतु फिर एक बार उनके पैरों तले की जमीन खिसकने लगी। भगवान मानों चारों ओर उनकी परीक्षा ले रहा था। मौसी जी की बडी लड़की बहुत ही गुनी और बुद्धिमती थी। सब की और विशेषतःअपने पिता की वह लाडली थी। उस जमाने में भी उसनें मैट्रिक की परिक्षा पीस कर ली थी। वैसे तो दोनों लड़कियों को शिक्षा से बहुत लगाव था। किंतु वर्धा में लड़कियों का कोई विद्यालय नहीं था। अतः उन्हें पढ़ाने के लिए शिक्षक घर में आते थे। घर में पढ़ाई कर मैट्रीक हुई शांता वर्धा की पहली लड़की थी। अतः स्वाभाविक था कि वह घर में और बाहर सब से सराही जाती थी। मौसी जी को भी दोनो लड़कियों से बहुत प्यार था। एक शाम शांता ने मौसी जी से कहा, " मुझे भूक नहीं है, मैं भोजन नहीं करुंगी।" मौसी जी ने जरा चौंककर उसकी

ओर देखा। इन दिनों कई बार मुझे भोजन नहीं करना ऐसे शांता कहती तो थी। मौसी जी ने शांता का हाथ हाथ में लिया तो पाया कि वह कुछ गरम है। चेहरा भी उतरा उतरा सा था। उन्होंने कहा, '' अक्का, क्या जी अच्छा नहीं है ? '' तब शांता ने कहा,'' आजकल बदन गर्म हो जाता है। बहुत थकान अनुभव करती हूँ। मुख बेस्वाद हो जाता है। '' मौसी जी सकपकाई। उन्होंने तुरंत उसे डाक्टर के पास भेजा। डाक्टर ने दवा दी। किंतु पंद्रह दिन बीत गये बुखार उतरने का नाम नहीं ले रहा था। प्रतिदिन शाम हल्का सा बुखार हो ही जाता था। दवाईयां बदल कर देखी किंतु कोई लाभ नहीं हुआ।आखिर मौसी जी का संदेह सच निकला। शांता को भी तपेदिक हो गया था। इसी बिमारी ने घर के मुखिया को छीन लिया था और अब वह इस उभरती कली को भी ग्रासने मूंह फैलाए आया था। उन दिनों तपेदिक एक असहाय बिमारी थी। मौसी जी ने उमाकाकू से कहा, '' दीदी हम लोगों ने पता नहीं क्या अपराध किया है, जो नियति हमें यूं हमारे पीछे पड़ गई हैं।'' उमाकाकू ने इस पर इतना ही कहा कि,'' होनी को कौन टाल सकता है। भाग्य में जो लिखा है वो झेलना ही पड़ेगा। उपचार और उपाय करना हमारे हाथ में है। यश देना विधाता के हाथ में है। '' दोनो देवरानियां हताश होकर बैठी थी।

किंतु मौसी जी को एक दूसरी ही बात सता रही थी। कहीं कोई ऐसा तो नहीं कहेगा किं, शांता आखिर सौतेली बेटी थी इसीलिए उसके स्वास्थ्य की उपेक्षा की गई होगी। लोगों की तो क्या कहें। शांता के ननिहाल वाले ही क्या कहेगे। उन्होंने मन में आया यह विचार उमाकाकू के पास व्यक्त किया। तब उन्होंने कहा, '' बहन दुनिया का क्या, वह तो दोनो तरफ से बोलती ही रहती है। किंतु मैं जो सारी स्वयं देख रही हूँ, जन्मदात्री मां क्या करेगी इतनी सेवा तुमने शांता की की है। ''

अंत में शांता को नागपुर में उसके ननिहाल भेजा गया। सोचा था कि कुछ आबोहवा बदल जायेगी और कुछ और इलाज हो सकेगा। कैसे भी हो शांता को स्वास्थ्य लाभ हो इसलिए सारा जी तोड प्रयास था। किंतु सारे उपाय हार गए फिर वही प्रसंग ताजा हो गया। मन की वही कश्मकश हुई। अपने ही आंखो के सामने कलिसा खिलता वह जीवन मुरझाने गया। अपने आचरण से सब की प्रिय हो गई शांता ७ जनवारी १९३४ को भगवान को प्रिय हो गई। मौसी जी ने इस आघात को भी झेल लिया।

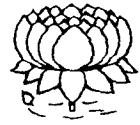

३

परीक्षा का समय

वर्ष १९३५ का उदय हुआ। अब तक आई विपदाओं को झेलकर मौसी जी काफी कुछ संभल गई थी।अब उन्हे अपनी बड़ी गृहस्थी चलाने का प्रबंध करना आवश्यक हो गया था। जमा और खर्च में तालमेल रखना और जितनी चादर हो उतने ही पाँव पसारना अनिवार्य था। मौसी जी के देवर यशवंतराव ने एक दिन उमाकाकू से कहा,''भाभी कुनबा बड़ा है और खर्चा भी उतना हीं बड़ा है। फिर गृहस्थी बढ़ती हुई है। अतः इतना सारा खर्चा पूरा करना कठीन हो गया है।'' इस पर उमाकाकू ने कहा,''देवर जी आखिर आप कहना क्या चाहते है ? साफ साफ कहिये''।

यशवंतराव ने कहा, ''हम बटवारा किए लेते है। ऐसा करने से प्रत्येक को अपने दायित्व का बोध होगा।'' अन्य शब्दों में ये विभक्त होने का प्रस्ताव ही था। उमाकाकू ने दृढ़ता से कहा, ''ठीक है, कर लीजिए बटवारा, लेकिन मैं यह घर छोड़ने वाली नहीं हूँ और न ही लक्ष्मीबाई और बच्चों को अपने से दूर करने वाली हूँ।'' उमाकाकू की इच्छानुसार ही निर्णय हो गया। यशवंतराव और पत्नी अलग हो गये और उमाकाकू और बच्चे साथ रहने लगे।

उनका निवासी मकान मौसी जी के हिस्से में आया। वह काफी अच्छी अवस्था में था। बाकी आर्थिक प्राप्ति न के बराबर थी। खेतीबाडी काफी बड़ी थी। मालगुजारी भी थी किंतु परिवार में बीच में जो बिमारी घुसी थी उसके कारण खेत की ओर ध्यान देने में किसीको फुरसत नहीं मिलि। बटाईदार जो भी अनाज लाकर देते उसी को प्राप्ती माना जाता था। ऐसी दयनिय अवस्था थी। बीमारी में खर्चा तो बहुत अधिक हुआ था। उसे पूरा करना आवश्यक था। पास में नगद छदाम भी नहीं था। खर्च को तो बीसियों राहें थी। बच्चे बड़े हो रहे थे। उनकी शिक्षा -दिक्षा , कपडा कोई एक बात हो तो गिने। हर नग पैसा मांग रहा था। ऐसी स्थिती में मौसी जी ने अपने भाई नीलकंठराव को वर्धा बुला लिया। कभी कबार पिता जी भी मिलकर जाते

और आवश्यकताओं को देख समझ कर जाते थे। किंतु वे भी बुढे हो गए थे। ऐसे में मौसी जी ही परिवार प्रमुख बन गई थी। सबसे पहले उन्होने अपनी खेती की ओर लक्ष्य केन्द्रीत किया। अपने हिस्से में आए खेत की दखबाल करना आवश्यक था। लेकिन खेती की देखभाल वहाँ गए बिना कैसे हो सकती थी ? नीलकंठराव ने इस दायित्व को तनिक हल्का अवश्य किया था। किंतु खेती तीन स्थानों में थी। एक यवतमाल जिले में यानि लगभग पचास मील दूर था। मौसी जी ने कुछ सोच कर गांव में ही अपने भाई के घर रहने वाले और सप्ताह के सात दिन सात घरों में भोजन कर गुजारा करने वाले एक बहुत ही मेधावी छात्र को बुला लिया। इस लडके का नाम दत्तु वैशंपायन था। अपनी आयु के बारहवे-तेरहवें वर्ष से केलकर परिवार में उसका आना जाना था। मौसी जी ने अब उसे अपने ही घर में हमेशा के लिए रहने बुला लिया। उमा काकु की समझ में नहीं आ रहा था कि मौसी जी यह क्या कर रही हैं। वैसे ही कुनबा इतना बड़ा था। हर मूँह को दो जून रोटी देना कठीन हो रहा था। उसमें मौसी एक और खाने वाला मूँह क्यों बढ़ा रही थी। किंतु मौसी जी ने दत्तु को घर लाने का निर्णय सूझ-बूझ के साथ दूर की सोच कर लिया था। उन्होने मैट्रीक तक उसे पढ़ाया। अपने छह बच्चों में उसे अपना सातवां बच्चा माना और इस मान्यता को अंत तक निभाया। उन्होने दत्तु को खेती बाडी का ज्ञान कराया। जानकारी दी और उसकी सहायता से अपनी खेती बाडी को संभाला। मौसी जी को व्यक्ति की परख और गुणों और पात्रता की पहचान थी। यही परख आगे चलकर समिति का कार्य बढ़ाने में भी काम आई। खेती का प्रबंध तो हो गया, किंतु उतने मात्र से काम चलने वाला नहीं था। कुनबे का रोज का खर्चा पूरा करने के लिए पास में नगद पैसा आवश्यक था। खेती से आनेवाली प्राप्ती अनाज के रुप में आती थी। नगद प्राप्ती नहीं के बराबर थी। मौसी जी ने सोचा और एक साहसी योजना बनायी। उसे साहसिक इसलिए मानना पडेगा क्योंकि उन दिनों अपने मकान में उन कोई किराएदार नहीं रखता था। मकान किराए से देना अप्रतिष्ठा का माना जाता था। शान के खिलाफ माना जाता था। किंतु मौसी जी ने मकान किराए पर देने की ठान ली। उमाकाकू मौसी जी के किसी भी निर्णय का विरोध नहीं करती थी। मौसी जी के विचार भी प्रतिष्ठा और परिवार की शान आदि के बारे में दकियानुसी नहीं थे। झूठ खयाली पुलावों को उनके मन में कोई स्थान नहीं था। मकान किराए पर देने का निर्णय लिया तो यह भी आवश्यक था कि किराएदारों के लिए कुछ सुविधाएं उपलब्ध कराई जाए जिनके लिए पुन: धन की आवश्यकता थी। उन्हें सलाह दी गई कि अपनी जमीन बेंच दे और पैसा खडा करें। किंतु जमीन बेचना मौसी जी को सपने में भी आया नहीं था। काफी सोचने के बाद उन्हों ने अपना स्त्रीधन बेचने का निर्णय लिया। अपने हिस्से में आए सोने के आभूषण वे बेचने लगी थीं। बात रिश्तेदारों में फैली। विधवा नारी को बिन मांगे सलाह देने तो बिसीयों लोग होते है। उन्हीं में से एक ने

मौसी जी से कहा, " लक्ष्मीबाई अपना स्त्रीधन बेच कर आप ठीक नहीं कर रही । केलकर परिवार की आब्रू इस तरह आप बाजार में ले जायेंगी। अतः अच्छा हो आप यह विचार त्याग दे।" मौसी जी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। किंतु वे अपने विचार से डिगी नहीं। सोच विचार के बाद लिया निर्णय वे कभी बदलती नहीं थी। आभूषण बेंचकर तथा कुछ अन्य हिसाब और जुगाड़ जमा कर मौसी जी ने प्रतिमाह चार सौ रुपया किराया मिलेगा ऐसा प्रबंध किया और किराएदार रख लिए। इस तरह उन्होने अपनी गृहस्थी चलाने तथा बच्चों की फी एवं पुस्तकों आदि का खर्चा पुरा कर लिया। परिवार प्रमुख का दायित्व मौसी जी को ही निभाना पड रहा था। दोनों देवरानियों ने दो बहनों की भाँति घर के काम बाँट लिए थे। उमा काकू ने माता का दायित्व उठाया था और मौसी जी ने पिता का।

परिवार के कर्ता-धर्ता पुरुष को जिन बातों का सामना करना पडता मौसी जी उन सबका दृढतापूर्वक सामना करतीं। समस्या या संकट एक जैसे थोडे ही होते हैं। १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ। अंग्रेज सरकार ने युध्द सहायता निधि सख्ती के साथ अनिवार्य ढंग से इकठ्ठा करने का सिलसिला छेड दिया। यह निधि मालगुजारों और कास्तकारों से ही ऐसा जाता था। वर्धा जिले में सावली ग्राम में केलकर परिवार की खेती और मालगुजारी थी। वहाँ की एक घटना --तहसीलदार और अन्य सरकारी कर्मचारी सरकार में अपना पौवा जमाने और नौकरी में पदोन्नती प्राप्त करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र में पडने वाले गांवों सें बलपूर्वक अधिक युद्ध निधि इकठ्ठा करते थे। सावली के तहसीलदार ने सावली ग्राम में भी यही किया। किंतु उसे एकदम उल्टा अनुभव आया। युद्ध निधि संकलन समाचार मौसी जी के कानोंतक पहलें ही आ चुका था। स्वतंत्रता प्रेमी मौसी जी के मन में अंग्रजों के प्रति अत्यंत क्रोध था। उन्हें निधि का इस तरह ऐंसा जाना अन्यायपूर्वक लगा और इसीलिए उन्होने निधि देने से मना कर दिया। सरकारी अधिकारी को यूं खुल्लम खुल्ला निधी देने से इन्कार करने का अर्थ था सरकार का विरोध करना । बात उस तहसीलदार के अहम पर चोट कर गई । बदला लेने के अवसर की ताक में वह रहने लगा और वह अवसर उसके हाथ आ भी गया। एक दिन हिंगणघाट तहसील कार्यालय में काम करने वाला मौसी जी का हितैशी उनके यहाँ आया और पूछने लगा, " लक्ष्मीबाई आप पर खेती का लगान कहीं बकाया तो नहीं हैं ?" मौसी जी ने पुछा ' ऐसे प्रश्न का कारण क्या है ?' इस पर वह व्यक्ति बोला, "सांवली में आपकी खेती की सारी प्राप्ति को नीलाम करने का आदेश तहसीलदार निकालने जा रहा है । हो सकता है उसने आदेश जारी भी कर दिया हो।" इस संदर्भ में नियम तो यह था कि यदि मालगुजार द्वारा सरकारी लगान समय पर अदा नहीं किया गया तो उसे सरकार की ओर दो-तीन बार पूर्व सूचनाएं से दी जाती थी और उस पर भी लगान चुकता नहीं किया गया तो फसलों

और मवेशियों का निलाम कर, लगान वसूल किया जाता था। किन्ही दिक्कतों के कारण उस गांव का लगान सरकार में जमा नहीं किया गया था। किंतु इस विषय में उन्हें एक बार भी नोटीस नहीं दिया गया था। मौसी जी समझ गयी कि यह अब कुछ निधि देने से इन्कार करने का बदला लिया जा रहा है। तहसीलदार ने सोचा था कि आखिर एक असहाय विधवा कर ही क्या सकती है ? वह अपने पास आकर गिडगिडायेगी फिर उससे युद्धनिधि की मांग आसानी से की जा सकेगी और बर्बस ही इस स्त्री यह निधि को देना पड़ेगा। किंतु मौसी जी इतनी आसानी से हार मानने वाली नहीं थी। उन्होने मन ही मन में कुछ निश्चय किया। आवश्यक सभी कागजाद साथ लेकर वे जिलाधीश की कचहरी गयी। जिलाधीश को उन्होने सारा मामला ठीक तरीके से समझाया और लगान अदा करने की अवधी बढ़ाने वाला आदेश उनसे प्राप्त किया। घर लौटने पर उमाकाकू ने पूछा, ''अब क्या करने वाली हो ? कौन जायेगा हिंगणघाट ?'' मौसी जी ने कालावधी बढ़ाने का वह आदेश पत्र देकर दत्तु वैशंपायन को हिंगणघाट तहसीलदार के पास भेजा। दत्तु ठीक उसी दिन सवेरे तहसीलदार के बंगले पर पहुँचा। जिस दिन तहसीलदार कुर्की करने जा रहा था। दत्तु को देखते ही तहसीलदार चिल्लाया,'' अभी-इसी वक्त पुरा पैसा जमा करो वरना मेरे लोग तुर्की लेकर सावली जा रहे है। तहसीलदार से दुश्मनी मोल लेना आसान बात नहीं है।'' दत्तु ने बिना कुछ कहे शांती के साथ अवधी बढ़ाने का आदेश पत्र तहसीलदार के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसे देखते ही तहसीलदार की स्थितीकाटों तो खुन नहीं वाली हो गयी। उसके बाद वह तहसीलदार मौसी जी से टकराने की कभी हिम्मत नहीं कर सका। लगता है मौसी जी का जन्म ही दिक्कतों पर मात करने के लिए था। किसी भी संकट में वे कभी हिम्मत नहीं हारी। किसानी के कोई न कोई झंझट हमेशा चलते ही थे। साथ ही बच्चों की पढ़ाई लिखाई की ओर भी उन्हें ध्यान देना पड़ता था। उनके पाठशाला के साथ ही व्यक्तित्व को भी वे आकार देती थी। उचित समय पर वे बच्चों के समर्थन में डटकर खड़ी होती थी।

एक दिन की बात है, दिनकर पाठशाला से लौटा तो एकदम गुमसुम। चेहरा रुआँसा था। भोजन करते समय भी वो कुछ बोलता नहीं था। मौसी जी की नजर से बात छुपी नहीं। उन्होने उसे बुलाया और पाठशाला में क्या हुआ सारी बाते उससे कहलवाई। हुआ यह था कि पाठशाला में बच्चों को अपनी दादागिरी से और गुंडागर्दी से सदा तंग करनेवाले अब्दुल नाम के एक लड़के की, अवसर पाते ही दिनकर तथा उसके दो तीन मित्रों ने खुब पिटाई की थी। इस अपराध के लिए प्राचार्य ने तीन रुपयों का दंड किया था। और अब्दुल की सबके सामने क्षमा मांगने के लिए कहा था। मौसी जी ने सारी बात ध्यानपूर्वक सुन ली। वास्तव में मामला क्या है उसकी गहराई में जाकर छानबिन की। और स्वयं प्राचार्य के पास जाकर दंड भरने की तैयारी दर्शायी। किंतु साथ ही उन्होने प्राचार्य से कहा, '' बच्चों का इसतरह मारपीट

करना निसंदेह अनुचित है। इसके लिए आपने दंड किया वह भी ठीक है। किंतु बच्चों को सदा तंग करनेवाले अब्दुल की बच्चों ने सब के सामने यदि क्षमा माँगी तो उसे पुनः आवारागर्दी करने की मानो छुट मिल जायेगी। अब्दुल की भी समझ में यह बात आनी ही चाहिये कि उसकी गुंडागर्दी बच्चे चलने नहीं देंगे। इसलिए मेरा लड़का क्षमा नहीं मांगेगा।'' यह बात मौसी जी ने इतनी दृढ़ता से कही, उनकी वाणी में इतनी तेज धार थी कि प्राचार्य ने क्षमा का आग्रह छोड दिया।

''लक्ष्मीबाई, उपनयन संस्कार का एक निमंत्रण आया है। उसी समारोह में उनके यहाँ ग्रहशांति, धार्मिक विधी और होम हवन भी है '' , उमा काकू मौसी जी से कह रही थी। मौसी जी के ही किसी रिश्तेदार के यहाँ यह समारोह था। उन्होने कहा, ''तब तो मैं स्वयं जाऊँगी क्योंकि बच्चों को तो पाठशाला जाना है। और किसी न किसी को तो समारोह में जाना पड़ेगा ही।'' उमा काकू मौसी जी की ओर देखती ही रह गयी। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि मौसी जी को बात कैसे समझाये। आखिर धीरज बटोरकर उन्होने कहा, '' बहेना,हम जैसी महिलाओं का ऐसे समारोह में जाने की प्रथा नहीं है। उसे अपशकुनी माना जाता है।'' मौसी जी के चेहरे पर हलकी सी शिकन उभरी और उन्होने तपाक से कहा, '' हम जैसी माने कैसी ? विधवा ही न ? हम विधवा हो गयी, क्या यह हमारा अपराध है ? यह नहीं चलेगा। मैं जान बुझकर वहाँ जाऊँगी। ऐसे समारोह में भटकने फिरने का मुझे कोई शौक नहीं। किंतु यह अनुचित प्रथा किसी न किसी को तोडनी हीं होगी।'' इतना कह कर ही वह नहीं रहीं, तो उस समारोह में वे स्वयं उपस्थित हुई। उनके विद्रोही स्वभाव को समारोह में हुई टिका टिप्पनी की कतई कोई परवाह हीं नहीं थी।

अंधश्रद्धा, अर्थहिन रुढ़ी के विरुद्ध कृति करने में मौसी जी कभी जरा भी हिचकिचाई नहीं। अतीव धार्मिक, कर्मठ होते हुए भी मौसी जी ने पाखंड को कभी आश्रय नहीं दिया। घर में झाडू लगाने, बुहारने और बर्तन तथा कपड़े धोने के लिए उन्होने एक हरिजन महिला को रखा था। पासपड़ोस में काफी खुसर फुसर होती रहीं। किंतु मौसी जी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे तो केवल एक ही बात देखती थी कि नोकर किस जाती का है इसका विचार करने की अपेक्षा उसे साफ सफाई का बोध है या नहीं यह देखना आवश्यक होता है। उन्होने उस हरिजन महिला को सब बाते सिखाई। वे अपने बच्चों से सदैव कहा करती, '' गंदे ब्राम्हण की अपेक्षा तन मन से निर्मल रहनेवाली हरिजन किसी भी समय अच्छी होती है। मौसी जी जानती थी कि यह हरिजन लोग स्नान किये बगैर पानी की बूँद भी मूंह में नही डालते। छुआछुत की भ्रांत धारणाओं को उन्होने कभी का त्याग दिया था। साफ धोकर सुखाई साड़ी उन्हे पुजापाठ के लिये अधिक पसंद थी। सालभर में मुश्किल से जिसे कभी पानी का स्पर्श होता हो ऐसा वस्त्र केवल रेशम का है

इसलिए पुजापाठ के लिए अधिक इष्ट है ऐसा उन्होंने कभी नहीं माना न कभी स्वयं ऐसा वस्त्र परिधान किया। बच्चो से भी उन्होने ऐसा वस्त्र परिधान करने का आग्रह कभी नहीं किया। उस जमाने में मौसी जी के प्रगतीशील विचार सबके लिए अनोखे थे। उमा काकू ने भी उनके आचार विचार को बढ़ावा दिया।

देश में अब शिक्षा का काफी प्रसार हो चुका था। स्थान स्थान पर विद्यालय शुरु हो गये थे। महाविद्यालयों की स्थापना हो रहीं थी। वर्धा भी हवा के इस रुख से अछुत नहीं रहा। १९३५ के लगभग शैक्षिक वर्ष के प्रारंभ में पहला महाराष्ट्र विद्यालय प्रारंभ हुआ। फिर भी लड़कियों की शिक्षा का वर्धा में कोई खास प्रबंध नहीं था। मौसी जी की दोनो लड़कियों को घर में शिक्षक बुलाकर मैट्रीक तक की शिक्षा इसलिए पूर्ण करनी पड़ी कि वर्धा में कोई कन्याशाला नहीं थी। किंतु सभी लड़कियों के लिए यह असंभव था। वर्धा में महाराष्ट्र विद्यालय खोलने के लिए श्री. बाबुराव खरे और मौसी जी के देवर श्री. यशवंतराव केलकर ने पहल की थी। अत:घर में शिक्षा - संस्थाओंके बारे में कोई न कोई बात हमेशा हुआ करती थी। मौसी जी सोचती, महाराष्ट्र विद्यालय हो गया सो तो ठीक हुआ किंतु यह लोग लड़कियों की शिक्षा के बारेमें क्यों नहीं सोचते? यह प्रश्न उनके मन में हमेशा उठता। एक दिन उन्होंने अपनी पढ़ी लिखी देवरानी शांता बाई से कहा, "शांताबाई आप पढ़ी लिखी है, यहा एक कन्याशाला प्रारंभ करने के लिए आप ही पहल क्यों नहीं करती ? आप इसमें अवश्य सफल हो जायेगी।" शांताबाई ने कहा, " बहनजी यही बात कई दिनों से मैं सोच रही हूँ। अच्छा हुआ जो आपने यह बात छेड़ी। "उसके पश्चात शांताबाई ने कन्याशाला की अपनी योजना अपने पति यशवंतराव केलकर के सामने रखी। उनके अनेक शिक्षा प्रेमी सहयोगियों को भी यह विचार बताया। देखते ही देखते यह कल्पना साकार हो गयी। शांताबाई के अथक परिश्रम से वर्धा में १९३६ के जुलाई मास में पहला कन्या विद्यालय प्रारंभ हुआ। मौसी जी उस विद्यालय की कार्यकारिणी की एक सदस्या थी और शांताबाई के निधन के पश्चात अनेक वर्षोंतक उस संस्था की उपाध्यक्षा भी रहीं थी।

इन दिनों मौसी जी ने देखा कि पाठशाला से लौटने पर बच्चे घर में या आसपास नहीं दिखाई देते। पाठशाला से आने के बाद बस्ता पटककर जल्दी जल्दी में कुछ खा कर सब के सब कही गायब हो जाते थे। बच्चों की हर हरकत पर बारिकी से नजर रखनेवाली मौसी जी के ध्यान में यह बात तुरंत आ गई। उनके मन में प्रश्न उठा था कि बच्चे आखिर कहा जाते है ? एक दिन मनोहर का एक मित्र हाथ में लाठी थामे उनके घर आया। मौसी जी ने उससे पुछा, " हर शाम तुम लोग कहा जाते हो और यह लाठी क्यों लिए हो ? कहीं मारपिट करने का तो इरादा नही

है ?''

उसने कहा, '' नहीं नहीं, मारपीट वगैरा नहीं जी, हम लोग शाखा में जाते है।''

''शाखा में ?'' मौसी जी ने आश्चर्य से पुछा।

'' जी हा, अप्पाजी की शाखा में।''

उस समय तो मौसी जी ने, ''ठीक है, ठीक है'' इतना ही कहा। रात में उन्होने इसके बारे में बच्चों से जादा पूछताछ की तो उन्हे ज्ञात हुआ कि नागपुर में डा. हेडगेवार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा यहां श्री. अप्पाजी जोशी ने प्रारंभ की है। और यह सब बच्चे उसी शाखा में जाते है। इसके बाद मौसी जी श्री. अप्पाजी से मिली और संघ में क्या काम होता है इसकी जानकारी उनसे प्राप्त की। उन्हे संतोष हुआ कि बच्चे उचित स्थान पर ही जाते है। यह था संघ के साथ उनका पहला संपर्क।

४

नारी जीवन की दुःखभरी कहानी

पति निधन के पश्चात मौसी जी का पठन बढ गया था। फुरसद का समय वे सोने में कभी जाया नहीं करती थीं। जब तक समाचार पत्र पढ नहीं लेती; उन्हें चैन नहीं आता था। समाचार पत्र पढती रहने के कारण उन्हें राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का आकलन भली भाँति हो गया था। २४ अक्तुबर १९३२ के पुणें के दैनिक 'सकाल' में संपादकीय छपा था - 'महिलाएं तथा स्वावलंबन'। मौसी जी ने उसे ध्यान से पढा। उसी अंक में विदर्भ महिला सम्मेलन का उल्लेख था और उस सम्मेलन में प्रख्यात शिक्षाविद् सुश्री यमुनाबाई हिर्लेकर का अध्यक्षीय भाषण भी। उसे भी मौसी जी ने पढ़ा। उसमें महिलाओं को आवाहन किया गया था कि वे चूल्हा चौकी और संतान-रोटी की दायरों में ही अपने आप को बांधे न रखे। यहीं उनका जीवन नहीं है। महिलाओं के लिए भी सामाजिक जीवन है। सामाजिक तथा राजनैतिक सुधार आंदोलनों में भी महिलाओं को समाविष्ट होना चाहिए। यह पढ़ने के बाद से तो महिलाओं की समस्याओं के बारे में अपने ढंग से सोचने का मौसी जी को शौक ही लग गया।

मौसी जी उन दिनों महात्मा गांधी के कार्यक्रमों में भाग लेती थी। अन्य महिलाओं के साथ पिकेटिंग के लिए बाजार जाती थी, ये प्रदर्शन विदेशी माल न बेचने के लिए दुकानदारों को राजी करने के लिए होते थे। किंतु ऐसे प्रदर्शनों में मौसी जी ने अनुभव किया कि नारी की ओर देखने की पुरुष की नजर साफ नहीं है। राजनितिक सुधारों के प्रति सजग रहनेवाला पुरुष समाज, नारी सुधारों के प्रति एकदम उदासीन है। यहीं नहीं, उसको तो यह भी खयाल में नहीं रहता कि नारी भी समाज का अंग होती है। उन्हें इस बात का विशेष दुख था कि नारी स्वयम् अपने सामर्थ्य को अनुभव नहीं करती। कदम कदम पर वह अनुभव कर रही थी कि नारी असहाय है, अबला है तथा हर बात में पुरुषों पर निर्भर है। मौसी जी को इस बात का अधिक आश्चर्य लगता था कि नारी स्वयम् भी अपने आपको ऐसा ही मान कर चल रही है। और क्यों न हो, वे स्वयम् किसी पुरुष की सहायता या आधार के बिना घर-गृहस्थी जो चला रही थी! नारी की दुर्बलता का लाभ

ही पुरुष ले रहा था। मौसी जी का बचपन नागपुर में बीता था। वहा के संतरा मंडी का दृश्य सदैव उनकी आँखों के सामने आता। उन दिनों संतरा बाजार अधिकतर मुसलमान व्यापारियों के हाथो में था। इन्हीं थोक व्यापारियों से संतरे खरीद कर परचून में उन्हें बेचने वाली अनाडी महिलाएं अपनी दलाली काट कर बाकी सारा पैसा इन व्यापारियों को दे देती थी। कभी ऐसा भी होता कि इन महिलाओं को पर्याप्त आमदनीं नहीं होती और इन्हीं व्यापारियों से सूद पर रक्कम उन्हें लेनी पड़ती। ऐसी ही शिकार की राह में ये व्यापारी सदा रहते थे।

एक बार सूद पर रक्कम ली नहीं कि लेनेवाली उसमें गहरी धँसती ही जाती और ऋण कभी पूरा अदा होता ही नहीं था। ऐसी महिलाओं पर इन व्यापारियों की भूखे सियार की भाँती ललचाई नजरे होती थी। फिर अपना कर्जा उगाहने के बदले में यह व्यापारी उनकी जवानी से सौदा करते। ऐसे समय बरबस असहाय महिलाएं अनिच्छा से या कभी जबरदस्ती से अपने आपको लुटा बैठती थी। असहाय नारी पुरुष की वासना का शिकार बन जाती। नागपुर में उन हिंदु महासभा के नेता डा. मुंजे, डा. हेडगेवार, हिंदु महासभा के कार्यवाह जगन्नाथ प्रसाद वर्मा आदि ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और कुछ नारीयों की मुक्ती भी करवाई। किंतु हमारा समाज ऐसी नारीयों को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं था। ऐसी स्थिति में यह बेचारी महिलाएं जाएं तो कहां जाएं? कौन उन्हे सहारा देगा ? यह एक बडा प्रश्न था। इस प्रकार मुक्त की गई एक लडकी ने डा. मुंजे जी को उस समय पुछा, "आप में से कोई हमारा स्वीकार करने वाला हो तभी तो आप इस झमेले में पडें अन्यथा हमें अपनी हालत पर छोड दें।" डा. मुंजे ने बडे धीरज के साथ ऐसी एक नारी को आश्रय दिया भी था। किंतु पुरे नागपुर में इस को लेकर कितनी हाय तोबा मची थी।

मौसी जी सोचती, पुराण काल से लेकर आज तक यही तो होता आ रहा है। रावण की बंदिशाला में सीता की रक्षा करने के लिए वहां राम नहीं था। उसने तो अपने आत्मिक बल पर ही अपने शील की रक्षा की थी। द्युत में पराजित होने के बाद भरी सभा में द्रौपदी की चीरहरण होने को था तब उसे स्वयं ही अपनी रक्षा करनी पडी थी। न उसके पराक्रमी पति उसकी रक्षा करने आगे आए, न ही भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे रथी महारथी उसकी रक्षा कर पाए। उसकी अंतरात्मा में बसने वाला परमात्मा था। उसका दुर्दम्य आत्मविश्वास और अटूट आत्मबल। वही उसकी सहायता करने आया । शिवाजी की माता जिजाबाई को भी किसकी सहायता प्राप्त थी ? शहाजी राजा सुदूर बंगलौर में थे और एक वीरान गावं की जागीर ही हाथ में थी। कौनसा पुरुष था जो जिजाबाई की रक्षा के लिए खडा हुआ था ? वे स्वयं ही अपने बल बुते पर डटकर खडी रहीं और उनका यह प्रखर आत्मविश्वास देख कर सभी समर्थ पुरुषों

ने उसका साथ दिया। स्वयं मौसी जी की कहानी भी कहा निराली थी ? कौन था उनकी सहायता के लिए ? वे स्वयं ही वज्र संकल्प लिए खडी थी।

अपने चारो ओर के नारी जगत को देख कर मौसी जी अनुभव करती कि सारा नारी समाज रीढ टूटे मनुष्य की भांति दुर्बल, आत्मविश्वास खोया, और परावलंबी बना पडा है। आवश्यकता है इस समाज में नवचेतना फूंकने की। इस समाज को जगाना होगा। जागृत करना होगा। मन में विचारों का अंबर -सा लग जाता। मन चैन खो जाता। किंतु मार्ग दिखाई नहीं देता। रुढी के बंधनों एवं अंधश्रद्धा के जाल में फँसी, चुल्हा-चौकी में ही बँधी नारी की मुक्ती का क्या कोई उपाय नही ? क्या यह नारी कभी जागेगी नहीं ? यह परावलंबन उतार फेकने की शक्ती नारी समाज में कैसे आएगी ? बीसीयों प्रश्न अनुत्तरित से उनकी आँखों के सामने उलटे सीधे नाचते रहते। मन समस्या से मुक्ती पाने के मार्ग की खोज करता रहता।

मन की इसी कसमसाहट से कोई राह पाने के लिए मौसी जी वर्धा में महात्मा गांधी की सायंप्रार्थना में जाने लगीं। प्रार्थना सभा के बाद, कोई एक विषय लेकर उपस्थित स्त्रीपुरुषों के समक्ष महात्मा गांधी अपने विचार रखते। फिर श्रोता उनसे सवाल जवाब किया करते। एक दिन मौसी जी के विचारों को दिशा देने वाले, अंधेरे में प्रकाश की किरण दिखाने वाले प्रश्नोत्तर वहाँ हुए। एक ने बापू से पूछा , -

''बापू जी,हम महिलाओं को अपने जीवन में किसके आदर्श पर चलना चाहिए ?''

बापू ने कहा ,'' विश्व की सभी नारियों को सती सीता के आदर्श पर चलना चाहिए।''

'' आप हमें तो सीता के आदर्श पर चलने को कहते है , किंतु क्या आप हमारे बंधुवर्ग को भी श्रीराम के आदर्श पर चलने के लिए कहेंगे ? ''

महात्मा जी ने इस पर 'ना ' में सिर हिलाया। इस पर कुछ तुनक कर उस युवती ने पुछा - '' क्या हमारे भाई लोंगों को किसी आदर्श पर चलने की आवश्यकता ही नहीं हैं ? ''

इस पर बापू ने कहा - '' मेरी आस्था है कि सीता का जन्म होते ही राम का निर्माण भी आवश्यंभावी हैं। उसके लिए अलग से प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता ही नही होगी।''

मौसी जी ध्यान से सुन रही थी। इन सवाल जवाबों से उनका पूर्ण समाधान तो नहीं हुआ था, किंतु विचारों को गति अवश्य मिली। फिर एक बार नारीशक्ति का गौरवपूर्ण उल्लेख एक महापुरुष के मुख से जो उन्हो ने सुना था, अब मन उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रहा था। वे कोई मार्ग खोज रही थी - सतत, निरंतर, लगातार। इस खोज में वे लोगों से चर्चा करती और ग्रंथ

पठन भी करतीं। उनकी मेधावी बुद्धि ज्ञान का मधु संचय किये जा रही थी। ऐसे में एक दिन उनके हाथ स्वामी विवेकानंद की एक पुस्तक लगी। दिन भर काम के मारे थका मांदा शरीर रात में विश्राम के लिए लालायित रहता तो था, किंतु मन में जागी ज्ञान लालसा उन्हें चैन से सोने नही देती थी। रात के प्रशांत वातावरण में केवल उनके अपने ही समय में वे ग्रंथ पठन करती थी। विवेकानंद की वह कहानी पढते पढते मौसी जी को एक और साक्षात्कार हुआ। एक बार इंग्लैंड में स्वामी विवेकानंद ने युवकों की एक सभा में कहा था, '' निष्ठापूर्वक अपना जीवन समर्पित करने वाले दस युवक भी मुझे मिल जायें तो कृण्वन्तो विश्वमार्यम् वाली उक्ति सच कर दिखाना कोई कठिन काम नहीं हैं। '' तब भगिनी निवेदिता (मागरिट नोबल) पास हीं बैठी थी। उन्होने पूछा - ' उन दस युवकों में मैं भी एक रहूँगी न ? ''

स्वामी जी बोले , '' गरुड पक्षी कितना ही बलवान क्यों नहो, उसे भी उडने के लिए दो सशक्त पंखो की आवश्यकता तो होती ही है। ना तो एक पंख के सहारे वह उड सकता है और ना ही उसका कोई एक पंख कमजोर रह सकता है। अतः इस भारत रुपी गरुड का उडान करना हो तो स्त्री तथा पुरुष दोनों पंखों का बलवान होना आवश्यक हैं।''

स्वामी विवेकानंद के उपरोक्त विचारों से मौसी जी को बडी प्रेरणा मिली। वे किसी खास मुद्देपर सोच रही थी, और स्वामी जी के इन विचारों ने उनके विचारों को आकार मिलने लगा। आगे चलकर राष्ट्र सेविका समिति की सेविकाओं को मौसी जी ये दोनों घटनाएँ कई बार सुनाया करती थी। वैचारिक मंथन में इन दो घटनाओं में उन्हें आशा की धुँदली किरण नजर आई थी।

जबसे मौसी जी ने महात्मा गांधी के विचारों को सुना उन्होंने रामायण का अभ्यास करने की ठान ली। हर बात की थाह में पहुँच कर उसकी पुरी छान बीन कर के ही वे उसे आत्मसात करती थी। जिस काम का बीडा उठाती उसे अधुरा छोडना उनकी आदत नहीं थी। मौसी जी ने रामायण पठन प्रारंभ किया। सीता उनके दिलो दिमाग पर छा गई थी। वे खोज रहीं थी उस सीता को जिसने राम निर्माण किया था , और वह सीता उनके मन में धीरे धीरे उभर रही थी। बीसवीं सदी की अपहृत महिलाओं का मनोबल बढाने वाली सीता। शीलवती जानकी , वह कर्तव्य परायण सीता जिसने अपने बूते पर स्वतंत्रता पाने के लिए भंयकर मानसिक त्रासदी झेली थी। वह परित्यक्ता वैदेही जिसने बडी हिम्मत से अपने बच्चों का संगोपन किया , मन में साकार होने लगी। माँ के हर कर्तव्य को निभाने वाली सीता का साक्षात्कार उन्हे रामायण में हो रहा था। और मौसी जी को एक बात का विश्वास हो रहा था कि राम निर्माण करने का सामर्थ्य नारी में अवश्य है।

इस विचार मंथन में मौसी जी ने अपने दैनंदिन कामकाज को कभी अनदेखा नहीं किया। बच्चों का उन्हें सदैव खयाल रहता था। सुचारु ढंग और साफ सुथरापन दोंनो बातों पर उन्होने कभी कोईव समझौता नहीं किया। बच्चों के दूध के प्याले वे चौपाई पर बडे सलीके से रखा करती थी। टेबल पर भोजन करने के आज के जमाने में यह कौनसी बडी बात है ? लेकिन उस जमाने में बच्चों के मित्रों को इस बात पर बडा अचरज होता था। बेढंगापन वे कतई सहन नहीं करती थी। उनका आग्रह रहता कि बच्चों के बस्ते , पुस्तकें आदि अपनी निर्धारित स्थान पर रखें जाएँ। मौसी जी बच्चों की गलतियों पर चिल्लाती नहीं थी। किंतु उनकी बातों में जबरदस्त धार होती थी।

' नारी और उसकी समस्याएँ यह विचार मौसी जी को चैन से नहीं बैठने देता था, और इन समस्याओं का उन्हें कोई हल भी नहीं मिल रहा था। १९३६ वर्ष प्रारंभ हुआ और मौसी जीको ऐसी दो सहकर्मी मिली जो उनके विचारों से सहमत थी। श्रीमती शांताबाई केलकर द्वारा चलाये कन्या विद्यालय में बाहर गाँव से वे नौकरी करने आने वाली थीं। एक थी मुख्याध्यापिका के नाते और दुसरी शिक्षिका के। एक दिन वत्सलाताई मौसी जी से बोली , '' वैनी , जो दो महिलाएँ आ रही है उनमें से वेणूताई कळमकर तो मेरी कालिज की सहपाठी है। किंतु उसके और श्रीमती कालिंदीताई पाटणकर जो मुख्याध्यापिका बननेवाली है, दोनों के ही निवास का कोई प्रबंध नहीं हो सका है। '' इन शिक्षिकाओं की बडी आवश्यकता थी। अतः उनके रहने का सुरक्षित प्रबंध होना भी उतना ही आवश्यक था। तुरंत मौसी जी ने वत्सलाबाई से कहा , 'कोई बात नहीं , उन्हें बुलवा लिजिए 'मौसी जीने उन शिक्षिकाओं के निवास की समस्या चुटकियों में सुलझा दी। मौसी जी बडी खुश थी ,क्यों की दो सुशिक्षित महिलाओं का सहवास जो उन्हें मिलने वाला था। ये दोनों शिक्षिकाएं आयु में मौसी जी के बराबर की ही थी। अतः महिलाओं से संबंधित समस्याओं पर खुल कर विचार विनिमय होता। कालिंदीताई तथा वेणूताई विद्यालय के अनुभव सुनाया करतीं। एक दिन उन्होने कहा कि '' वाहियात बच्चों की गुंडागर्दी बढती ही जा रही है। इतनी कि पुलिस को बुलवा कर लडकियों का रक्षण करना पडा। विद्यालय में लडकियों के शारीरिक व्यायाम के लिए एक घंटा हुआ करता था। किंतु खुले मैदान में व्यायाम करना असंभव था। अतः मैदान के चारों ओर से पतरे लगवा कर कामचलाऊ व्यवस्था की गई थी। यह सुन मौसी जीने कहा , '' यह तो एक अस्थायी व्यवस्था हुई , समाज द्रोहियों की समस्या का समाधान इससे नहीं होगा। इससे समाज विघातक तत्त्वों से पिंड नहीं छुट सकता। अतः लडकियों में आत्मरक्षा की क्षमता निर्माण करनी होगी , उनका आत्मविश्वास बढाना होगा। कोई नकोई स्थायी उपाय तो खोजना ही होगा। ''

''किसी अन्य पर्यायी व्यवस्था के ढूँढे जाने तक हमें यही व्यवस्था रखनी पडेगी।'' शांताबाई ने कहा और बातचीत वहीं रुक गई।

उन्हीं दिनों मौसी जी ने एक अजूबा देखा। वह था एक महिला द्वारा संचलित सर्कस। उसका नाम था ताराबाई। यह अकेली महिला सर्कस का अतिविशाल कारोबार बडीं क्षमता से संभालती थी। मौसी जी विशेष रुप से यह सर्कस देखने गई। वहाँ की छोटी छोटी लडकियों द्वारा की गई शारीरिक कवायत देख वे दंग रह गई। वहाँ का अनुशासन निःसंदेह सराहनीय था। मौसी जी इन सब बातों से बडी प्रभावित हुई। और अपने समाज की लडकियों और महिलाओं को कुछ इसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए यह धुंद सा विचार उनके मन को छू गया। किंतु इस विचार पर किस प्रकार अंमल किसा जाए यह स्पष्ट नहीं हो पाया। रात भर वे इन्हीं विचारों में डूबी रहीं। महिलाओं की दुर्बलता और असहायता के कारण उन पर होने वाले अन्याय की वारदातें उन्हें याद आ रहीं थी। महिलाओं की इस दुर्बलता और असहायता को समाप्त करना हो, तो उनमें सर्कस वाली लडकियों जैसा आत्मविश्वास पैदा करना होगा, तभी बात बनेगी। यह बोध उन्हें हो रहा था तभी मौसी जी ने समाचार पत्र में एक भयानक घटना पढी - 'बंगाल के एक गांव में कुसुमबाला अपने पति के साथ सैर करने शाम को निकली थी। कुछ गुंडों ने उन्हें घेर लिया और कुसुमबाला को उठा ले गए। प्रत्यक्ष पति साथ होते हुए भी वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहा।' मौसी जी को पुनः एक बार द्रौपदी याद आई। कुसुमवाला का पति वकील था। वह उन गुडों से बार बार कह रहा था, '' मैं वकील हूँ, मैं बाकायदा तुम्हें अदालत में खडा करुंगा।'' इस पर उन गुण्डें ने अट्टाहास करते हुए कहा, '' कायदा कानून तुम पढे लिखे लोगों के लिए हैं। हमारा कानून तो हमारी कलाईयों की ताकत ही हैं।'' इस बेआबरु को सह न सकने के कारण कुसुमबाला ने आत्मदहन कर लिया। इस घटना पर समुचे देश में समाचार पत्रों में चर्चा छिडी प्रकरण काफी गरमाया। नागपुर से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'सावधान' में 'बंगाल का जला कुसुम' शीर्षक से एक ज्वलंत लेखमाला प्रकाशित की। मौसी जी इस घटना से बहुत बेचैन थी। अपनी उम्र की सहेलियों के साथ भी वे इस विषय पर चर्चा करतीं। घर में बहस होती। उमाबाई उन से कहतीं '' बहन, इस बारें में हम कर भी क्या सकते हैं ? आखिर हम नारीयां ही तो हैं न ! अतः ये बातें पढकर वहीं भुलानी चाहीये।'' किंतु मौसी जी ऐसी वारदातों को पढकर भुलाना नहीं चाहती थी। नारी की असहायता उन्हें शूल बन कर चुभने लगी थी। कुछ न कुछ उपाय खोजने के लिए वे छटपटा रहीं थी।

वर्धा में संघ की शाखाएं जोरदार ढंग से शुरु हो गई थी। मौसी जी के समझदार बेटे नियमित

रूप से संघ शाखा में जाते थे। मकर संक्रांति, रक्षा बंधन, विजयादशमी जैसे उत्सव संघ में होते थे। मौसी जी के बेटे उन प्रात्यक्षिकों का अभ्यास घर के आँगन में छुट्टि के दिन अथवा फुरसत के समय किया करते थे। इन में लेजिम, शूल, खड्ग, दंड, आदि के पैंतरे होते थे।

मौसी जी का द्वितीय लडका पद्माकर इन सभी व्यायामों में विशेष प्रवीण था। उसके संघ वाले मित्र भी अभ्यास तथा शिक्षण के लिए उसके पास आते थे। मौसी जी इन सभी व्यायाम - प्रात्यक्षिकों को बारीकी से देखती थीं। उनके मन पर तो दिन रात बस महिलाओं की चिंता ही सवार थी। एक दिन मौसी जी बच्चों के ये खेल देखते समय वत्सलाताई से बोली -

'' मुझे लगता है , नारी को आत्मरक्षा के लिए इन सभी व्यायाम प्रकारों की आवश्कता है। तुम क्या सोचती हो ? ''

'' लेकिन सीखेंगी कौन ? और उन्हें सिखाएगा कौन ?''

''क्यों ? भला , ये लडके ही सिखाएंगे न हमें और हम सीखलेंगी।''

बात आई गई हो गई लेकिन समाप्त नहीं हुई। बल्कि मौसी जी के विचारों को और गतिमान कर गयी।

आखिर एक दिन मौसी जी ने बच्चों से कहा , 'क्यों भई , हमें सिखाओगे लाठी काठी चलाना?''

अवाक् हो कर बच्चे बस देखते ही रहे। मनोहर,पद्माकर की मां यह कैसी अजीब बात पूछ रहीं हैं। उनकी समझ में नहीं आया। फिर पद्माकर ने उनसे कहा- '' वैनी , यह आप क्या पूछ रही है ? यह शिक्षा संघ स्थान पर आने वाले स्वयंसेवकों के लिए ही है और महिलाओं के लिये तो हरगिज नहीं।''

'' भई ऐसा क्यों ? क्या हमें लाठी काठी चलाना आएगा नहीं ''उन्होंने घूरते ही पूछा।

'' नहीं सो बात नहीं। किंतु संघ की रीत ऐसी नहीं हैं। '' बच्चों के इस उत्तर से भी बात वहीं रह गई।

मौसी जी को रह रह कर लगता रहा कि हो न हो , संघ के किसी वरिष्ठ व्यक्ती के साथ इस पर विचार विनिमय करना होगा और वह अवसर उन्हें शीघ्र ही मिल गया। १९३६ के अगस्त मास में पश्चिम महाराष्ट्र का प्रवास समाप्त कर डा. हेडगेवार स्वयम् ही नागपुर लौटते समय वर्धा में रुके थे। संघ शाखा में उनका बौद्धिक वर्ग रखा गया था। अभिभावकों को भी आमंत्रित किया गया था। जैसे ही मौसी जी को इसका पता चला , उन्होने मनोहर से पूछा -

''अरे बेटे , अभिभावकों को भी आमंत्रित किया है न? यह बात तुमने मुझे नहीं बतलाई? कितने बजे है बौद्धिक वर्ग ?''

मनोहर माँ की ओर देखता ही रहा। आखिर उसने कहा -

''वैनी , आप नही आ सकेगी।''

''क्यों नहीं ?''

''क्यों कि महिलाओं को हमारे संघ में आने की मना ही है।'' सुनकर मौसी जी को धक्का सा लगा। किंतु उन्होने दृढता से कहा ,

''सुनो मनोहर , घरमें तुम्हारे पिता तो है नहीं , मैं ही तुम्हारी अभिभावक हूँ। इसलिए तुम जा कर अपने अधिकारियों से पूछ कर आना।''

कह कर वे रुकी नहीं। स्वयं अप्पाजी से मिलने गई और उनसे बोली-

''हम महिलाएं है इसलिए हमें आप दूर रखेंगे तो आपकी शाखाएं बढेगी कैसे ? हम माताओं को आपके कार्य से अच्छा परिचय हुआ तभी हम अपने बच्चों को संघ में भेजेंगी। अतः मुझे लगता है कि महिला अभिभावकों को भी आप बौद्धिक वर्ग में आमंत्रित करें।'' मौसी जी की बात अप्पाजी ने मान ली।

बच्चों की अभिभावक के नाते मौसी जी कार्यक्रम में उपस्थित रहीं। इतना ही नही , जो अभिभावक डाक्टर हेडगेवार से अलग से मिलना चाहें उनके लिए दुसरे दिन प्रातः का समय निर्धारित किया गया तो मौसी जी उस समय भी एडवोकेट मनोहर पंत देशपांडे के घर पर डा. हेडगेवार से मिली।उनसे मौसी जी का वार्तालाप कुछ इस तरह से हुआ। मौसी जी ने डाक्टर जी से कहा, ''मेरे बच्चे संघ में जाते हैं। मैं उनके विचार सुनती रहीं हुं और खेल भी देखती रहीं हुँ। मेरी धारणा बनी है कि संघ में मिलने वाली सारी शिक्षा राष्ट्रप्रेम के लिए पोषक एवं आत्मरक्षा के लिए उपयोगी है।''

''आप ठीक कह रहीं हैं।''

''तो क्या आप नहीं मानते कि हम महिलाओं को भी यह शिक्षण मिले ? नही सोचते कि हमें भी उसकी आवश्कता हैं।''

''बात तो आपकी सोलह आने सच हैं।''

''तो आप महिलाओं को संघ में प्रवेश क्यों नहीं देते ?''

''फिलहाल तो मैंने केवल युवकों का ही विचार किया हैं। महिलाओं के प्रवेश के बारे

में अभी तो मेरे पास कोई योजना नहीं है, और कम से कम आज तो यह विचार मेरी दृष्टी से उचित नहीं है।''

''यदि अपने बेटों से मैं आपका सिखाया शारीरिक शिक्षण सीख लूं तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं ?''

''लेकिन इससे क्या होगा ?''

'' वो मुझे सिखायेंगे और मैं अन्य औरतों को।''

डाक्टरजी से उन्होने महिलाओं को संघ में प्रवेश देने के बारे में चर्चा की। डाक्टर जी ने इस विषय में अपना दृष्टिकोण मौसी जी को विस्तार से समझाया, जो मौसी जी को जँच गया।

कुछ सोच कर डाक्टरजी ने कहा, '' मैंने आपको पहले ही बता दिया है कि इस विषय पर विचार ही नहीं किया है। अतः आप को हा कह देना मेरे लिए मुश्किल है।''

''तो आपके विचार में , महिलाओं कों क्या करना चाहिए ?''

''मै मानता हूँ कि महिलाओं के बारे में सोचना आवश्यक है। किंतु हमारा सोचा समझा पक्का विचार है कि संघ का कार्य पुरुषों तक ही सीमित रखा जाए।'' डाक्टर जी ने उत्तर दिया।

''अर्थात, आप शायद चाहते है कि हम महिलाओं को ही पहल कर स्वयं कुछ करने को उद्यत होना चाहिए। मेरा ऐसा सोचना क्या ठीक है ?''डाक्टर जी ने हां कहा।

मौसी जी का तर्क सुन कर नारी संगठन की आवश्यकता डाक्टर जी ने मान्य की और यह दायित्व उठाने के लिए कोई आगे आती हो , तो सब प्रकार से सहायता देने का आश्वासन भी उन्होने दिया।

मौसी जी और वेणूताई घर लौट आई। रास्तें में इस विषय में उन्हों ने वेणूताई से कुछ भी नहीं कहा। वह अपने ही विचारों में खोई थी। मौसी जी के प्रश्न ने डाक्टरजी को विचार करने के लिए बाध्य किया था। मुश्किल से तीस वर्ष की महिला आकर ढिढाई से अपनी बात सामने रखती है। इसकी वे मन ही मन सराहना करते रहे। अपने लिए उस विषय को उन्हों ने वहीं समाप्त मान लिया किंतु मौसी जी के विचारों को काफी गति उन्हों ने प्रदान की।

५

महिला संगठन की नींव

डाक्टर जी से मिलने मौसी जी गई तब उनके मन में किसी स्वतंत्र महिला संगठन की कोई योजना नहीं थी। किंतु डाक्टर जी की बातचीत का रुख देख उनके मन में अलग संगठन का विचार आने लगा। संघ का वैचारिक अधिष्ठान और उसके अनुरुप जो कार्य संघ में चल रहा था, वह केवल पुरुषों तक मर्यादित रहे, मौसी जी को यह मान्य नहीं था। स्वामी विवेकानंद का गरुड पक्षी उनके सामने अपने पंख फडफडा रहा था। केवल एक पंख से गरुड आकाश में कैसे उडान भर सकता है ? काफी सोच विचार के बाद वे इस नतीजे पर पहुँची कि स्वतंत्र नारी संगठन का होना अत्यावश्यक है। उनकी यह मान्यता बनी कि ऐसे संगठन के लिए महिलाओं को ही पहल करनी होगी। नारी समाज का विचार पुरुष कर ही नहीं सकता। महिलाओं को स्वयं अपनी समस्याएं सुलझानी पडेगी। क्यों न मैं स्वयं यह बीडा उठाऊँ ? इस विचार ने उनमें एक नई चेतना पैदा कर दी। मौसी जी ने निश्चय किया कि अब इस काम में पीछे नहीं हटना। ' एक स्वतंत्र महिला संगठन' का लक्ष्य धीरे धीरे आकार लेने लगा। अब तो यही धुन उन पर सवार थी।

संयोगवश डा. हेडगेवार पुनः वर्धा आए। मौसी जी को यह समाचार उनके बच्चों ने दिया। मौसी जी ने तुरंत उनसे मिलने की ठानी। उन्हें लगा, पता नहीं यूँ बार बार मिलना डाक्टरजी पसंद करेंगे या नहीं ? जो भी हो, जो काम करने की सोची है उसके लिए डाक्टरजी सबसे योग्य मार्गदर्शक है। यदि वे नाराज हो कर कुछ जली कटी कह भी दें तो भी चुपचाप सुन लेना ही होगा। अपने कठिन कार्य की उसे नांदी समझना होगा।

अपने लडके को अप्पाजी के पास भेजकर डाक्टरजी से मिलने की इच्छा मौसी जी ने प्रदर्शित की। एक दिन , निर्धारित समय पर , वेणूताई को लेकर मौसी जी डाक्टरजी से मिलने पहुँची। मन में थोडा भय था। "कैसा स्वागत होगा ? खुश हो कर या माथे पर बल ला कर ?" किंतु उनकी आशंका गलत साबित हुई। डाक्टरजी ने बडी प्रसन्नता से उनका स्वागत

किया। मौसी जी को लगा मानों वे अपने बडे भाई से मिल रहीं हों। भाई के साथ खुल कर बातें करने के अंदाज में मौसी जी ने डाक्टरजी को अपना विचार सुनाया। '' इस बात को तो हम अच्छी प्रकार से समझ चुके हैं कि महिलाओं को संघ में प्रवेश नहीं मिल सकता। किंतु क्या आप इस बात से सहमत नहीं कि पूरे समाज और देश के हित में महिला समाज का संगठित होना भी आवश्यक है।''

डाक्टरजी ने मौसी जी की ओर केवल देखा। वे फिर बोलीं, ''पुरुषों को अपने कार्य के लिए उद्यत करने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन आवश्यक होता है। घर की महिला ही उसके सर्वाधिक प्रेरक साबित होगी। आप जिस राष्ट्रोन्नति की बात कर रहें है उसका महत्त्व घर, समाज, तथा देश की महिलाओं को समझाया नहीं गया तो पुरुष निरुत्साही हो जायेंगे। अतः मेरे विचार से यह आवश्यक है कि घर की महिलाएँ भी आप ही के विचारों की हों।''

'' आपकी बात सही है।'' डाक्टरजी ने स्वीकारा। तब मौसी जी ने आगे कहा , '' हिंदू पुरुषों की ही भांति महिला समाज का संगठित होना भी आवश्यक है। हिंदू महिला के लिए यह कार्य अत्यंत आत्मीयता का होगा।''

मौसी जी की बातों की हार्दिकता और लगन डाक्टरजी देख रहें थे। फिर भी उन्हों ने कहा ,'' आपके विचार है तो बिल्कुल सही। मैं सहमत भी हूँ। फिर भी इस संदर्भ में अब तक हम कोई विचार नहीं कर पाये हैं। अतः इस बारे में मैं आपका मार्गदर्शन नहीं कर सकूंगा।''

''चलो, यह भी ठीक ही है। अब हम अपनी जिम्मेदारी पर कुछ महिलाओं को एकत्रित करेंगी। किंतु प्रारंभ में तो आपको शारीरिक शिक्षण के लिए अपने कुछ स्वयंसेवकों को हमारी सहायता के लिए भेजना चाहिए।''

इस पर डाक्टरजी ने कहा ,'' बहन , मुझे इस पर कुछ सोचना पडेगा। आप ऐसा कीजिए, इसके लिए समय तय करके नागपुर आइए। तब तक हम विस्तार से बात करेंगे।''

उसी समय, आगामी बैठक का दिन और समय तय करके ही मौसी जी और वेणूताई घर लौंटी। नियत दिन मौसी जी नागपुर गईं और डाक्टरजी से मिली। उस मुलाकात में समिति के बारे में चर्चा भी हुई। मौसी जी ने अपने पिता श्री. अण्णा जी को इस मुलाकात के बारे में बता रखा था। वे अपने पिता की सलाह बार बार अवश्य लिया करती थी। उन्होने पिता जी से कहा, '' मेरा मन कर रहा है कि संघ की भांति महिलाओं का एक संगठन बनाया जाए।''अण्णाजी ने कहा, ''तुम्हारा विचार है तो अच्छा। किंतु इसके लिए बहुत परिश्रम करने पडेंगे। एक बात

गांठ बांध लो कि एक बार प्रारंभ कार्य को बीच में ही अधुरा छोडना नहीं चाहिए। अतः ठीक से पूरा विचार कर लो। तुम्हारे बच्चे अभी छोटे हैं। घर-गिरहस्थी का झमेला संभाल कर ही तुम्हें यह कार्य करना होगा।''

अण्णा जी ने जमीन की बात कही थी।

किंतु मौसी जी ने कहा-''अण्णा, दिक्कतें तो सदा आएगी ही। इसलिए क्या कोई इस काम का दायित्व स्वीकार ही न करें ? महिलाओं की आज की दशा बहुत ही शोचनीय है। कुछ न कुछ रास्ता तो निकालना ही होगा। इस काम को करने के लिए किसी न किसी को तो आगे आना ही पडेगा। क्यों न मैं स्वयं ही आगे बढकर यह काम प्रारंभ करु ?''मौसी बोली जा रही थी। और उनकी माताजी सराहना भरी नजरों से बेटी को निहार रहीं थी। आखिर मौसी जी का निर्णय पक्का हुआ और कुछ आश्वस्त मन से वे वर्धा लोट आई। इसके बाद मौसी जी डाक्टर जी से पुनः मिली। उस समय भी वेणूताई उनके साथ थी। डाक्टर जी से तीन-चार मुलाकाते होने के कारण अब उनके मन में लिहाज और संकोच जाता रहा और डाक्टर हेडगेवार ने भी मौसी जी की क्षमता को अच्छी तरह से समझ लिया था। वे डाक्टर जी से वर्धा में पहली बार मिली थी तब उनके सामने महिलाओं का कार्यक्षेत्र वर्धा तक ही सीमित था। किंतु आगे चलकर उनके मन में अखिल भारतीय महिला संगठन की कल्पना साकार होने लगी। उसी को मूर्त रूप देने वे डाक्टरजी से मिलने गई और कार्य का पूरा खांका निश्चित कर लौट आई। डाक्टरजी ने अपनी बात साफगोई से मौसी जी के सामने रखी। उन्होंने कहा, '' लक्ष्मीबाई यह तुम्हारा महिला संगठन पूर्णतया स्वतंत्र रहेगा। तुम्हारे संगठन के साथ संघ का संबंध केवल मित्रता का रहेगा। प्रारंभ के दिनों में जैसा कि आप चाहती हैं, शारीरिक शिक्षण देने के लिए हम तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे किंतु इस मामले में शीघ्रातिशीघ्र आप स्वयंसिद्ध बनें।'' मौसी जी ने पूछा, '' इस संगठन के नाम के बारे में क्या आप कोई सुझाव देंगे ?''

डाक्टर जी ने कहा, '' मेरा विचार है संघ और समिति के आद्याक्षर एक से हो।'' लगता है कि इस उत्तर से डाक्टरजी ने महिला संगठन के बारे में निश्चय ही कुछ विचार किया था। उन्हों ने आगे कहा, '' इस बात का ध्यान रख कर कि आपका यह संगठन एक महिला संगठन होगा, उसके कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए, उसमें संघ की नकल न हो। आपको कोई सेना खडी नहीं करनी किंतु जुझारु, साहसिक और सुदृढ मन तैयार करने हैं। आप को स्वयं तो सिर ऊँचा रखें खडी होना ही है, किंतु साथ ही सारे समाज को वैसा बनाना है। इस बात को कभी भुलाइयेगा नहीं। इस पर मौसी जी ने उनसे पूछा, '' कहीं आप यह तो नहीं सुझाना

चाहते कि हम संस्कारों पर ज्यादा ध्यान दें।''

यह देखकर कि मौसी जी ने अपने मन की बात बराबर समझ ली है , डाक्टरजी को संतोष हुआ और उन्होंने सम्मतिसूचक सिर हिलाया। साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि, यद्यपि संघ और समिती का उद्देश्य राष्ट्रकार्य ही है, समिती संघ की महिला शाखा नहीं होंगी। अपने लक्ष्य की ओर जानेवाली ये दो समानान्तर पटरियां है जो कभी एक दूसरे से मिल नहीं सकेंगी, यह बात ध्यान में रखें। मौसी जी डाक्टरसाहब का यह मुद्दा सबको विशेष बल देकर बताती थी। मौसी जी ने बडी चतुराई से डाक्टरजी के मनकी बात को समझा था। जाते जाते डाक्टरजी ने मौसी जी को नारी स्वभाव के बारें में अपनी राय सुना दी। उन्होने कहा, ''लक्ष्मीबाई, हम सौ पुरूष इकठ्ठा हो सकते हैं, किन्तु दस महिलाओं को इकठ्ठा करना बडा कठिन है।'' इस पर मौसी जी ने घुटते ही कहा, '' देखते हैं, प्रयत्न करने में तो कोई आपत्ती नहीं है ना ? '' आगे चलकर मौसी जी हम सेविकाओं को डाक्टर हेडगेवार जी का यह वाक्य अनेक बार सुनाती रहीं। शायद नारी स्वभाव में यह जो दोष था, मौसी जी को अनेक बार बेचैन करता रहा होगा।

डाक्टर हेडगेवार जी से हुई इस मुलाकात के बाद सर्वसुश्री वेणुताई कलंबकर, कालिंदीबाई पाटणकर, यमुताई काणे, माई नागले, आदि अपनी सहेलियों के साथ विचार विनीमय किया, चर्चा की, और अंत में डाक्टर जी की सूचना नुसार 'राष्ट्र सेविका समिति, (जिसके अंग्रेजी आद्याक्षर R. S. S. बनते हैं) के नाम से महिला संगठन बनाने का निर्णय संमति से लिया गया। स्थापना दिवस २५ अक्तूबर १९३६ का तय किया गया। वह दिन विजयादशमी का था।

मुख्यतः जिस 'आत्मरक्षा' के उद्देश्य से समिती की स्थापना होनी थी, उसके लिए शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता थीं।अतः पुनः अप्पाजी जोशी से भेट कर डाक्टरजी की अनुमति से लड़कियों को शारीरिक शिक्षण देने के लिए संघ के स्वयंसेवक उपलब्ध करने का भी निर्णय किया गया। इसके लिए मौसी जी का बेटा पद्माकर, बाल करंदीकर, र. पां. देशपांडे को अप्पाजी ने समिती की सेविकाओं को शारीरिक शिक्षण देने की अनुमती दी। इस प्रकार संगठन का नाम तय हुआ था, शिक्षक भी उपलब्ध हो गए और स्थापना का दिन भी निश्चित हुआ। अब प्रश्न रहा मैदान का, किंतु श्री. पाठक ने उसे भी हल कर दिया।

अब सभी सहेलियां समिती की स्थापना की तैयारियों में लग गईं। इन दिनों तो मौसी जी पर बस समिती की स्थापना के अलावा अन्य कोई धुन सवार नहीं थी। जैसे ही कोई नई कल्पना मन में आती, वे तुरंत वेणुताई को बतातीं, कालिंदीबाई को गुहार देतीं, या उठ कर तुरंत रमाबाई

कावले अथवा माई नागले से मिल आतीं। उन दिनों में मौसी जी मानो अभिमंत्रित सी हो गई थीं। उमाबाई सारा देख रही थीं। एक दिन उन्होंने मौसी जी से कह दिया, 'बहन, कितनी दौडधूप किए जा रही हो। कभी कभार तो भोजन की भी तुम्हें सुध नहीं रहती।' सुनकर मौसी जी केवल हँस देतीं। किंतु समिती की स्थापना के विषय में अपने हर विचार से वे उमाबाई को अवगत कराना कभी नहीं भूलतीं। आज किस किससे भेट हुई, क्या क्या बातें हुई, आदि हर छोटी बडी बात वे उमाबाई से कहती थीं। उमाबाई भी अपनी इस बहन बनी देवरानी की भूरी भूरी प्रशंसा करतीं। वे कहतीं - " बहन, तुम्हारे पास संगठन के लिए आवश्यक सभी गुण हैं। आप समाज कार्य करो, मैं घर संभाल लूंगी। बच्चों की कोई चिंता मत करो। " इसी आवश्यक सहयोग के बल पर ही मौसी जी घर के बाहर निकल सकती थीं।

स्थापना का दिन जैसे जैसे पास आता गया, उद्घाटन किसके हाथों हो इस पर चर्चा हुई। नागपुर की समाज कार्यकर्ती सुश्री चंद्रभागाबाई पटवर्धन ने उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया। शहर में घर घर जाकर आमंत्रण देना प्रारंभ हुआ। मौसी जी और उनकी सहेलियां घर घर जाकर महिला संगठन का महत्त्व समझाने लगीं। महिलाओं का संगठन, उन्हें लाठी-काठी, लेजिम, छूरिका आदि चलाने का शिक्षण देना, नारी को आत्मरक्षा में सक्षम बनाने हेतु हिंदु महिलाओं को एकत्रित करना अपने में ही अनोखी कल्पना थी। सभी को इसकी उत्सुकता थी।

विजयादशमी के एक दिन पूर्व नागपुर से मौसी जी के घर पर संदेसा आया कि नियोजित अध्यक्षा नहीं आ सकेंगी। प्रारंभ में ही सारे उत्साह पर पानी फिर गया। फिर सारी सहेलियों ने विचार किया और मौसी जी अपनी दो सहेलियों को साथ लेकर सलाह लेने के लिए श्री. अप्पाजी जोशी के यहां गईं। संघ के उत्सव के लिए बुलढाना के इतिहास अन्वेशक डा. यादव माधव काले आने वाले थे। उन्हें ही समिती के उद्घाटन के लिए आमंत्रित करना तय हुआ। रात भर मौसी जी आराम से सो नहीं पायीं। काफी बडे नेता से चर्चा करने तथा नई चुनौतियों को स्वीकार करने के बाद ही बहुत बडा दायित्व अपने पर लेने का बोध उन्हें बेचैन किए जा रहा था। रह रह कर मन में विचार आता, "मैं हूं एक घर गृहस्थी वाली महिला। बहुत पढी लिखी भी तो नहीं हूं। यह दायित्व मैं निभा सकूंगी ना ?" किंतु दूसरे ही क्षण उनका आत्मविश्वास साथ देने के लिए तत्पर हो जाता। अपनी यह मानसिकता आगे चलकर मौसी जी ने अपनी सहेलियों के पास व्यक्त भी की थी।

६

राष्ट्र सेविका समिती की स्थापना

२५ अक्तूबर १९३६, दशहरे के दिन समिति का उद्घाटन समारोह डा. काले के हाथों संपन्न हुआ। मौसी जी मंच पर आ कर बोलने से घबरा रही थी। वे बोलीं, "मुझ से और चाहे जो करवा लो, भाषण देने से बख्श दो।" तब वेणूताई ने, बडी संख्या में उपस्थित महिलाओं को संबोधित किया। उन्होने उन महिलाओं से अपनी बेटियों को समिति में भजने का अनुरोध किया।" समिति की स्थापना से हिंदु महिलाओं की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पूर्ण होगी।" इस अभिप्राय के साथ डा.काले ने समिति को अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं दीं और कार्यसिद्धि के लिए शुभाशिर्वाद।

समिति तो स्थापित हो गई। दैनिक शाखा की जिम्मेदारी मौसी जी पर आन पडी। यहीं बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। श्री. पाठक वकील ने अपनी जगह सालाना २५ रु. किराये पर दी थी। प्रारंभ में मौसी जी ने घर घर जाकर लोगों से कहा था कि शाखा में लड़कियों को लाठी चलाना सिखायेंगी। तदनुसार लड़कियां आने लगीं। किंतु प्रति वर्ष पचीस रु. एकत्रित करने का कोई प्रबंध करना आवश्यक था। अतः आने वाली लड़कियों से दो आना शुल्क लेने का उन्होने निर्णय लिया। यह राशि अगले वर्ष की गुरुदक्षिणा तक ही जमा की जानी थी। घर घर जाकर किया गया प्रचार और पाठशाला में वेणूताई कळमकर, कालिंदीबाई पाटणकर द्वारा दी गई समिति के कार्य की जानकारी के फलस्वरुप समिति स्थान पर १५० से ३०० लड़कियां आने लगीं। इन में मौसीजी की भतीजी नलिनी और मौसीजी की सहेलियोंकी लडकीयां, सुशीला काणे, मालती नागले और सुमन कोरडे आदी भी शामिल थी।इस प्रकार शाखा भी नियमित रुप से चल पडी।

अब शाखा के विस्तार के लिए घरों मे जाकर लोगों से प्रत्यक्ष मिलने की आवश्यकता प्रतीत हुई। परंतु घरेलू दिक्कतों के कारण मौसी जी बाहर जाने के लिए अधिक समय नहीं दे पाती

थीं। क्योंकि एक घर हो आने में ही बहुत समय बीत जाता था। मौसी जी ने काफी सोच विचार के बाद एक दिन भोजन करते समय मनोहर से पूछा -

''अरे साईकिल चलाना कितने दिन में सीखा जा सकता है ?'' मनोहर अपनी मां के इरादे जान गया था। वह बोला -

''यही कोई चार दिनों में।''

''मुझे आ सकती है ?'' मौसी जी ने पूछा। मनोहर ने हां कहा। वह जानता था कि साईकिल सिखे बिना मां रुकेगी नही। उन्हें यदि विश्वास हो जाता कि कोई बात उनके कार्य के लिए आवश्यक है तो उसे आत्मसात किए बिना उन्हें चैन नहीं आता था।

फिर क्या , रोज वेणूताई कलमकर, कालिंदीताई पाटणकर और एक दो सहेलियों के साथ मौसी जी ने साईकिल चलाना सीखना प्रारंभ किया। मौसी जी शीघ्र ही बढीया साइकिल चलाने लगीं। उन्होने अनुभव किया कि समिति के कार्य में समय की बचत करने के लिए प्रत्येक लडकी को साईकिल चलाने आना आवश्यक है। और इस बात का प्रारंभ उन्होने अपने से किया।

जो बात साईकिल की थी वही बात तैरने की । तैरना भी आत्मसंरक्षण और समाजोपयोगी बनने का एक मार्ग है यह सोचकर मौसी जी ने प्रौढावस्था में भी तैरना सीखा। क्योंकि वे कहतीं कि अपने काम के लिए लीक से हटकर कुछ करना पडे तो उसमें लाज कैसी ? अतः समिति के लिए जो भी सीखना पडे उन्होने सीखा।

समिति की शाखा का समय सायं ५.३० से ६.३० हुआ करता था। समिति स्थान पर अब लाठियां चलने लगीं, लेजिम छनछनाने लगीं और ताल लय के ठेके पर कार्यक्रम होने लगे। मौसी जी तथा उनकी सहयोगी बहने सारा प्रशिक्षण लडकियों को देती थीं। गांव मे समिति का काफी बोलबाला हो गया था। लोगों में इसके प्रति उत्सुकता रहती थी तथा आपस में चर्चा होती थी। अपने लडकीयों को समिति में भेजने के विषय में अभिभावक सोचने लगे थे। मौसी जी, माई नागले, यमुताई काणे, ताई कोरडे जैसीअच्छे घरोंकी महिलाओं के कारण समिति के प्रति लोगों का विश्वास बढने लगा था। इसीलिए गांव से दूर एक सिरे पर बसे रामनगर जैसे इलाके में समिति की दूसरी शाखा प्रारंभ किए जाने की मांग होने लगी। और समिति की दूसरी शाखा वहां प्रारंभ हो गई। मौसी जी के कंधो पर अब दो शाखाओं का दायित्व था। समिति स्थान पर प्रारंभ में झंडा लगाने की प्रथा नहीं थी। किंतु सामने किसी प्रतीक की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। मौसी जी ने वेणूताई से इस बारे में बातचीत की। काफी सोच विचार के बाद उन्होने झांसी की रानी की तस्वीर रखने का निर्णय लिया । अब आवश्यकता थी एक प्रार्थना की। मौसी जी का नियम था कि हर काम अपने में परिपूर्ण होना चाहिए। उनके जैसी

अनुशासनप्रिय महिला कामकाज में बेढंगापन या बेतरतीबी जरा भी गंवारा नहीं कर सकती थी। प्रार्थना के बारे में कालिंदीताई आदि से चर्चा हुई और अंत में स्वातंत्र्यवीर सावरकर की एक अत्यंत स्फूर्तीदायक कविता चुनी गई। बोल कुछ इस तरह के थे -

''हिंदुपणीच मज मार कराल काला,

हिंदुपणीच करी उन्नत भारताला ''- अर्थात

हे कराल मृत्यू तू मेरे हिंदू रहते हुए ही आना

और मेरे हिंदू होते हुए ही भारत की उन्नति करना।

यह कविता प्रार्थना के रुप में कहीं जाने लगी। किंतु मौसी जी के समालोचक मन को यह पसंद नहीं थी। हालांकि कविता आशयपूर्ण थी, उसमें एक प्रकार की प्रतिज्ञा भी थी, किंतु महिलाओं को किसी विशिष्ट ध्येय प्राप्ति की कोई प्रेरणा उससे नहीं मिलती थी। यह कविता राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत थी लेकिन नारी समाज को सुसंस्कृत कर सके ऐसा आशय इस कविता में नहीं था। अतः ऐसे आशय वाली कविता की आवश्कता मौसी जी ने अनुभव की।

वर्धा में एक बडे प्रसिद्ध कवि थे श्री .कृष्णा रघुनंदन चव्हाण। मौसी जी उनसे मिली और प्रार्थना की कल्पना उन्हें समझाई। उन्होने समिति के लिए तीन अंतरो की एक प्रार्थना बना दी। १९४७ में संस्कृत प्रार्थना तैयार होने तक यही मराठी प्रार्थना समिति में कहीं जाती थी। इसका हिंदी आशय इस प्रकार है।

हे मातृभूमि प्रिय पावन पुण्यभूमि
हे आर्यभूमि तुझको नमन हे धर्मभूमि
सर्वस्व अर्पण हो तव चरणों में
करके कृतार्थ तुझे मिले धन्यता हमें ।।
हे जगदीश प्रभु राम
हो शील चरित्र उज्ज्वल हमारा
होवें सती सद्गुणी धैर्यवान हम
शक्ति बुद्धि बल युक्त हो सके हम ।।
देशार्थ धमार्थ है काया समर्पित
संपूर्ण हिंदुता निज मन में बसे
सीता सती पद्मिनी वीरलक्ष्मी
ऐसा प्राप्त हो जीवन हमें ।।
'' भारत माता की जय ''

वर्धा की दोनों शाखाएं नियमित रुप से चल रहीं थी। मौसी जी की लडकी वत्सला और उसकी सहेलियां प्रतिदिन शाखा जाती थी। वे दोनों शाखा में शारीरिक शिक्षण दिया करती थी। समिति के कारण युवतियों में नव चेतना और आत्मविश्वास जागा था। मौसी जी भी प्रतिदिन शाखा में जाती और शाखा की प्रगति पर बारीकी नजर रखती। अपनी कल्पनाएं सहेलियों को हमेशा बताती।

इसी दौरान मौसी जी का श्रीमती माई नागले से विशेष परिचय हुआ। माई के लडके भी संघ में जाते थे। मौसी जी के लडकों से मिलने वे अक्सर उनके घर आया करते थे। अपने बेटों के इन मित्रों से मौसी जीने पूछ-ताछ की। तब उन्हें पता चला कि उनकी मां मैट्रिक तक पढी हैं। मौसी जी को पढाई में विशेष रुचि था। वे स्वयं कुछ खास पढ लिख नहीं पाईं थीं। इसका उन्हें दुख था परंतु पढे लिखों के प्रति उनके मन में ईर्ष्या नहीं अपितु आदर की ही भावना रहती थी। सुशिक्षित महिलाओं का मोल वे अच्छी तरह जानती थी। इसीलिए माई नागले से मिलने वे बडी आतुर थी। एक दिन वे स्वयं माई जी के घर गई और उनसे मित्रता का हाथ बढाया। यह मित्रता उन्होने अंत तक बहुत दृढता से निभाई। मौसी जी को माई का बहुत अच्छा साथ मिला था। माई नागले राष्ट्र सेविका समिति की कई वर्षो तक निधि प्रमुख थी।

संघ शाखाओं का विस्तार पूरे जोर शोर से हो रहा था। नीतीमान और शीलवान पीढी के निर्माण कार्य में संघ यशस्वी हो रहा था। घर घर के युवक तथा प्रौढ संघ की ओर खिचे जा रहे थे ; प्रभावित हो रहे थे। डाक्टरजी के भाषण की हार्दिकता और लगन का समाज पर निश्चय ही असर हो रहा था। वाकई संघ को एक बडा ही चरित्रसंपन्न और निस्वार्थी नेता मिला था।

संघ कार्य की वजह से डाक्टरजी को अलग अलग घरों में ठहरना पडता था। वे जहां ठहरते थे वहां उनका आचरण बडा ही सादगी भरा रहता था। घर के हर व्यक्ति की वे बडी हार्दिकता से पूछताछ करते। स्वाभाविक ही था कि घर की महिलाओं पर भी उनका बडा प्रभाव पडता। धीरे धीरे, गाव गाव की महिलाएं पुरुषों जैसा संघ शुरु करने की सोचने लगी।

देश की तत्कालीन परिस्थिती को देख मौसी जी की तरह अनेक महिलाएं व्यथित थी। कुछ करने की इच्छा उन्हें चैन से बैठने नहीं देती थी। इधर गांधी वादी राजनीति एक अलग दिशा ले रही थी। मुसलमान परस्त कार्यक्रमों के कारण आम जनता में, विशेषतः बुद्धिजीवी महिलाओं में नाराजगी के स्वर उमट रहे थे। किंतु ऐसी महिलाओं द्वारा चलाए गए सामुहिक आंदोलनों में अनुशासन और नियमबद्धता का सर्वथा अभाव था। उनमें भाग लेने वाली महिलाएं अपने आपको सुरक्षित नहीं पाती थी। अतः देश के लिए कुछ करने के लिए उत्सुक महिलाओं को लगा कि संघ की भंति किसी महिला संगठन का होना जरुरी है।

ऐसी महिलाओं में भंडारा की श्रीमती नानी कोलते और सातारा की श्रीमती उषाताई मोकाशी ने मौसी जी की समिति की स्थापना से पूर्व, ''राष्ट्रीय स्वयंसेविका संघ व हिंदू धर्म भगिनी मंडल'' के नाम से अपना काम प्रारंभ भी कर दिया था। इसका तात्पर्य एक ही था - हिंदू समाज को सुरक्षितता चाहिए थी। और संगठन के बगैर वह मिलेगी नहीं यह बात बुद्धिजीवी जानते थे। इसीलिए ये महिलाए प्रयत्नशील थी।

एक बार डा. हेडगेवार भंडारा में नानी कोलते के घर गए थे। नानी ने अपने कार्य की कल्पना डा. जी को दी और उनसे कहा, ''अब आप हमारा मार्गदर्शन करें।'' डाक्टर जी नानी के कार्य की सारी जानकारी शांती से सुन रहे थे। कुछ देर बाद वे बोले, ''अजी, अब मेरे मार्गदर्शन की कोई आवश्कता नहीं। उधर वर्धा में एक प्रभावी नेतृत्व का उदय हो रहा है।'' डाक्टर जी ने मौसी जी के कार्य की पूरी जानकारी संक्षेप में उन्हें दी और मौसी जी से पत्राचार करने की सलाह दी। डाक्टरजी ने मौसी जी के कृतित्व को परखा था। गृहस्थी के रथ को अकेले ही खींचने वाली मौसी जी का समाज और राष्ट्र की सुख दुख में शामिल होना - डाक्टर जी के मन में उनके लिए एक अलग विश्वसनीय स्थान बना चुका था। अत: अनेक गावों निकलने वाले संघ सदृश महिला संगठनों को डाक्टरजी ने मौसी जी की जानकारी दी। १९३६ के दिसंबर में मौसी जी को भंडारा से पत्र प्राप्त हुआ। 'किसका होगा यह पत्र?' - मौसी जी सोचने लगी। पत्र खोलकर देखा, नाम था नानी कोलते। लिखा था - '' हम ने यहां राष्ट्रीय स्वयं सेविका संघ प्रारंभ किया है। डाक्टर हेडगेवार जी से ज्ञात हुआ कि आप भी वर्धा में इसी प्रकार का काम कर रहीं है। उन्हीं की सलाह पर हमारा संगठन हम आपके संगठन में विलीन करना चाहती है। विचार -विमर्श वे; बाद हम इस नतीजे पर पहुँची हैं कि एक ही काम करने वाली दो संस्थाओं का होना उचित नहीं। आपसे अनुरोध है कि आप इस संदर्भ में मार्गदर्शन करें। संभव हो तो आप स्वयं यहां पधारे, अन्यथा हम में से कोई वर्धा आ कर इस बारे में विचार करेंगे।''

मौसी जी ने यह पत्र एक दो बार नहीं पुरे चार बार पढा। डाक्टर जी द्वारा उनके प्रति दिखाए विश्वास के कारण वे गदगद हो गई। उन्होने अनुभव किया कि अब समिति का कार्य वर्धा तक सीमित नहीं रहेगा। धीरे धीरे वह विशाल स्वरुप धारण करता जायेगा। अपनी इच्छा हो नहो, उसके विस्तार को स्वीकार करना ही पडेगा। वीर सावरकर जी की प्रख्यात पंक्तियां उनके कानों में गूंजने लगी -'' की घेतले व्रत ने हे आम्ही अंधतेने'' अर्थात् इस व्रत को हमने आँखे मूँद कर नहीं स्वीकारा बल्कि वह हमारे इतिहास की देन है। अपनी सहयोगियों को मौसी जी ने यह पत्र दिखाया और सबकी राय में मौसी जी का भंडारा जाना ही योग्य होगा।

भंडारा जाना एक बडी समस्या ही थी। पहली बात , घर में छोटे बच्चे थे और पुरुष कोई नहीं था।दूसरे, घर में रहने आईं कालिंदीताई पाटणकर (मुख्याध्यापिका कन्या विद्यालय) कहने को तो अलग कमरे में रहती थी , किंतु वे अपने बच्चों के साथ मौसी जी के साथ रहती थी। खाना पीना , उठना बैठना , सोना सब मौसी जी के साथ ही था। उनके पति यवतमाल में रहते और वहीं वकालत करते थे। भंडारा जाना हो तो सब से परामर्श लेना आवश्यक था। एक दिन भोजनोपरांत सब बच्चें सो गए। महिलाओं ने चौकी की साफसफाई की। मौसी जी ने ही बात छेडी -

''एक बार भंडारा हो आना चाहिए । पत्र आकर दो दिन बीत गए है। कुछ तो निर्णय लेना पडेगा। कालिंदीताई , आप जाएगी तो कैसा रहेगा ? ''

कालिंदी जी ने उत्तर दिया -'' नहीं जी ! मुझसे कैसे जाते बनेगा ? मेरा विद्यालय आदि काम है। वैनी , आप जाइए ना ! आप सारा ठीक से संभाल भी सकेगी। ''

वेणूताई ने भी उनका समर्थन किया। किंतु मौसी जी के सामने एक और मुसीबत थी। वे भाषण देने बहुत डरती थी। उनका शरीर कांपने लगता था। पांवो में कंपकंपी हो आती थी। आगे चल कर हजारों श्रोताओं को अपने भाषण से मुग्ध करने वाली , बडी सभाओं में सभा बाँधने वाली मौसी जी प्रारंभ में ऐसी थी, कोई कैसे सच मानेगा !

आखिर उमा काकू की अनुमति से, साथ में एक युवती को लेकर मौसी जी भंडारा गई। नानी और मौसी जी की भेंट हुई। वे तो ऐसे मिली , जैसे बहुत दिनों से एक दूसरे से परिचीत थी। काफी गपशप हुई। कार्य के बारे में विचार विनिमय हुआ। दोनों मन एकाकार हो गए। दोनों को एक ही सुर मिला। अपनी संस्था को राष्ट्र सेविका समिति में विलिन करने में नानीजी ने जरा भी आनाकानी नही की। समर्पण का पहला पाठ समिति को नानी कोलते ने पढाया। मौसी जी उनका बहुत आदर करती थी। महत्त्व के विषय पर उनसे विचार विनिमय करती थी। यह सिलसिला उन्होने अंत तक जारी रखा था। आज मौसी जी के बाद नानी जी भी हमारे बीच से उठ गई है। खैर। इस तरह भंडारा में भी समिति की शाखा प्रारंभ हुई। सुश्री उषा फणसे (जो विवाह के बाद उषाताई चाटी बनी और आज मौसी जी के बाद समिति की तीसरी प्रमुख संचालीका है) अंबू साठे (नीला जोशीराव) आदि युवतियां प्रारंभ में भंडारा शाखा की सेविकाएं थी। इस प्रकार, स्थान स्थान पर जुडने वाली युवा सेविकाओं के बल पर समिति का यश निर्भर था।

भंडारा के साथ साथ वर्धा के आस पास के गावों में भी समिति की शाखाएं प्रारंभ हुई। आर्वी में श्रीमती अगस्ती वेणूताई की परिचित थी। वेणूताई ने मौसी जी से कहा कि अब पास

पडोस के गांवो में समिति के विचारों को हमें पहुँचाना चाहिए। तदनुसार वेणूताई पहले आर्वी गई। श्रीमती अगस्ती की सहायता से उन्होंने वहां महिलाओं की एक सभा की। नारी रक्षा का महत्त्व समझाया और वहां समिति की शाखा प्रारंभ की। तय हुआ कि शुरु में श्रीमती जानकी बाई अगस्ती संचालिका के नाते काम करें और श्रीमती सत्यभामाबाई मोहरीर उनकी सहायता करें।

मौसी जी की बहन मैनाताई वर्धा आई तो उन्होंने समिति का कार्य और उसके लिए अपनी बहन की दौडधूप तथा लगन देखी। उन्हें भी लगने लगा कि मुझे भी यह कार्य करना चाहीए। मौसी जी प्रतीक्षा में ही थी कि कोई पहल कर नागपूर में समिति की शाखा प्रारंभ करें। अतः मैनाताई ने बात चलाई तो मौसी जी ने कहा, ''मैना, तुम बडी मिलनसार हो। तुम्हारी सहेलियां भी काफी है। हम नागपुर की होने के कारण हमारा परिचय भी काफी लोगों से है। समिति का कार्य नागपुर में प्रारंभ हो, मेरी बडी इच्छा है। तुम ही पहल कर लडकीयों को एकत्रित करो। किंतु सारा बोझ मैं तुम अकेली पर नहीं डालूंगी। किसी प्रौढा को संचालिका के नाते यह दायित्व लेना होगा।''

मैनाताई को भी अपनी अक्का की बात और इसका उद्देश समझ में आया। बात सही थी कि किसी जिम्मेदार प्रौढा को इस काम में देख कर अभिभावक अपनी लडकियों को विश्वासपूर्वक समिति, में भेजेंगे। खुला मैदान में लडकियों से शारीरिक व्यायाम करवाना उन दिनों न केवल अनूठी बल्कि बडी साहसिक बात थी। इसके लिए अभिभावकों का विश्वास प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक था। यह काम किसी लड़की पर दायित्व सौंपने से शायद ही हो सकता था। मौसी जी इसे खुब अच्छी तरह से समझती थी। उन्हें तुरंत एक नाम याद आया - दाते परिवार से सुपरिचित श्रीमती सावित्रीबाई छत्रे का। मौसी जी ने मैनाताई से कहा, '' मै दो तीन दिनो बाद नागपुर आ रही हूं, तब सावित्रीबाई से हम मिलेंगे।''

तदनुसार मौसी जी नागपुर गई और श्रीमती सावित्रीबाई तैयार हो गयी। धंतोली में उनके घर के पास एक खुली जगह पर शाखा का प्रारंभ हुआ। लडकियों में काफी उल्लास था। आसपास के परिसर में समिति की शाखा चर्चा का विषय बन गई। सावित्रीबाई स्वयं प्रतिदिन शाखा में उपस्थित रहती थी। मैनाताई भी बर्डी से हररोज धंतोली शाखा में उपस्थित रहती थीं। उनके साथ सर्व सुश्री तारा विंझे (श्रीमती साने), सिंधु रानडे (श्रीमती सिंधुताई पाटणकर), इंदुकला रानडे (श्रीमती जोशी) आदि उन्हीकी उम्र की सहेलियां और उनकी छोटी बहने भी आती थी।

धंतोली की शाखा सुचारु रूप से चलने लगी। वर्धा की भांति यहां भी शाखा की युवा सेविकाओं ने संघबंधुओं से शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त किया और वे स्वयं समिति की शाखा में

यह शिक्षण देने लगी। अब बर्डी में समिति की शाखा शुरु करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। कारण यह था कि शुरु शुरु में बर्डी से धंतोली आने में सेविकाओं में जो उत्साह पाया गया, धीरे धीरे कम होने लगा था। इतनी दूर हर रोज जाने में लडकियों को उचाट सा आने लगा। सावित्रीबाई ने यह देख कर बर्डी पर ही दूसरी शाखा लगाने की अनुमति दे दी। बुटी महल के बंद प्रांगण में दूसरी शाखा प्रारंभ हुई। इस तरह नागपुर में अब समिति की दो शाखाएं हो गई।

इसी समय सिंदी में श्रीमती सुशीलाबाई साठे, हिंगणघाट में श्रीमती अनसूयाबाई सबनीस, यवतमाल में श्रीमती जानकी बाई धबाब तथा धामणगाव में श्रीमती जोग ने मौसी जी की प्रेरणा से समिति की शाखाएं प्रारंभ की थी। वर्धा की पंचक्रोशी में समिति पहुंच गई थी। अब तो स्थान स्थान से हमारे यहां समिति की शाखा शुरु करने का अनुराध करने वाले पत्रों का तातासा मौसी जी के नाम लग गया। तथापि मौसी जी बडी सजगता से काम लेती। पत्र भेजने वाली के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करतीं। सभी अंगो से विचार करती और तब कही जाकर अनुमति देती थी। कुकुरमुते की भाँति शाखाओं की बरसाती बाढ उन्हें कतई गंवारा नही थी। मौसी जी को लोगों की परखा करना बहुत अच्छी तरह से आता था। शायद यह गुण उनमें जन्मजात था। तभी तो वे देशभर में गुणी सेविकाओं को जोड सकीं और उनके गुणों का विकास भी कर सकी।

उन्हीं दिनों मौसी जी को अकोला के प्रख्यात अधिवक्ता बापूसाहब सोहोनी की स्नातक पत्नी सुश्री कमलाबाई का पत्र मिला। कमलाबाई बडी ढीठ थी। समाज कार्यों में खुलकर हिस्सा लेती थी। पति अकोला के संघचालक थे। अतः कमलाबाई सोहोनी भी संघ परिवार से परिचीत थी। तो यह कमलाबाई सोहोनी पत्र लिखकर मौसी जी से समिति की शाखा प्रारंभ करने की अनुमति मांग रहीं था। ऐसी विदुशी का पत्र पाकर मौसी जी मन ही मन कुछ बेचैन हुईं, क्यों कि वे स्वयं विशेष पढी लिखी नहीं थी। इसकी उन्हें शर्म भी महसूस होती थी। किंतु यह न्यून बोध पल भर में ही उन्होने झटक दिया। अपने आपको चेतावनी सी दी कि अबसे आगे तो ऐसी पढी लिखी, स्नातक महिलाओं का भी मार्गदर्शन स्वयं को ही करना पडेगा। डाक्टर हेडगेवार और अप्पाजी जोशी जैसे लोग भी समिति के विषय में मेरी ओर अंगुली निर्देश करते हैं तो अब हिंमत हार कर कदम पीछे हटाने से काम नहीं चलेगा। उन्होने पत्र लिख कर कमलाबाई को शाखा प्रारंभ करने की अनुमति दे दी। इस तरह अकोला में समिति की शाखा प्रारंभ हो गई।

अब आस पास के परिसर से, गांव गांव से और हालही में समिति की शाखाएं प्रारंभ कर चुके स्थानों से मौसी जी को मार्गदर्शन करने के निमंत्रण आने लगे। प्रारंभ में तो मौसी जी वेणूताई

से जाने को कहती रही। किंतु स्थान स्थान की महिलाएं चाहती थी कि समिति की संस्थापिका मौसी जी को देखे, उनसे मिले तथा समिति के बारे में उन्हीं की वाणी से कुछ सुने। तब तो मौसी जी को जाना ही पडता। किंतु बार बार घर से निकलना कठीन होता था। उमा काकू भी मौसी जी को बाहर गांव जाने की अनुमति नहीं देती थी। तब मौसी जी माई नागले से कहती, "माई, भंडारा से पत्र आया है। जाना तो आवश्यक हे। किंतु उमा काकू को मेरा बाहर गांव जाना पसंद नहीं। अब क्या करु?" सुनकर माई चुपचाप उठतीं और उमा काकू से मिलती। उनका संवाद सुनने लायक होता था।

उमा काकू कहती - "माई, काम के लिए मैं मना थोडे ही करती हुँ। बच्चों की पूरी देखभाल करने में मैं स्वयं समर्थ हुँ। घर का भी सभी अकेली देख सकती हुँ। किंतु यह नव युवति, स्वरुप सुंदरा महिला प्रवास करने जाए तो डर से कलेजा कांप उठता है! देवर जी इसका संपूर्ण दायित्व मुझ पर जो छोड गए हैं। मुझे तो उसे निभाना है न?"

इस पर माई उत्तर देती - "आप कतई चिंता ना करों। उन्हें अकेली थोडे ही भेजूंगी? साथ में किसी को अवश्य भेजेगे। मौसी जी को जाना तो पडेगा ही। वहां महिलाओं की बैठक बुला रखी है। पाच पचास बहने एकत्रित होंगी। लक्ष्मीबाई नहीं गई तो आलोचना तो उन्हीं की होगी न?"

यों उमा काकू को समझाकर माई अनुमति ले लेतीं और फिर मौसी जी प्रवास पर जाती थी।

कदम कदम पर मौसी जी अनुभव करती थी उन दिनों कार्य करना कितना कठीन था। किंतु स्वीकृत कार्य के लिए सब कुछ झेलने के लिए मन की तैयारी उन्होने कर ली थी। स्थान स्थान पर शाखाएं प्रारंभ को गई थी। और भी काफी स्थानोंपर प्रारंभ होने जा रही थी। इन सब स्थानों को भेंट देना मौसी जी अथवा वर्धा की युवा सेविकाओं के लिए असंभव ही था। साथ ही साथ हर स्थान पर संघ के स्वयंसेवकों को प्रशिक्षण के लिए आमंत्रित करना भी मौसी जी को अच्छा नहीं लगता था। इस पर उपाय यही था कि समिति ही अपना प्रशिक्षण वर्ग ले और प्रशिक्षित सेविकाओं को तैयार करे। मौसी जी का विचार चक्र तेजी से घूमने लगा था। किंतु अपने मन में आया विचार अकेली के निर्णय से अमल में लाना मौसी जी की शैली में नहीं था। "मैं सब कुछ हुँ, सर्वज्ञ हुँ" इस अहंकार ने उनके मन को कभी स्पर्श नहीं किया। इसीलिए उन्हों ने ठान लिया कि संघ शिक्षा वर्ग का स्वयं अनुभव ले। इसका अवसर भी उन्हें शीघ्र ही मिल गया।

१९३६ के दिसंबर में संघ का वर्धा जिला शिबीर पुलगांव में था। मौसी जी की बडी इच्छा थी कि शिबिर की संरचना, निर्माण, अनुशासन एवं शारीरिक कार्यक्रम नजदीक से देखें। इसलिए

हिंमत जुटाकर एक दिन वे अप्पाजी जोशी से मिली और कहा,

''अप्पाजी, आपसे एक बिनती है।''

'' कहिए क्या आज्ञा है ?''

'' आज्ञा कैसी ? मैं तो एक छोटीसी बिनती करने आई हूँ। पुलगाव में आपका शिबिर है। पुरे समय उसमें रह कर उसका बारीकी से अध्ययन करना चाहती हुँ। आप यह अवसर मुझे दे।'' मौसी जी एक सांस में कह गईं और उत्तर की अपेक्षा से अप्पाजी की ओर देखने लगीं।

'' दो दिनों बाद बताऊँगा '' अप्पाजी ने कहा। वे दो दिन मौसी जी ने बहुत बेचैनी में बिताए।

मन में संदेहो का अंबार सा लग गया। कहीं अपनी बात अनावश्यक ढिठाई से तो नहीं कह दी गई ? अप्पाजी नाराज तो नहीं हुए होगे ? मेरे बारे में उनका मत प्रतिकूल तो नहीं बना होगा ? बीसीयों आशंकाए उठने लगीं। अंत मे अप्पाजी से अनुमती आ गई तब जाकर कही मौसी जी ने राहत की सांस ली। कुछ सेविकांओ को साथ लेकर वे शिबिर में दो दिन रहीं। अप्पा जी ने उनके लिए स्वतंत्र राहुटी लगवाई थी। शिबिर में डा. हेडगेवार जी से भी मौसी जी की भेंट हुई। मौसी जी संघ शिबिर का बारीकी से अध्ययन कर रही थीं और साथ ही मन ही मन कुछ खाका खींच रही थीं।

समिति की स्थापना के बाद पहला उत्सव मकर सक्रांति का आने वाला था। उसकी तैयारियां उन्होने प्रारंभ कर दीं। प्रारंभिक दिनों में समिति के उत्सव एवं दैनिक शाखा के कार्यक्रम, आज्ञाएं आदि संघ जैसे ही होते थे। आज भी समिति में थोडे बहुत अंतर से ऐसा ही होता है। अतः मकर संक्रांति का उत्सव संघप्रथा के अनुसार ही हुआ। उत्सव के लिए अध्यक्षा के नाते सुप्रसिद्ध लेखिका गिरिजाबाई केलकर आई थीं। संघ के श्री. गोलवलकर गुरुजी भी आए थे। उपस्थिति काफी अच्छी थी। श्री. गुरुजी ने अपने भाषण में सुझाव दिया कि, 'समिति अपनी शारीरिक शिक्षा में पुराने खेलों को शुरू करें और ग्रंथ पठन पर बल देकर महिलाओं में अध्ययनशीलता का निर्माण करे।

उत्सव संपन्न हुआ और मौसी जी को लगने लगा कि श्री. गुरुजी के सुझाव पर विचार करना चाहिए। उन्होने इसके लिए प्रयास भी प्रारंभ कर दिए। तभी कन्या विद्यालय के अध्यक्ष श्री. खरे ने मौसी जी से कहा कि मुंबई के डाक्टर म्हसकर ने महिला स्वास्थ्य पर मार्गदर्शक पुस्तकें लिखी हैं उन्हें पढिए। आपके लिए वे काफी उपयोगी रहेंगी। मौसी जी ने वे पुस्तकें पढीं और तदनुसार समिति की शाखाओं में व्यायाम प्रारंभ किए।

संघ-शिबिर देख आने के बाद मौसी जी ने निर्णय किया कि समिति में भी प्रशिक्षण वर्ग लिया जाए। तदनुसार वे काम में लग गईं। तय हुआ कि पहला प्रशिक्षण वर्ग वर्धा में ही लिया जाए। कुछ सहयोगिनियों ने मौसी जी से कहा -

''समिति की स्थापना हुए अभी छः महिने भी नहीं हुए हैं, अतः प्रशिक्षण वर्ग लेने की जल्दी न करें।''

इस पर मौसी जी ने अपना निर्णय दृढता से सामने रखा, ''मैने डाक्टर जी को वचन दिया है कि इस शिक्षण के बारे में हम शीघ्रातिशीघ्र स्वावलंबी बनेंगे।''

उन्हों ने पहले से ही तय किया था कि संघ बंधुओं से सहायता बहुत ही सीमित रुप में ही ली जाए। तदनुसार, संघ के स्वयंसेवक चार-पांच महिने स्थान स्थान की समिति की शाखाओंमें प्रशिक्षण देने जाते थे।

मई मास में वर्ग लेना तय हुआ। पहला प्रश्न स्थान का था। किंतु न्यु इंग्लिश हाईस्कूल नें अपना मैदान देकर उसे हल कर दिया। मैदान मिला, बौद्धिक एवं चर्चा के लिए विद्यालय की कक्षाएं भी उपलब्ध हो गई। किंतु वर्ग में आने वाली सेविकाओं के निवास तथा भोजन आदि का प्रबंध करना था। एक समस्या हो तो कहें। मौसी जी दिन रात परिश्रम कर रही थीं। बाहर गांवो से कितनी सेविकांए आएंगी इसका तो कोई अनुमान नहीं लग रहा था। अपनी लडकियां महिना भर दूसरे गांव में जाकर रहें यह कल्पना अपने में बडा धक्का देने वाली थी। अतः ऐसा स्थान खोजने की आवश्यकता थी जिससे अभिभावकों को विश्वास हो। वर्धा में तो ऐसा स्थान मिलने से रहा। मिल भी गया, तो वहां लडकियों के साथ स्थायी रूप में कौन रहे ? सभी प्रश्नों का हल आवश्यक था। आखिर सर्व सम्मति से तय हुआ कि घर घर में दो दो लडकियों को ठहराया जाए। ऐसे घरों की तलाश प्रारंभ हो गई। फिर भी कितने घरों की आवश्यकता होगी इसका अनुमान नहीं हो पा रहा था। माई नागले ने सुझाया कि कम से कम चालीस घरों में बात छेडी जाए।

तदनुसार मौसी जी स्वयं अन्य सेविकाओं को साथ लेकर वर्धा में घर घर जाकर पूछने लगी कि क्या दो लडकियों को महिना भर आपके यहां ठहराया जा सकता है ? वर्ग में आने वाली स्थानीय लडकियों के बारे में प्रश्न ही नहीं था। उनके घर दो दो लडकियां जाएंगी यह तो मान ही लिया गया था। उनके घरों के अतिरिक्त अन्य घरों में मौसी जी पूछने जाती, तो कुछ घरों में यह बात ही अजीबोगरीब सी लगती। क्योंकि ऐसी दो लडकियों को जिनसे ना जान ना पहिचान, ना नाता ना रिश्ता, महिने भर के लिए अपने घर में ठहरानी अपने में एक समस्या

थी। किंतु मौसी जी दृढकर्मी थी। उन्हों ने अपनी लगन नहीं छोडी। उन्होंने बात लोंगो के गले उतारी और लोग दो- दो लडकियों को महिनाभर घर में रखने के लिए तैयार हो गए।

इस प्रकार वर्ग की सारी तैयारी पूर्ण होकर १ मई १९३७ को वर्धा में समिती का प्रथम गीष्म कालीन वर्ग प्रारंभ हुआ। मैदान में अब तसबीर के स्थान पर भगवा ध्वज लहराने लगा। सेविकाएं एक स्वर से 'हे मातृभूमि प्रिय पावन पुण्यभूमि' यह पार्थना कहने लगीं। मौसी जी का तन मन संतोष से भर गया। फिर भी एक पूरा माह निकालने का दबाव मन पर था ही।आख़िर अनेक कठिनाइयों से मार्ग ढूंढते- ढूंढते समिति का यह प्रथम शिक्षण वर्ग पूरा हो गया। संघ कें स्वयंसेवकों ने शारीरिक शिक्षण देने की अपनी जिम्मेदारी उत्तम रीति से निभाही। प्रशिक्षित सेविकाएं अपने अपने घरों को लौटने लगीं। प्रात्यक्षिक प्रदर्शनों के साथ प्रकट समारोप संपन्न हुआ। किंतु उससे पहले अनौपचारिक समारोह केवल सेविकाओं के लिए आयोजित किया गया। अपने सामने बैठीं सेविकाओं का हार्दिक लगन से आहवान करते हुए मौसी जी ने कहा-

" यहां प्राप्त प्रशिक्षण को व्यर्थ न जाने दें। उसका उपयोग समिति का कार्य बढाने के लिए निष्ठापूर्वक करें। अपने अपने स्थान लौटकर समिति की शाखांए बढाने के कार्य में प्राणप्रण से जुट जाएं।"

सभी सेविकाएं इस उद्बोधन को उसमें निहित संदेश को हृदयंगम किए जा रही थीं। समारोह संपन्न हुआ लडकियां अपने घरों को लौट गई

लडकियों को शारीरिक शिक्षण के साथ कुछ बौद्धिक शिक्षण भी मिला था। समिती के लिए आवश्यक था कि उसका अपना कोई स्थायी दर्शन हो, कोई ध्येय तथा नीतिरीति हो।मौसी जी को हमेशा यह बोध सताता कि वे स्वयं कम पढी लिखी हैं, कहीं बौद्धिक स्तर पर मेरी त्रुटियां मुखर न हो जाएं। ऐसा होना संगठन की दृष्टि से हितकारी नहीं था। अत: ऐसा होना नहीं चाहीए। इसी बोध के कारण मौसी जी ने अध्ययन प्रारंभ किया। हिंदू धर्म के बारे में जो भी ग्रंथ मिल जाता, वे उसे पढतीं गई। केवल पढती नहीं, अपितु जो पढा है उस पर वेणुताई एवं कालिंदीताई के साथ चर्चा भी करती गईं। उन बातों पर चिंतन भी करती गईं। रामायण और महाभारत के साथ ही समग्र सावरकर साहित्य उन्होने पढ डाला। रामायण और महाभारत पढकर यह बोध पक्का हो गया कि नारी को अपनी रक्षा स्वंय ही करनी पडती है। नारी के पास उसका सतीत्व ही सबसे अहम चीज है और अपने सतीत्व की रक्षा करते समय नारी अपने प्राणों की भी कीमत चुका सकती है। अपने संगठन में भी शील ही सबसे महत्त्वपूर्ण है शील की रक्षा के लिए बल की आवश्यक्ता है। अत: समिति में बलोपासना भी आवश्यक ही है। इसीलिए तो यह काफी

शारीरिक शिक्षण लेने का निर्णय लिया था। सोच विचार के बाद और अनुभव से यह बात पर उनके ध्यान में आई थी। समाज में कुछ कर गुजरना हो तो विशुद्ध चरित्र की नितांत आवश्यक्ता है इसमें मौसी जी की श्रद्धा थी। इसीलिए हिंदु महिलाओं को शीलवान, बलवान तथा चरित्रवान बनाते हुए संगठित करने को ही मौसी जी ने समिति की ध्येय निश्चित किया। उन दिनों समिति के संगठण को निर्दोष बनाने के लिए मौसी जी ने अनथक परिश्रम किया। उन्होने समर्थ रामदास स्वामी के साहित्य का अध्ययन किया। वे हमेशा कहा करती थीं कि, " रामदास स्वामी - ऐसा आदर्श कुशल संगठक शायद ही कोई हो।" उनकी कुशाग्र मेधा ने अनेक ग्रंथों का अनुशीलन किया और संगठन के बारे में अपने सुनिश्चित सिद्धान्त बनाए। वीर सावरकर के साहित्य में उन्होने सच्चे हिंदू धर्म का परिचय करा लिया। वेद मूर्ति पं. सातवलेकर लिखित संस्कृति कोशों का मौसी जी ने अध्ययन किया। उनकी इस ज्ञानपिपासा देख कर मन दंग रह जाता है। श्री. अप्रबुध्द की ग्रंथ संपदा का भी उन्होने उन दिनों पठन कर लिया। यह सब अध्यवसाय वे इसीलिए करती थीं कि अपना कार्य करते समय बौद्धिक एवं दार्शनिक दृष्टी से वे किसी से कम न दिखाई दें। उनका सारा पठन अध्ययन अधिकतर रात में होता था। दिनभर के परिश्रम से थका माँदा शरीर नींद के लिए बेताब तो होता था, किंतु वही एक समय ऐसा होता था जिसपर वे अपना अधिकार मानती थी। इसीलिए उस समय को वे ज्ञानसाधना में लगा देती थीं। उनकी अपनी प्रगती के साथ ही समिति के कार्य का भी विस्तार जारी था। संघ का केन्द्रस्थान नागपुर था। देश के विभिन्न भागों से अनेक स्वयंसेवक नागपुर आते थे। अत: नागपुर निवासी सेविकांओं को संघ कार्य से निकट परिचय होता था। मौसी जी हमेशा सोचती थी कि समिती की कार्य प्रणाली यद्यपि पूर्णत: भिन्न है ,संघ स्वयंसेवक किस ढंग से कार्य करते है, इसकी जानकारी समिती को आवश्यक है। नागपुर वर्धा के पास ही था। अत: वे खोजती थी कि नागपुर में समिती के कार्य के लिए क्या कोई और बहन उपलब्ध होती है ?

ऐसी बहन उन्हें शीघ्र ही मिल गई। १९३८ में हिंदू महासभा का अखिल भारतीय अधिवेशन नागपुर में होने वाला था। इस विचार से कि शायद नागपुर में अपनी विचार धारा वाली कुछ महिलाओं से परिचय होगा , मौसी जी उस अधिवेशन में गई थीं। उनके ननिहाल वाला दाते परिवार नागपुर का ही था। इसी दाते परिवार से जुडी एक श्रीमती लक्ष्मीबाई परांजपे मौसी जी को वहां मिलीं। पुराना परिचय था ही। इसके अतिरिक्त इन लक्ष्मीबाई का कृतित्व ज्वलंत हिंदुत्वनिष्ठा आदि से भी मौसी जी परिचित थीं। इसलिए उन्होने समिति का विषय लक्ष्मीबाई के सन्मुख रखा। इसी समय लक्ष्मीबाई की अत्यंत बुद्धिमति लडकी कुसुम (मा. कुसुमताई साठे) से मौसी जी का परिचय हुआ। अल्प परिचय में ही मौसी जी कुसुम के को बारे में बडा विश्वास सा हो गया। मन ही मन उन्होने कुसुमताई को बौद्धिक प्रमुख नियुक्त भी

कर डाला।मौसी जी का चयन एकदम अचूक था। तबसे लगभग पचास साल अपने पर सौंपा गया बौद्धिक कार्यवाहिका का दायित्व कुसुमताई ने अत्यंत क्षमता के साथ निभाया था।

समिती का नाम क्या हो इस पर भी कुसुमताई तथा वेणुताई कलमकर में काफी चर्चा हुई। अंत में यही निष्कर्ष निकला कि जो नाम चल रहा है, वही ठीक है। मौसी जी ने सुझाव दिया कि अब नागपुर में भी वर्ग लिया जाए। तदनुसार ''हिंदू मुलींची शाला'' वर्ग के लिए ली गई। विद्यालय कीं छात्राओं में समिति के नाम से पत्र बाँटे गए, जिनमें मुख्यत: समिति का उद्देश्य अंकित था।

वर्ग के लिए अब स्थान तो मिल गया था। किंतु फिर प्रश्न आया शिक्षकों का। क्योंकि अब सारी जिम्मेदारी नागपुर की सेविकाओं पर थी। लक्ष्मीबाई परांजपे डा. हेडगेवार जी के यहां गई। संघ स्वयंसेवकों को शिक्षक के नाते भेजने का अनुरोध करने श्रीमती सावित्री बाई छत्रे पहले ही वहां पहुंची थी। डाक्टर जी ने कहा, '' ठीक है, किंतु समिति में नागपुर की मुख्य कौन है ? '' सावित्री बाई ने छूटते ही कहा, '' यह काकू परांजपे हमारी मुख्य है।'' और तब से नागपुर शहर की संचालिका काकू परांजपे हो गई।

उसी समय डाक्टर जी ने वर्ग में बौद्धिक देने के लिए आना स्वीकार किया।

फिर वही सिलसिला शुरू हुआ। लडकियों को इकट्ठा करना, लडकियों के निवास आदि का प्रबंध करना, महिने भर के कार्यक्रम तैयार करना, शारीरिक तथा बौद्धिक चर्चा आदि का संयोजन करना आदि कामों के लिए दौड धुप प्रारंभ हुई। सभी कार्यकर्ती बहने उत्साह से काम में जुट गई थीं। प्रथम ग्रीष्म -कालीन वर्ग वर्धा में हुआ। अब द्वितीय वर्ग नागपुर में होने जा रहा था। आगे चलकर बरसों तक कर्नाटक के प्रांत प्रचारक रहे श्री. यादवराव जोशी इस वर्ग के लिए शिक्षक बन कर आए थे। डाक्टर जी ने एक बार जिसे अपना कहा उसके साथ फिर तालमटोल वे कभीं नहीं करते थे। डाक्टर जी को यह बात पूरी तरह जच गई थी कि राष्ट्र का आधा हिस्सा रहने वाली महिलाओं का संगठण समाज और राष्ट्र के हित में है। इसीलिए वे सभी प्रकार से समिती की सहायता किया करते थे। विशेष बात यह थी कि संघ के वर्ग में दुसरों का बौद्धिक होता तो उसे सुनने के लिए डाक्टर जी श्रोता बन कर आते थे। यही नहीं एक बार तो वे श्री. गुरुजी को भी वहां ले गए थे।

२४ जून १९३८ को डाक्टर जी ने समिती के वर्ग में अपने बौद्धिक में समिति के कार्य की स्पष्ट रूपरेखा रखी थी। उन्होने ने कहा, '' राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करने लिए समिति की स्थापना की गई है। संघ ने उसकी सहायता करने का निर्णय लिया है। योजनानुसार समिति

की शाखाएं स्थापित की गई हैं। हिंदु महिलाओं का संगठन करना समिति का उद्देश है। हिंदू राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए यह समिती बनी है। हिंदु राष्ट्र की फिसलन रुके और वह हमेशा उत्कर्ष की ओर बढता जाए ऐसी योजना समिति की बननी चाहीए। कार्य कठिण है फिर भी उसे करने में ही शान और पराक्रम है। ध्येय की इतनी सुस्पष्ट कल्पना अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। समांतर रेखाओं के रुप में संघ और समिति लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'' समय समय पर डाक्टर जी के संघ में जो बौद्धिक वर्ग हुए उनसे भी दिखाई देता है कि डाक्टर जी ने यही कल्पना संघ के सभी अधिकारियों को भी स्पष्टत: दी थी। आगे चलकर २४ जनवरी १९४० को वार्षिक उत्सव में मा. अप्पाजी जोशी ने कहा, '' संघ और समिति दो स्वतंत्र संगठन है। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे का ध्येय एक ही था किंतु दोनों अलग थे। कमल जल में होता है फिर भी जल से अलग रहता है। हम भी एक दूसरे की उन्नती करेंगे, किंतु अपनी अपनी को कायम रखते हुए ।'' यह वर्ग भी सफल रहा। ''हिंदु मुलींची शाला '' में नागपुर की तीसरी शाखा प्रारंभ हुई। इस वर्ग की फलश्रुती यही थी कि उस समय वर्ग में आईं और काम में जुटी सेविकांए आज भी कार्यरत हैं। अपनी घर गृहस्थी संभालकर इस तरह कार्यरत महिलाओं में सर्वसुश्री कुसुमताई साठे, प्रमिलाताई मुंजे, इंदुताई गोखले, प्रतिभा भावे, प्रमिलाताई मेढे आदि का समावेश है। ये सभी आज राष्ट सेविका समिति की अखिल भारतीय अधिकारी हैं।

तब तक संघ के स्वयंसेवक वर्ग पर शिक्षक बन कर आते थे और उनके द्वारा प्रशिक्षित सेविकाएं अपने अपने स्थान जा कर दूसरी सेविकाओं को वही शिक्षा देती थीं। मौसी जी सोचने लगीं कि नारी और पुरुष की शरीररचना भिन्न है। तो पुरुषों का शारीरिक महिलाओंको भी कहां तक दिया जा सकता है। ऐसे में काम कैसे चलेगा ? मौसी जी की विशेषता थी कि बात मन में आई नहीं कि उस पर के सुयोग्य व्यक्तिओं से चर्चा प्रारंभ कर देती थी। अपने कार्य को सभी दृष्टियों से निर्दोष रखने के लिए अतीव सतर्कता बरतने वाली मौसी जी ने तुरंत ही इस विषय पर माननीय लोगों की एक बैठक बुला ली। ' हिंदु मुलींची शाला ' में ही बैठक क ा आयोजन हुआ। उस बैठक के लिए डा. हेडगेवार, डा. हरदास, डा. परांजपे, डा. इंदिराबाई नियोगी औंर मौसी जी के साथ काकू परांजपे, छन्ने ताई एवं कुछ युवतियां उपस्थित थे। चर्चा एकदम शास्त्रीय स्तर पर हुई और तय हुआ कि संघ स्थान पर सिखाया जाने वाला शारीरिक शिक्षण ज्यों का त्यों समिती में न लेते हुए उसमें कुछ परिवर्तन किए जाएं। किंतु छुरिका चलाने के शिक्षण पर सभीने बल दिया मौसी जी सदैव इस बात का आग्रह रखती थीं किं सेविकाओं को अपने पास एक छुरिका अवश्य रखनी चाहिए। परंतु वे उपदेश कुशल बहुतेरों में न होने के कारण वे स्वयं कई दिनों तक अपने पास छुरिका लिए चला करती थीं।

मौसी जी अपनी बौद्धिक कार्यवाहिका के साथ अनेक विषयों पर चर्चा किया करती थीं । ऐसी चर्चा में मात्र समिति का विचार दर्शन , शाखा वृद्धि के प्रयास बौद्धिकों के विषय पर ही बल नहीं होता था। आठवें एडवर्ड का विवाह विवाद्य मुद्दा बनते ही उसको लेकर उन्होंने इंग्लैड का राज्यपद त्याग दिया , यह समाचार आया। प्रेम के लिए राज्य त्याग किया इस बात को लेकर कुसुमताई एडवर्ड का समर्थन करने लगी। तब मौसी जी ने उनसे कहा, '' कुसुमताई, राज्य त्यागने के लिए प्रेम से अधिक उदात्त कारण हो सकता है। व्यक्तिगत सुख के लिए एडवर्ड ने राज्य त्याग किया है। किंतु पिता की आज्ञा तथा उनका वचन पूरा करने के लिए व्यक्तिगत सुख को तिलांजली देने वाला राम निश्चय ही श्रेष्ठ है। '' यह मुद्दा उन्होंने कुसुमताई को भलि भांति समझाया। अत्यंत बुद्धिमति , एम. ए. तथा शास्त्री की उपाधियों से विभूषित विदुषी कुसुमताई के साथ मौसी जी ने बहुत तर्कशुद्ध ढंग से बहस की। उनकी प्रतिभा का यह पहलु देखकर कुसुमताई चकित रह गईं।

१९३६ से १९३८-३९ तक समिति के कार्य का विस्तार महाराष्ट्र के प्रमुख शहरों में हो चुका था। डा. हेडगेवार जहां भी जाते , महिलाओं के लिए कुछ करने को इच्छुक बहनों को समिती का नाम बता कर मार्गदर्शन करते थे। मौसी जी को अनेक पत्र आने लगे थे। पत्राचार बढ रहा था। मौसी जी बिना ऊबे उचटे, आने वाली हर चिठ्ठी का उत्तर स्वयं देती थीं। १९३८ में मौसी जी को सोलापुर से एक पत्र आया। नीचे हस्ताक्षर थे श्रीमती कुमुदिनी अफजलपुरकर के उन्होंने सोलापुर में महिलाओं को आत्मरक्षा क्षम बनाने के लिए एक संस्था चला रखी थी। आम लोगों में इन्हें माई के नाम से जाना जाता था। इस कार्य में उन्हें बकुलताई करंदीकर सहायता दे रही थी। माई और बकुलताई की इच्छा थी कि उनकी संस्था को समिति में विलिन कर दें। इसीलिए यह पत्र आया था। श्रीमती काशीताई कुलकर्णी नाम की एक बहुत ही गुणी सेविका माई को प्राप्त हुई। सोलापूर में समिति का कार्य यों प्रारंभ हुआ और सभी बहनें पूर

७

समिति के कार्य का विस्तार

शाखा का काम अब केवल विदर्भ तक सीमित नहीं था। पश्चिम महाराष्ट्र में सोलापुर तथा पुणे में भी काम प्रारंभ हो चुका था। पुणे की श्रीमती सरस्वतीबाई उर्फ ताई आपटे (समिति की द्वितीय प्रमुख संचालिका) ने भी काम प्रारंभ कर दिया था। देश की तत्कालीन परिस्थिति वं. ताई जी को बेचैन कर रही थी। संवेदनशील मन उन्हें चैन से बैठे नहीं दे रहा था। पति श्री. विनायकराव आपटे उन दिनों पुणे के संघचालक थे। अत: संघ को वे निकट से देख समझ रहीं थीं। पति के संघचालक होने के कारण घर में संघ वालों का हमेशा आना जाना लगा रहता था। उनकी बातें , चर्चायें ताई जी के कानों पर पडती रहतीं। अन्नपूर्णा का काम करते समय भी उनमें सरस्वती सदैव जागृत रहती। आखिर ताई जी ने संघ के जैसा महिलाओं और लडकियों का संगठन बनाने का निर्णय लिया। १९३६ में उन्होंने ऐसा महिला संगठन प्रारंभ किया। शुरु शुरु में ताई जी के यहां सप्ताह में तीन चार बार युवतियां और शनिवार को प्रौढ महिलाएं एकत्रित होने लगीं। किसी एक विषय पर वे चर्चा करतीं। अधिकतर विषय तत्कालीन गतिविधियों के हुआ करते थे। देश की राजनीतिक स्थिती , हिंदुओं का दमन और महिलाओं की उसके प्रति उदासीनता आदि विषय चर्चा में समाविष्ट किए जाते। किंतु ताई जी के पास तेरह चौदह साल की किशोरियां भी आती थी , उन्हें यह चर्चाए जटिल और बडी नीरस लगती थीं। उन्होंने ताई जी को कुछ शारीरिक प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया। ताई जी भी यही सोच रही थीं। उन्होंने शाखा खुले मैदान में लेने का तुरंत निर्णय लिया। उन दिनों आज की तरह पाठशालाएं दिन में दो बार नहीं लगती थी ,ना ही किसी प्रकारके कोई विशेष अध्ययन वर्ग शाम को होते थे। अत: सायं ४-३० बजे पाठशाला की छुट्टी के बाद लडकियां खाली होती थी। इसी कारण शाखा में उनकी बडी संख्यामें उपस्थिती रहती थी। मैदानपर शारीरिक शिक्षण श्रीमती बकुल नातू (मा. बकुलताई देवकुले) दिया करती थीं। महाराष्ट्र मंडल में उन्होंने लाठी काठी जैसे कई मैदानी खेलोंका प्रशिक्षण लिया था। इसीलिए शारीरिक शिक्षण की

जिम्मेदारी उन्होने ली थी। बकुलताई तब अंग्रेजी तीसरी कक्षा में पढ रही थी। लडकियोंपर ध्यान देने बीच बीच में ताईजी स्वंय मैदानपर जाती थीं। श्रीमती मंदाताई लोढे जैसी कुछ अन्य बहनें भी निरीक्षण करने जाती थीं।

डा. हेडगेवार , ताई जी के घर में अक्सर आते थे। एक बार उन्होने ताईजी से पूछा कि आप दोपहर में क्या करती है ?' तब ताईजी ने अपने कार्य की जानकारी डाक्टर जी को दी। इस पर डाक्टर जी ने समिती की पूरी जानकारी ताईजी को दी। वो सब सुनकर ताईजी के मन में समिती की संस्थापिका से मिलने की उत्सुकता पैदा हुई।

शीघ्र ही ताई जी की इच्छा पूरी हो गई। १९३८ में पुणे में हिंदु युवक परिषद आयोजित की गई थी। डाक्टर हेडगेवार उसके अध्यक्ष थे। संजोग से मौसीजी के साथ वत्सलाताई चोलकर भी वहां आई हुई थी। डा. हेडगेवार जी ने ताई जी के कार्य की सारी कल्पना मौसी जी को दी थी। अत: वे भी ताईजी को मिलने उत्सुक थे। पुणे में मौसी जी को श्रीमती जिजी केलकर यानी कालिंदिबाई पाटणकर की बहन, (श्री. ग. वि. केतकर की पत्नी)से भी मिलना था। दोनों मे घरेलू संबंध थे। एक दिन शाम करीब पांच बजे मौसी जी अपने छोटे बेटे आनंद को लेकर पता खोजती हुई ताई आपटे के घर पहुंची। उस समय ताई ज़ी दरवाजे को ताला लगाकर बाहर निकल रही थीं। वे सीढियों की ऊपर की पौढी पर थी और निचली पौढी पर मौसी जी खडी थी। उन्होने नीचे से ही पूछा , ' क्या सरस्वतीबाई आपटे यहीं रहती है ?'' ताई जी ने देखा, एक अत्यंत रूपवती युवती उन्हीं को पूछ रही थी। उन्होने ऊपर से ही उत्तर दिया , ''हां हां यहीं रहती हैं। आइएं ऊपर आइए।''

मौसी जी ऊपर गई। नजरें चार हुई और औपचारिकता के सारे बंधन टूट गए। मानों दोनो एक दूसरे को सदियों से जानती हों। ऐसा था मौसी जी का व्यक्तित्व। उन्हें देखने वाला हर व्यक्ती चुटकियों में अनायास ही उनके साथ समरस हो जाया करता था। मौसी जी ने ताई जी को अप्पाजी का पत्र दिखाया। डा. जी ने एक ओर जहां ताई जी को मौसी जी के कार्य का परिचय दिया वही दूसरी ओर मौसी जी को ताई जी के कार्य का भी।

दोनों में काफी देर बातचीत हुई। दोंनो ने अपने कार्य का परिचय कराया। विचारों का आदान प्रदान हुआ। सुर और विचारोंका संगम हुआ। ताई जी ने मौसी जी से अनुरोध किया कि उनके कार्य में सहभागी होनेवाली बहनों का वे मार्गदर्शन करें। तदनुसार एक दिन सुनिश्चित किया गया। अगले दिन दोपहर ताई जी के घर सब बहनें एकत्रित हुई। अपने जैसा ही काम अनेक स्थानों पर शुरू हुआ है इसकी कुछ भनक तो सभी को पड गई थी। उस कार्य की संस्थापिका से आज भेंट होने वाली है इसकी उत्सुकता सबके मन में थी। मौसी

जी आईं। सबसे परिचय हुआ और अपनी शांत किंतु आग्रही वाणी में मौसी जी ने, '' राष्ट्र सेविका समिती' का परिचय दिया। मौसी जी के भाषण ने सभी को प्रभावित किया। मौसी जी की बेटी श्रीमती वत्सलाताई ने शाखा किस तरह से लगाई और चलाई जाती है, दिखाया। प्रार्थना भी कहलवा ली और ताई जी द्वारा स्थापित नारी संगठन के कार्य का प्रवाह राष्ट्र सेविका समिति की सरिता में विलीन हो गया। ऐसे, जैसे गंगा यमुना का संगम! इस प्रकार ताई जी के घर राष्ट्र सेविका समिती की शाखा का शुभारंभ हुआ। अब प्रतिदिन इकठ्ठा होने वाली बहनों को सेविका कहा जाने लगा। अब तक महाराष्ट्र मंडल की पद्धती से शारीरिक शिक्षण देने वाली बकुलताई अब समिति की प्रथा के अनुसार सिखाने लगी।

सातारा में शाखा पहले हीं शुरू हो चुकी थी। पुणे आदि स्थानों की भांति कराड में भी कुछ महिलाओं की इच्छा थी कि महिलाओं का एक संगठन हो और उसके लिए कार्य किया जाए। तदनुसार वहां कुछ लडकियां यों ही इकट्ठा होती थी और खेल खेलती थी। किंतु उनके समुदाय को कोई नाम वाम नहीं था। लगभग एक सौ लडकियां इकटठा होती थी। उनमें कु. अनसूया अंबर्डेकर तथा कु. इंदु पटवर्धन (इंदु जोशी) पुणे यह युवतियां प्रमुख थी। यह लडकियां चाहती तो थी किं प्रतिदिन खेलने के अतिरिक्त और भी कुछ कार्यक्रम करें, लेकिन तय नहीं हो पा रहा था कि क्या करें?

१९३८ से पूर्व ही कराड के पास मसूर में श्री. विनायक बुवा मसूरकर ने एक आश्रम की स्थापना की थी। हिंदु धर्म का प्रचार तथा हिंदु समाज को बलशाली एवं सुसंस्कारीत करने की दृष्टी से आश्रम में कुछ कार्यक्रम करते थे। जैसे सूर्यनमस्कार, श्री समर्थ स्वामी के मन को उपदेश करने वाले श्लोक, गीता पठन आदि। मसूर आश्रम की महिला कार्यकर्ती भी स्थान स्थान पर लडकियों को लाठी चलाने का शिक्षण देने के लिए वर्ग लेती थी। इन उपक्रमों को महाराष्ट्र में अच्छा समर्थन मिल रहा था। कराड पास ही होने के कारण मसूर आश्रम के कार्यकर्ताओं ने, कराड की इन लडकियों से संपर्क किया और सुझाव दिया कि वें भी मसूर के अंतर्गत ही सभी कार्यक्रम करें। उसी समय इन लडकियों का ध्यान कराड में अनेक सामाजिक संस्थाओं में रूचि रखने वाली श्रीमती इंदिराबाई दिवेकर तथा उनकी सखी सुलोचना बाई गोखले की ओर गया। ये लडकियां इन दोनों से मिली। इंदिराबाई (ताई दिवेकर) ने उनसे आने का कारण पूछा। अब उन लडकियों ने ताई जी को अपनी कार्य की जानकारी दी और स्पष्ट कहा, '' हमें मसूराश्रम के कार्य में सहभागी नहीं होना है।'' ताई जी ने पूछा, '' तो मैं आप लोगों की क्या सहायता करूं?'' लडकियों ने बताया कि, '' आप और सुलोचना बाई उस स्थान पर आंए जहां हम लोग नित्य एकत्रित हो

खेलती हैं। आपके आनेसे हमें काफी सहारा महसूस होगा।'' ताई जी ने इसे स्वीकार किया और वे प्रतिदिन उस स्थान पर जाने लगीं। परिणामस्वरूप मसूराश्रम के कार्यकर्ताओं का आना कम हो गया। विशेष बात यह थी की ताई जी स्वयं इन लडकियों को लाठी चलाने की शिक्षा देने लगी।

यह सब होने तो लगा था किंतु ताई जी को किसी के मार्गदर्शन की लगातार आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। उनकी इच्छा शीघ्र ही पूरी हो गई। संघ कार्य के लिए पुणे के श्री. विनायकराव आपटे कराड आए थे। उनके पास ताई जी ने बात छेडी, '' लडकियां इकट्ठा होती हैं और हम कुछ करना चाहते हैं।'' उस समय पुणे में समिती की शाखा शुरू हो चुकी थी। अत: श्री. विनायकराव ने उन्हें समिती की सारी जानकारी दी। मौसी जी के बारे में भी बताया। ताई दिवेकर ने तुरंत ही बाकायदा समिती की शाखा प्रारंभ की। ताई दिवेकर के बारे में मौसी जी को सारी जानकारी ताई आपटे से मिल चुकी थी। मौसी जी ने उन्हें तुरंत पत्र लिखा और आगे चलकर समिती कार्य अंत तक अनथक रूप से करने वाली एक सेविका तथा प्राण प्रिय सखी उन्हें मिल गई।

कराड में शाखा शुरु हुए कोई चार-पांच महिने हो चुके थे फिर भी मौसी जी तथा ताई दिवेकर की भेंट तक नहीं हुई थी। सारा कार्य पत्राचार से ही चल रहा था। आवश्यकता नुसार संघ बंधु सहायता के लीए आते थे। सब में यह उत्सुकता तथा इच्छा जागी थी कि समिती की स्थापना करने वाली बहन को देखें तो सही। लडकियां ताई दिवेकर से पुछती, '' मौसी जी कब आ रही है?'' ताई का उत्तर होता था, '' शीघ्र ही आने वाली है। उन्हें भी तो हमारी शाखा देखने की उत्सुकता हो किंतु कार्य बहुत बढ रहा है अत: कदाचित उन्हें फुरसत नहीं मिली होगी।''

अंतत: मौसी जी का पत्र आ पहुंचा, ' मैं आ रही हूं।'' सब में खुशियों की लहर दौड गई। सेविकाएं तो एकदम उत्साहित हो उठीं। सभी मौसी जी के स्वागत के लिए सिद्ध हो गई। श्रीमती ताई दिवेकर कल्पना करने लगी - '' कैसी होंगी मौसी जी?'' आखिर मौसी जी का कराड आगमन हुआ। उनके प्रसन्न व्यक्तित्व से सभी प्रभावित हो गई। मौसी जी ताई जी के घर ठहरी थीं। उनकी भेंट ऐसे हो रही थी मानों दो बहने काफी दिनों बाद मिल रही हों। जन्म जन्मा नंतर की पहचान दोनों को हो गई। दोपहर में महिलाओं तथा सेविकाओं की एक बैठक हुई। मौसी जी के प्रभावी एवं आग्रही प्रतिपादन का प्रभाव सब पर पडा। शाम को मौसी शाखा स्थान पर गई।

कराड में मौसी जी को एक नया अनुभव करने को मिला। बात यह थी कि कुछ

भाई लोंगो ने भी मौसी जी से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। ताई दिवेकर ने स्थानीय गण्यमान्य लोगों तथा लडकियों के अभिभावकों को भी बुलाया था। निर्धारित समय पर सब लोग एकत्रित हुए। मौसी जी से अनेक प्रश्न पूछे गए। उन पर प्रश्नों की झडी सी लगा दी गई। मानों मौसी जी कटघरे में खडीं हों और प्रतिपक्ष का वकील उनसे जिरह कर रहा हो - " महिलाओं के संगठन का उद्देश्य क्या है ? उसका स्वरुप क्या है ? काम करने वाली महिलाएं किस सतह से आती है ?" लोग जानना चाहते थे। एक सवाल तो बडी ही कुत्सित भावना से और कुछ साहस से पूछा गया था -

" काम करने वाली महिलाएं बाल-बच्चेदार तो है? या जिनका कोई आगे पीछा नही ऐसी निकम्मी महिलाएं यह काम कर रहीं हैं ? "

मौसी जी ने अत्यंत शांत भाव से उत्तर दिया । अपना निजी उदाहरण देकर उन्होने कहा , " मैं सात बच्चों की मां हूं जिनमें छह लडके और एक लडकी है। "

एक अन्य प्रश्न था - और जो आज भी सर्वत्र पूछा जाता है - कि " समिति और संघ का क्या नाता है ? "

सभी प्रश्नों के उत्तर अत्यंत संयम पूर्व और आत्मविश्वास के साथ दिए गए। कई लोंगो के प्रश्नों का आशय था कि समिति महिलाओं को घर गृहस्थी से परावृत्त तो नही करती ? किंतू मौसी जी के उत्तरों से सभी संतुष्ट हो गए। मौसी जी की सात्विकता , तर्कयुक्त शैली तथा बुद्धिमता देख कर मौसी जी स्वयं कितनी पढी लिखी है इसके बारे में किसी को संदेह तक नहीं हुआ।

लेकिन ताई दिवेकर को पुरुषों के प्रश्नों का रुखा भाया नहीं । उन्होंने मौसी जी से कहा -" मौसी जी लोग जिस प्रकार से प्रश्न करते थे , उनके पूछने का ढंग विचित्रसा था। मुझे तो वह कतई नहीं भाया। "

मौसी जी ने कहा , " ताई , यह तो अच्छा ही हुआ कि उन लोंगो ने प्रश्न पूछ ही लिए। उनकी शंकाओं का निवारण हम कर सके। अब अपनी बहु बेटियों कों वे नि:शंक मन से समिति में भेजेगें। मेरी राय में तो स्थान स्थान पर लोगों ने ऐसे प्रश्न पूछने ही चाहिए।"

एक दो दिन वहां रह कर मौसी सातारा और सांगली गईं । वहां उषाताई मोकाशी ने समिति की शाखा शुरू की थी। मिरज में श्रीमती आऊताई दिवेकर , श्रीमती वेणूताई आठवले और दुर्गा रानडे समिति की शाखा चला रही थीं। वहां भी मौसी जी हो आई।

८

रस्सी पर चलना

महाराष्ट्र में अब काफी स्थानों में शाखाएं स्थापित हो चुकी थी। समिति की स्थापना को भी तीन चार वर्ष हो रहे थे। इस बीच मौसी जी तथा डाक्टरजी की मुलाकातें होती रहीं थीं। आने वाली दिक्कतों का मौसी जी बराबर सामना कर रही थीं। आवश्यकता के अनुसार डाक्टरजी से मिलकर उनसे विचार विनिमय भी कर रही थीं। डाक्टर जी भी समिति का कार्य विस्तार देख रहे थे। मौसी जी की हिम्मत देखकर उन्हें विश्वास हो चला था कि संघ की भांति महिलाओं का यह संगठन भी भविष्य में सही आकार लेगा। वर्धा में समिति की शाखा प्रारंभ होने के बाद डाक्टर जी वर्धा की शाखा में आए नहीं थे। वह संयोग १९३९ के दिसंबर माह में आया।

डाक्टर जी स्वास्थ्य लाभ के लिए जनवरी १९४० में कुछ दिनों के लिए बिहार में राजगीर जाने वाले थे। उससे पूर्व जब वे वर्धा आए तो मौसी जी उनसे मिलीं तथा समिति की शाखा में पधारकर सेविकाओं का मार्गदर्शन करने का अनुरोध किया। डाक्टर जी ने स्वीकार किया। बात बहुत महत्त्व की थी कि डाक्टरजी स्वयं समिति की शाखा में मार्गदर्शन करने वाले थे। डाक्टरजी के भाषण का सार था - "बच्चों को निष्क्रिय, निठल्ले न बनने दें।"

अनेक स्थानों में समिति की शाखाएं प्रारंभ हुईं। उन्हें प्रारंभ करने वाली बहनों के साथ मौसी जी ने नाता जोडा था। उन में अधिकांश तो मौसी जी की समवयस्क थीं। इसीलए नाता तुरंत जोडा जाता था। वे काफी हेलमेल और हंसी मजाक से मिलती थीं। सबकी आंतरिक विचारधारा एक ही होने के कारण सब जनें एक दूसरी के साथ तुरंत समरस हो गई थीं। इतनी कि मानों बालासखियां हों। वे आपस में घरेलू नाम से एक दूसरी को पुकारा करतीं। उदाहरण के लिए, मौसी जी माई अफजलपुरकर को बनुताई संबोधित करती थीं।

१९३९ में मुंबई में नायगांव में आज की प्रख्यात लेखिका तथा गायिका श्रीमती योगिनी जोगलेकर ने अहमद सेलर बिल्डिंग में शाखा प्रारंभ की। वे स्वयं पुणें में समिति की शिक्षा लेकर आई थीं। इसलिए नायगांव शाखा एकदम समिति की प्रथानुसार ही प्रारंभ हुई। एक और बहन लीलाताई परलकर (श्रीमती लीलाताई शेरे) ने उनका साथ दिया ओर दादर में दूसरी शाखा प्रारंभ की। मुंबई रहने वाली महिलाओं का कोई न कोई रिश्तेदार पुणें में रहता ही है। अत: प्राय: सबका पुणें आना जाना भी होता है। तदनुसार पुणें हो आई अनेक बहनों ने कुर्ला , ठाणें , डोंबिवली , कल्याण आदि स्थानों में शाखांएं प्रारंभ की। कल्याण की शाखा तो मुंबई के साथ ही यानी १९३९ में ही श्रीमती इंदिराबाई फणसे ने प्रारंभ की थीं। वे भी पुणें जाकर प्रशिक्षित हो आई थीं।

उन दो वर्षों में काफी स्थानों में समिति की शाखाएं प्रारंभ हुई। देश में स्वतंत्रता की हवा चल रही थी। नारी - शिक्षा का अनुपात भी बढ रहा था। शहरों में तो हर घर की लडकियां पाठशाला जा कर मैट्रिक तक पढ लेती थीं। गांवों में महाविद्यालय न होने के कारण ही उनकी शिक्षा वहां तक ही रुक जाती थीं। शिक्षा के कारण लडकियों में सूज्ञता आई थी। वे अधिक समझदार बनीं थीं। देश के गतिविधियों में महिलाएं भी रूचि दिखाने लगी थी। हर महिला को लगने लगा था कि स्वंतत्रता के लिए कुछ करना चाहिए। अत: राष्ट्रीय दृष्टिकोण देने वाली समिति की ओर लडकियां सहज आकर्षित होने लगी थीं। यौवन तो अपने आप को किसी काम में न्यौछावर करने की प्रवृत्ति काही नाम है। इस प्रवृत्ति के कारण ही नव युवतियां खुले मैदान में लाठी तथा छुरिका चलाना, लेजिम खेलना एवं युवा मानस को उत्साह वर्धक खेल सिखाते हुए साथ ही देशकाल की वास्तविकता का भान कराने वाले बौद्धिक देना आदि काम करने वाली समिति की ओर बडी संख्या में आकर्षित होने लगीं थीं। घर के आबाल वृद्ध पुरुषों को भी उन दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बडा आकर्षण था।

गांव गांव से मौसी जी को अनेक पत्र आने लगे थे। सब में बात एक ही लिखी होती थी - " मौसी जी , हमने अपने यहां समिति शुरू की है। हम वर्ग लेने जा रही हैं। किसी शिक्षक को भेजिए।" अथवा , " मौसी जी आप हमारी शाखा देखने पधारीए। आपको देखने सुनने के लिए हम लोग बहुत उत्सुक हैं। कब आ रही हैं , लिखिए। "

समिति फैलाव ले रही थी । किंतु इधर पारिवारिक दायीत्व से कहां छुट्टी थी ? बडी लडकी वत्सला स्नातक हो चुकी था। उसका विवाह कुछ तय सा हो गया था । भावी दामाद नागपुर का और परिचित चोलकर परिवार से था। पढा लिखा था। किंतु व्यावसायिक जहाज बेडे में काम करता था। इसिलिए उसे हमेशा देश विदेश जाना पडता था। उन दिनों

जहाज पर काम करने वाले तथा विदेशों में स्थान स्थान पर जाने वाले व्यक्ति के बारे में काफि गलतफहमियां होती थीं। जो भी हो, इस विवाह में किसी न किसी कारण विलंब हो गया था। आखिर मौसी जी ने मामले में ध्यान दिया और विवाह महूरत पक्का हो गया।

उन्हीं दिनों वर्धा के संघप्रमुख अप्पाजी जोशी की लडकी का विवाह बडी धूमधाम और ठाटबाट से हुआ था। अब केलकर परिवार में भावी पीढी का यह पहला विवाह तय हो गया था। तो लोगों को स्वाभाविकतया लगता कि यह विवाह भी काफी तामझाम के साथ होगा। मौसी जी से किसी ने कहा भी, "लक्ष्मीबाई, आपके घर का यह कार्य अप्पाजी के यहां के कार्य से बढकर होना चाहीए।" मौसी जी ने हंस कर कहा, "मैं किसी के साथ स्पर्धा करना नहीं चाहती। हर कोई अपनी औकात देख कर ही समारोह करेगा। एक ले मुरनी लगाई तो दूसरी गरदनी थोडे ही न पहनेगी?" बात करने वाला बेचारा चुप रह गया।

घर में आर्थिक हालत खस्ता ही थे। अत: मौसी जी ने निर्णय लिया कि विवाह समारोह एकदम सादगी भरा हो। देना लेना आदि कुछ नहीं। उन्होने चोलकर परिवार को साफ सुझाव दिया। चोलकर जी स्वयं प्रगतिशील विचारों के थें। उन्हें बात जंच गई और वत्सला का विवाह एकदम सादगी से वैदिक पद्धतीनुसार संपन्न हुआ। बोलने वालों का क्या, जितने मुंह उतने प्रकार की प्रतिक्रियाएं तो उठेंगी ही। लेकिन मौसी जी ने लोग क्या कहेंगे इसकी परवाह नहीं की। वे जो भी निर्णय करतीं, सोचा समझा होता था। फिर उसमें वह कोई बदल स्वीकार नहीं करती थीं और उस पर अटल बनी रहती थीं। उनके इस गुण का परिचय समिति के विविध कार्यो में सेविकाओं ने पाया था। इस विवाह की खास बात यह थी की डाक्टर हेडगेवार उसमें उपस्थित थे। मौसी जी ने रिवाजों के अनुसार निमंत्रित किया तो था किंतु अपनी अत्याधिक कार्य व्यस्तता से समय निकाल कर वे समारोह में आ जाऐंगे इसका मौसी जी को भरोसा नही था। विवाह के एक दिन पूर्व यानी ४ जानेवारी १९४० को रात बारह बजे डाक्टर जी अपने कुछ सहयोगियो के साथ बारातघर आ पहुँचे। उनकी अगवानी करने में काफी भागदौड मची। मौसी जी के लिए बडा अनुठा अनुभव था, इतना बडा नेता जो उनकी बेटी के ब्याह में उपस्थित हो गया था। मौसीजी ने डॉक्टरजी से कहा "कार्य मे अत्याधिक व्यस्त होने पर भी आप हमारे यहां के इस समारोह में आए, मेरा अहो भाग्य है। मैं बहुत खुश हूं। किंतु आपको जरुर कष्ट हुए होगे।

"भला इसमे भी कैसा कष्ट? बहन के यहा भाई जाए तो उसमे कष्ट कैसा? यहा आना मेरा कर्तव्य ही था।" डॉक्टरजी ने कहा।

इससे पता चलता है कि डॉ. हेडगेवार मौसीजी का कितना आदर करते थे।

१९४० के मई मास मे समिती का प्रशिक्षण वर्ग पुणे में हुआ उसका बहुत अच्छा परिणाम हुआ और पुणे में ही अनेक शाखाए प्रारंभ हो गई। उसके बाद मौसीजी ने पुणे में ही एक बैठक बुलाई, पश्चिम महाराष्ट्र की सभी शाखाओं की सभी कार्यकर्ती बहनो को इस बैठक के लिए बुलाया था। जिजी केतकर के यहां हुई इस बैठक का स्वरुप कुछ प्रशिक्षण वर्गानुसार ही था। प्रात: भावे विद्यालय के प्रांगण मे शाखा लगाने और चलाने का प्रात्यक्षिक होता और बैठक में आई बहनों से शाखा लेने का अभ्यास करवाया जाता था। दोपहर में थोडा बौद्धिक वर्ग होता और फिर बाकी सारा समय शाखाविस्तार के बारे में चर्चा होती थी। इसी बैठक में मौसी जी ने समिति की कार्यप्रणाली सुनिश्चित की, अधिकारी नियुक्त की गई और किस अधिकारी का क्या पदनाम हो यह भी तय किया गया। संपूर्ण नगर की प्रमुख सेविका को संचालिका, तथा उसकी सहायिका को नगर कार्यवाहिका कहना तय हुआ। यह भी निर्णय लिया गया कि अबसे हर स्थान पर वर्ग लेने की बजाए शुरु में केवल पुणे, नागपुर और वर्धा में ही वर्ग लिए जाए। इस बैठक में सोलापुर से माई अफजलपुरकर तथा बाळूताई कंरदीकर, कराड से ताई दिवेकर , सांगली से माई गोडबले , सातारा से उषाताई मोकाशी तथा उनके साथ दो -तीन सेविकाए भी थी। इस बैठक के बाद समिति की कई नई शाखाए प्रारंभ हो गई।

इस बैठक में बहनों ने अपनी दिक्कते आई अनुभव कथन किए। तैयार की गई रपट से एक बात स्पष्ट हुई कि स्थान स्थान पर बहनों में खूब उत्साह था और समिति शाखा प्रारंभ करने की मांग हर जगह से थी। समिति का काम दिन गूना रात चौगुना बढ रहा था। अब इस काम में अधिक अनुशासन की आवश्यक्ता है ; यह सब देख मौसी जी ने सूचना की कि, " शाखा नियमित रुप से छ:माह बराबर चलने के बाद ही उसे ध्वज दिया जाए। बिना ध्वज वाली शाखाओं की संख्या न गिनी जाए। साथ ही उपस्थिती , हिसाब किताब , शाखा स्थान पर हुए कार्यक्रम आदि की रपट केंद्र को भेजी जाय। इसी बैठक में उन्होने घोषणा की कि 'वर्धा' समिति का केंद्र स्थान रहेगा। मौसी जी बडी आग्रही एवम दक्ष थी कि सार्वजनिक कामो मे अव्यवस्था कतई नही चलेगी। सारा काम एकदम बराबर और नेक रहे। गृहकार्य की अचूकता और सुव्यवस्था उन्होने समिति के कार्य में लाई थी। अंत तक मौसीजी इन मामलो में बहुत आग्रही रही। बहियो में हिसाब पूरा लीखने में विलंब उन्होने कभी सहा नहीं। इस मामले में सेविकाओं को कई बार उनसे खरीखरी सुननी पडती थी। अस्तु। इसी बैठक में श्रीमती काकू परांजपे को नागपुर विभाग की ताईजी आपटे को पुणे विभाग कि और ताई दिवेकर को दक्षिण विभाग की प्रमुख नियुक्त किया गया।

इस बैठक के समय ही पुणे में संघ शिक्षा वर्ग चल रहा था। डाक्टर हेडगेवार स्वास्थ खराब होते हुए भी उसमें उपस्थित थे। डॉक्टरजी के आगमन का समाचार मिलते ही मौसीजी उनसे वर्ग में गई। कार्यविस्तार तथा स्वास्थ्य के बारे में चर्चा हुई। सांगली के श्री. काशिनाथपंत लिमये भी उस समय उपस्थित थे। 'संगठन' विषय पर उनका उसी समय बौध्दिक था। डॉक्टरजी की हार्दिक इच्छा थी की अधिकारी व्यक्ती के विचार मौसीजी भी सुने। अत: उन्होने लिमये जी के बौद्धिक के लिए मौसी जी को रुक जाने के लिए कहा। किन्तु समय मौसीजी के लिए असुविधाजनक था क्यो की उसी समय समिति की बैठक भी जारी थी। मौसी जी ने अपनी कठिनाई डाक्टर जी को बताई। इतने बडे नेता की बात न मानने में उन्हें जरा भी संकोच नही हुआ। अपना कार्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है उसका भान उन्होने रखा। इसीलिए मौसी जी विनम्र दृढता से डॉक्टर जी को अपनी असमर्थता बता सकी। यही निती उन्होने सदैव रखी। समिति के कार्य को उन्होने हमेशा प्राथमिकता दी। मौसीजी की इस कठिनाई को डॉक्टर जी ने भी समझ लिया और मौसी जी की सुविधा के लिए उन्होने काशिनाथपंत लिमये के बौद्धिक वर्ग का समय बदल दिया। इसमें उनका उद्देश यही था कि मौसीजी बौद्धिक चिंतन में कही भी कम दिखाई न दे। मौसी जी जैसे रत्न को डॉक्टर जी जैसा जोहरी बराबर तराशता जा रहा था और रत्न भी ऐसा था कि अपनी आभा को चारो ओर फैला रहा था। मौसी जी और डॉक्टर जी की यही अंतिम भेट रही। डाक्टर जी ने मौसी जी से काशीनाथपंत लिमये का परिचय करा दिया। आगे चल कर डाक्टरजी के बाद इन्ही श्री. लिमये जी ने मौसी जी के समिति के कार्य मे पूरे अपनत्व से सहायता की।

पुणे की बैठक संपन्न हुई और मौसी जी वर्धा लौट आई। नागपुर के वर्ग से लौटने वाले स्वयंसेवको से मौसी जी को ज्ञात हुआ कि डॉक्टर जी वर्ग के समारोप के लिए उपस्थित नही रह पाये। एक अनामिक आशंका से वे भयभीत हो उठे। उन दिनो घर घर मे ना तो टेलिफोन की सुविधा थी और ना ही नागपुर जाना आज जितना सहज था। अत: नागपुर से जब कोई स्वयंसेवक आता तभी डाक्टरजी के स्वास्थ के बारे में कुछ पता चलता।

२९ जून १९४० को सुबह साढे नौ बजे नेताजी सुभाष चंद्र बोस वर्धा के दुर्गा चित्रपटगृह में आयोजित आम सभा को संबोधित करने वाले थे। ऐसे भाषण सुनने का अवसर मौसी जी कभी नही छोडती थी। अपने बेटे दिनकर के साथ वे उस सभा में जा पहुंची। हालांकि भाषण ९-३० बजे था लेकिन ८-३० बजेही पूरा चित्रपटगृह खचाखच भर चुका था। साढे नऊ बज चुके थे किंतु सुभाषबाबू का कोई पता नहीं था। दस बज गए, फिर भी वे नहीं आए। लोग चुलबुलाने लगे। इतने में सुभाषबाबू सभागृहमें पहुंचें। आहिस्ता आहिस्ता बोझिल चाल

से वे मंच पर आए और डा. हेडगेवार जी के निधन की जानलेवा खबर लोंगो को दी। सारी सभा शोकसागर में डुब गई। हादसा सभी को जबरदस्त सदमा पहुंचा गया। वैसे तो सुभाषबाबू डाक्टर जी से मिलने और कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों में उनकी राय लेने आए थे। किंतु दुर्भाग्य से इन दो महापुरुषों की भेंट ही न हो पाई। काश वह हो पाती तो शायद सारा इतिहास ही बदल जाता। इसी सभा में डाक्टर जी को भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित की गई। सुभाषबाबू ने भाषण दिया लेकिन किसी का ध्यान भाषण में नहीं था।

मौसी जी बहुत बेचैन थीं। बडे भाई की छत्र छाया यूं यकायक छिन गई थी। अपने बेटों के साथ वे दोपहर की गाडी से नागपुर के लिए रवाना हों गई। सारा नागपुर शहर दुख के साए में चूर था।

डाक्टर जी का पार्थिव देह नागपुर के संघचालक श्रीमंत बाबा साहब घटाटे के घर पर रखा था। अनगिनत संघ स्वयंसेवक डाक्टर जी के अंतिम दर्शन के लिए इकट्ठा हुए थे। दुख का सैलाब शेके नहीं सकता था। अपने मार्गदर्शक और समिति के सच्चे हितैशी का अंतिम दर्शन करते समय मौसी जी भी रो पडीं। इस हितचिंतक के जाने से अब समिति को पुरी तरह अपने बलबूते पर खडा रहना था।

बच्चे बडे हो रहे थे। मौसी जी का बडा परिवार था। वे, उनके बच्चे ,उमा काकू, साथ ही वेणूताई कलमकर , कालिंदीताई पाटणकर और उनकी लडकियां सब इकट्ठा रहती थीं। उमा काकू घर की बागडोर सक्षम रुप से संभाले थीं। कालिंदीताई पाटणकर और वेणूताई बच्चों की पढाई का खयाल रखती थी और साथ ही मौसी जी को समय समय पर समिति के कामकाज में सहायता भी करतीं थीं। समिति के बारे में घर में सैद्धांतिक चर्चाएं होती रहती थीं। घर में महिलाओं का राज था , पर सभी निर्णय दृढता से लिए जाते । समिति का दर्शन आकार ले रहा था। लक्ष्य और नीतियां स्पष्ट हो रही थीं।

पुणें की बैठक के बाद समिति के तौर तरीकों में काफी सुसूत्रता आ गई थी। १९३९ में दूसरा महायुध्द प्रारंभ हो चुका था।अपनी इच्छा के विरुद्ध भारत भी इस युद्ध में खींचा गया था। स्वतंत्रता प्रेम की एक जबरदस्त लहर पूरे देश में उमड पडी थीं। स्वतंत्रता की उमंग से युवा मानस दीवाना हो गया था। कुछ कर गुजरने की चाह किसी को चैन से बैठने नहीं देती थी। अपनी भावनाओं को मूर्त रुप देने वाला एक मात्र आशास्थान समिति है, यह अनेक युवतियों का विश्वास था। आवश्यक हुआ तो अपने सर्वस्व की आहुति देने का विचार कईयों ने पक्का कर लिया था। इसी कारण स्वयं पहल कर उन्होंने स्थान स्थान पर समिति की शाखाएं शुरु की थी।

इंदौर की शाखा मध्यप्रदेश में समिति की पहली शाखा थी। रमाबाई पटवर्धन ने अपनी बहनों के साथ इसकी स्थापना की और मौसी जी को पत्र द्वारा सूचित भी किया। उसी समय अकोला में समिति का काम देखने वाली श्रीमती सिंधुताई फाटक सन १९४२ में अपने पति के तबादले के कारण इंदौर पहुंची। इस कुशल संगठन कर्त्री के मार्गदर्शन का लाभ इंदौर की सेविकाओं को मिला। इंदौर के साथ साथ मध्यप्रदेश के जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग जैसे शहरों में भी समिति का कार्य प्रारंभ हुआ। उधर कर्नाटक और बेलगांव में भी समिति की शाखाएं शुरु हो गई। विवाहोपरांत भिन्न भिन्न स्थानों पर ससूराल जाने वाली सेविकाओं ने वहां शाखाएं शुरु कीं। एक बार किसी ने मौसी से पूछा, "क्या आप में कोई प्रचारिका है?" तो मौसी ने कहां, ये युवतियां विवाह के बाद ससुराल में जहां जाती हैं वहां वे ही हमारी प्रचारिका हो जाती है।" वाकई, शुरु शुरु में ससुराल के गांवों में इन नवविवाहिताओं ने ही शाखाएं शुरु की।

महाराष्ट्र के लगभग सभी जिलों में समिति की शाखाएं शुरु हो चुकी थीं। १९४१ से १९४३ के तीन वर्षो में पुणें में तीन बार बैठकें हुई। इन बैठकों में सब स्थानों से सेविकांए आती थी। युवतियों का सहभाग अधिक रहता। इस गर्म खून ने, संघ बंधुओं की भांति अविवाहीत रह कर आजीवन समिति का कार्य करने की इच्छा मौसी जी के पास व्यक्त की। बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। युवतियों ने अपने विचार बडी दृढता और जोश से रखे। इस मुद्दे पर काफी चर्चा हुई। लेकिन मौसी जी का निर्णय अंतिम था। उन्होने सोच समझकर उन्हें उत्तर दिया, " आपकी बात मैं समझती हूं। लेकिन जल्दबाजी में कोई भी निर्णय लेना ठीक नहीं। हम जिस समाज में रहते हैं उस समाज की मानसिकता का भी हमें ख्याल करना चाहिए। समिति के कार्य का प्रचार आवश्यक है, नितांत आवश्यक है। किंतु आप ही सोचिए, मैं आपको अविवाहीत रह कर समिति का कार्य करने के लिए प्रेरीत करुं भी, तो जिनके सहयोग एवं सहायता से हम कार्य करने वाली हैं वह अभिभावक वर्ग क्या हमारा साथ देगा? मेरा भरोसा कर जो लोग अपनी बेटियों को समिति में भेजते हैं वे भी क्या तब उन्हें भेजेगे? लडकियां अविवाहीत रह कर कुछ कार्य करें यह कल्पना कम से कम आज तो हमारा समाज स्वीकार नहीं करेगा। अत: मैं सरेआम सबको आजीवन अविवाहीत रह कर समिति का कार्य करने के लिए नहीं कहूंगी। किंतु इसके भी दो विकल्प है। एक यह कि कुछ वर्ष - कम से कम १ से ५ वर्ष तक सेविकाएं समिति के कार्य के लिए पूरा समय दें। दूसरा यह कि विशिष्ट परिस्थिति में एकाध सेविका पूर्ण समय प्रचारिका बनने का निर्णय करती है तो उसमें कोई बाधा न बने।"

इसी बैठक में एक अन्य महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया। प्रारंभ में शहर की किसी संभ्रांत प्रौढा को शहर संचालिका नियुक्त किया जाता था। किंतु इसमें आनेवाली कठिनाईयां युवा सेविकाओं ने मौसी जी के सम्मुख रखीं उन्होंने कहा, " मौसी जी, ये कभी कभी ही शाखा में आती है। इसलिए कार्यक्रमों तथा शाखास्थानों की दिक्कतों का आकलन वे ठीक से नहीं कर पातीं। उनकी आज्ञा हमें सर आंखों पर रखनी होती हैं और यही बात कई बार कठिनाईयों में डालती है।"

मौसी जी ने शांति से सब कुछ सुन लेने के बाद कहा, " अरी तुम लोग इन प्रौढाओं की पारिवारिक कठिनाईयों को जरा समझ तो लो। हां यह सच है कि कोई न कोई उपाय ढूंढना तो पडेगा।" मौसी जी जानती थी कि सर्वाधिकार युवतियों को देना ठीक नही था। जवानी में जोश तो खूब होता है किंतु उस जोश में होश होता ही है सो बात नहीं। उस जोश पर अंकुश रखने के लिए, सुयोग्य निर्णय करने, संयमी तथा अनुभवी मार्गदर्शन करने प्रौढ सेविकाओं की आवश्यकता है। अत: मौसी जी ने सर्वसम्मती से निर्णय किया कि अब से संचालिका का पद ही नहीं रहेगा और शहर के लिए एक कार्यवाहिका तथा एक सह शहर कार्यवाहिका रहेगी। ताकी कठिनाई आने पर दो में से एक तो शाखा में उपस्थित रहेगी। दोनों का चयन ऐसे हो कि यथा संभव दोनो प्रतिदिन शाखा में आने के लिए समय दे सकें।

इस प्रकार, समिति की स्थापना के प्रारंभ से मौसी जी को अनेक कठिनाईयों और समस्याओं से निरंतर जूझना पडता था। किंतु वे हर समस्या की बडी चतुराई से सुलझा लेती थी। सुयोग्य निर्णय और अपनी बात कहने की प्रभावी शैली के कारण उनकी आज्ञा का पालन सभी मन से किया करते थे।

१९४१ के मई मास में मौसी जी किसी कारण वश सोलापुर गईं थीं। तब उन्होंने श्रीमती काशीताई से कहा, " हम पंढरपुर के काफी पास हैं, चलिए पंढरपुर चलते हैं।" काशीताई ने चार महिने पूर्व जिले की रपट मौसी जी को भेजी थी और उसमें पंढरपुर में शाखा न होने की ओर ध्यान दिलाया था। मौसी जी यह बात भूली नहीं थीं। उस समय काशीताई से पंढरपुर चलने की बात उन्होंने छेडी तो विठ्ठल भगवान के दर्शन के साथ साथ वहां शाखा शुरु करने की भी उन्होंने मन ही मन ठान ली थी। किंतु काशीताई को इसका पता नहीं था। उन्होंने कहा, " लेकिन मौसी जी पंढरपुर में तो हमारी एक भी शाखा नही है।" मौसी जी हंस कर बोली, " इसीलिए तो वहां जाना है।" पंढरपुर पहुंचते ही पहले मौसी जी ने विठ्ठल भगवान के दर्शन किए। तत्पश्चात संघ स्वयंसेवक श्री पत्की से वे मिलीं। मौसी जी के साथ साथ तब सिंधु नावलेकर (श्री. ग. वि. केतकर की लडकी) और सोलापुर की कुछ अन्य युवा सेविकाएं भी थीं। काशीताई पंढरपुर की एक वकील श्री.

कुलकर्णी से परिचित थी। उनकी पत्नी के नाम काशीताईने पत्र भेजकर महिलाओं की एक बैठक लेने का अनुरोध किया था। वहां के आपटे विद्यालय में बैठक आयोजित हुई। मौसी जी ने समिती की जानकारी दी। उनके प्रत्येक शब्द से व्यक्त होने वाली हार्दिकता से उपस्थित महिलाएं प्रभावित हुई और कु. इंदु सालवेकर, श्रीमती गीता तथा सत्यवती लिमये, श्रीमती कुलकर्णी (अलिबाग) की जिम्मेदारी पर पंढरपुर शाखा का शुभारंभ हुआ। मौसी जी को बडी प्रसन्नता हुई।

१९४१ में बंबई का कार्य अधिक गतिशील हुआ। बकुलताई विवाहोपरांत बंबई आईं। मौसी जी की कार्य पद्धति का एक नमुना यहां नजर आता है। बकुलताई के बंबई आते ही आठ दिन के अंदर ही श्रीमती लीलाताई शेरे उन्हें ढुंढती हुई उनके घर पहुंची। बकुलताई हैरान थी कि मेरे आने की खबर इन्हें कैसे मिली ? उनकी इस हैरानी को देखकर लीलाताई ने कहां, " पुणे की शाखा ने आपके बंबई आगमन की सुचना हमें दी थी। इसीलिए मैं आई हूँ। लीलाताई ने समय और स्थान की जानकारी दी। इस प्रकार शाखाओं की कडियों को हर जगह जोडने की सीख मौसी जी दिया करती थी। जैसे ही कोई सेविका विवाह के बाद ससुराल के गांव पहुंचे, उस गांव की सेविकाओं को तुरंत इस बात की सूचना मिलनी चाहिए, ऐसा मौसी जी का आग्रह रहा करता था। बकुलताई के काम की फुर्सि, उनका कृतीत्व ओर जोश को मौसी जी कूत चूकी थी। अतः उन्हें बंबई की कार्यवाहिका नियुक्त किया। बकुलताई ने समिति कार्य का बहुत विस्तार किया। बबंई ने एक उत्साही सेविका पाई।

विवाहोपरांत नए अनजाने शहरों में जानेवाली नवपरिणाताओं के लिए वहां की सेविकाएं कितना बडा आधार बन जाती थी। लगता, मानों वे मायके की कोई प्राणप्रिय सगी या सखी सहेलियां हो। मौसी जी के कारण इन सेविकाओं में अत्याधिक आत्मीयता और हार्दिकता पैदा हो जाया करती थी। मेरी तरह अनेकों सेविकाओं का यही अनुभव रहा है। मौसी जी का दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं था, उसमें व्यवहार और भावनाओं का भी समन्वय होता था।

नासिक में भी १९४१ में समिति की शाखा का शुभारंभ हुआ। इस काम में श्रीमती जानकी बाई मोडक, इंदिराबाई मेंहदले आदि महिलाओं ने पहल की और मौसी जी को दो और अपनी ही आयुकी प्राणप्रिय सहेलियां मिलीं। मोडक भाभी की सहायता से मौसी जी ने उसी वर्ष उस विभाग का दौरा किया तथा मालेगांव, अंमलनेर, संगमनेर, मनमाड, भुसावल में भी समिति के कार्य का शुभारंभ किया। घर गृहस्थी वाली एक महिला गांव गांव जा कर प्रचार कार्य में जुटी थी - अविरत, अनथक! अन्य लागों में इसी बात का बडा कुतूहल और आश्चर्य बना रहता था।

मौसी जी की आयुवाली सभी बहनों ने अंत तक उनका साथ निभाया और आज भी कार्यरत हैं। १९४३ में मौसी जी को श्रद्धा और निस्वार्थ रुप से कार्य करने वाली एक अन्य सेविका मिली। नाम था मा. ताई अंबर्डेकर जो उज्जैन की रहने वाली थीं। उसी वर्ष कुमुद वाकणकर (श्रीमती फलणीकर) ने उज्जैन में शाखा शुरु की थी। उनके भाई हरिभाऊ वाकणकर संघ के प्रचारक थे। घर का वातावरण भी संघमय था। वे स्वयं संघ शाखा देखती आयी थी। इन सब बातों से प्रभावित होकर बारह तेरह साल की इस लडकी ने कन्याशाला केमैदान पर 'राष्ट्रीय स्वयंसेविका संघ' के नाम से लडकियों की संघ शाखा शुरु की। संघ स्वयंसेवक श्री. आपटे शास्त्री का इस महिला संघ की ओर ध्यान गया। इन लडकीयों को बुलाकर उन्होने मौसी जी और समिति के कार्य से उन्हें अवगत कराया । इतना ही नहीं, मौसी जी के नाम एक पत्र भी दिया।

मौसी जी ने उस छोटी सी लडकी को बहुत सराहा। तुरंत उसे पत्र भेजा और साथ ही प्रार्थना सहित सभी आवश्यक जानकारी दी। ताई अंबर्डेकर को इस शाखा की जानकारी मिली तो वे वहां आने लगीं। उनके घर के वातावरण में कडा अनुशासन था, लेकिन था वह हिंदुत्ववादी। ताई जी में काम की जबरदस्त लगन थी। इसी कारण वे समिति के कार्य की ओर आकृष्ट हुईं। उन्हें इस संगठन पर पूरा विश्वास था। वे काम करने तो लगीं, किंतु अपने काम से संतुष्ट नहीं थीं। उन दिनों कम पढी लिखी महिलाओं में एक हीन भावना हमेशा रहती कि वे सुशिक्षित नहीं है। ताई जी पर भी यही भावना हावी रहती थी। अत: उन्हें बार -बार लगता कि उनका काम तो योग्य है किंतु शायद वह उसे करने के योग्य नही। लोग उन्हें और उनके काम की प्रशंसा तो करते थे। इस बात से प्रत्यक्ष रुप से उसमें सहभागी होने में हिचकिचाते थे। सरल मना ताई जी की प्रशंसा तो करते थे। मना ताई जी दुविधा में पड जाती थीं। ये बातें मौसी जी से कैसे कहीं जाएं ? आखिर किसी दुसरी की बता कर उन्होने अपनी उलझन मौसी जी को पत्र में लिखी। उन्होने प्रश्न किया था कि, '' समिति और अपने बीच किस प्रकार के संबंध होने चाहिए ? ''

मौसी जी ने समिति और सेविका के संबंधों को समझाते हुए विस्तार से एक पत्र में लिखा कि, ''समिति से हमारा संबंध मां बेटी-की तरह होना चाहिए।'' बहुत गहरा अर्थ छिपा था इस एक वाक्य में! ताई अंबर्डेकर को संबोधित यह उत्तर वास्तव में सभी सेविकाओं के लिए था। संतान को जन्म देते ही उसके साथ मां का रिश्ता एक अटूट बंधन में बँध जाता है । संतान निराश कर दे फिर भी उसके प्रति मां की ममता कभी कम नहीं होती। उल्टे अपनी संतान को सुधारना, उसमें परिवर्तन लाना वह अपना कर्तव्य समझती है। इसी भावना

एवं दृष्टी से समिति की ओर देखा जाए तो निराशा नहीं होगी और हर कठिनाई से निकलने का मार्ग अवश्य दिखाई देगा।'' मौसी जी का ऐसा सटीक मार्गदर्शन हमेशा ही धीरज बँधाता था।

तत्पश्चात ताई अंबर्डेकर लगभग पूरे समय की सेविका बनीं। ग्वालियर रियासत के उन्होंने कई दौरे किए और जगह जगह शाखाएं शुरु कीं। मध्य प्रदेश की कार्यवाहिका के रुप में मौसी जी ने ताई को नियुक्त किया। ताई जी हिसाब किताब के काम में एकदम चुस्त होती थीं। मौसी जी की गुणग्राहकता ने इस गुण को अचूक परखा था। आगे चलकर समिति के अखिल भारतीय निधि के हिसाब किताब की जिम्मेदारी ताई जी को सौंपी गई। ताई जी ने उसे १९८४ तक बडी क्षमता के साथ स्वेच्छा से निभाया। मौसी जी की व्यक्तियों की परख अचूक होती थी।

समिति को कार्य करते लगभग सात साल हो चुके थे। समिति के ध्येय और सिद्धांतों के बारे में कुसुमताई साठे, वेणुताई कलमकर आदि से चर्चा कर मौसी जी ने निर्णय लिया कि समिति का ध्येय होगा - शीलवान, बलवान, और चरित्रवान, हिंदु महिलाओं को संगठीत करना। सिद्धांत होंगे - (१) हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व, (२) भगवा ध्वज ही राष्ट्रीय ध्वज और (३) एकचालिकानुवर्तित्व। १९७० के बाद कार्य का सुत्र बना ''नारी ही राष्ट्र की आधार शक्ति है।''

मौसी जी का आग्रह रहता था कि शाखा और शिबिरों में इसी ध्येय और सिद्धान्तो पर बौद्धिक वर्ग हो अथवा चर्चा की जाए। सेविकाएं इन विषयों का सही अध्ययन, चिंतन तथा मनन करे इसपर वे हमेशा बल देती थीं। वे स्वयं अपनी कथनी के अनुसार पूरी श्रद्धा से आचरण भी करती थी। भगवा ध्वज ही राष्ट्रीय ध्वज है इस विषय को समझने के लिए उन्होने सारे ऐतिहासिक संदर्भ छान मारे। वेदकाल से आज तक इस ध्वज की परंपरा को ढूंढने के लिए कई पुस्तके पढीं। पं. सातवलेकर जी से इस बारें में पत्राचार किया। और लोगों के मन में यह बात गहरी उतारी कि भगवा ध्वज ही हमारा राष्ट्रीय ध्वज है, राष्ट्रध्वज और धर्म ध्वज है। कई महिलाओं को उनके इस अध्ययन का उपयोग हुआ। एक बार मैंने मौसी जी से कहा कि इसी विषय को मैंने एक प्रकल्प के लिए चुना हैं। मेरे कहने की देर थी कि उन्होने धडाधड अनेक पुस्तकों और मासिक पत्र -पत्रिकाओं की लंबी सूची मुझे सुना दी। उनका यह ज्ञान और स्मरणशक्ती देख मैं दंग रह गई। कोई भी विषय स्वयम समझे बिना और अध्ययन किए बिना, लोगों के सामने रखना उनकी आदत नहीं थी। गप्पे हांकना उन्हें पसंद नहीं था।

प्रशिक्षण देतीं और कुसुमताई बौद्धिक की बागडोर संभालती थीं। संघ शिक्षकों के साथ ही वहीं की पूर्व प्रशिक्षित सेविकाओं ने लाठी काठी और छुरिका चलाने का प्रशिक्षण देने में बकुलताई और विमलताई की सहायता की। आत्मरक्षा के लिए उपयुक्त लाठी काठी का प्रशिक्षण वहां के लोगों में कुतूहल का विषय था। यहां का समाज देख रहा था ; इस देश की जागृत महिला का रुप । वर्ग बहुत अच्छी तरह संपन्न हुआ। उपस्थित सेविकाएं युवा थीं। कुछ करने की उमंग उनमें ठाठें मार रही थी। वर्ग का प्रकट समापन समारोह कवायत आदि के प्रदर्शन के साथ भलीभांति संपन्न हुआ।

कराची के बाद बारी थी भावनगर के वर्ग की। इस वर्ग के लिए दो सेविकाएं, विमलताई वर्तक और श्रीमती साठे भावनगर गईं थीं। वहां की शाखा जिजी काणें ने प्रारंभ की थी। मौसी जी को स्थान स्थान पर एक से बढकर एक समझदार, जानकार सुबुद्ध और समवयस्क बहनों का अनमोल साथ मिलता गया। उन्होने तन, मन, धन से बडी ही निस्वार्थ भावना से मौसी जी का अंत तक साथ निभाया। इन्हीं में से एक थीं जिजी काणे। गुजरात में समिति के कार्य की नींव उन्हीने डाली थी। भावनगर की शाखा में उनकी लडकियां और अनकी सहेलियां सबसे पहले आने लगीं। शाखा से संबंधित जानकारी उन्होने मौसी जी से पत्र व्दारा मंगवाई और तदनुसार शाखाओं में निरंतर वृद्धि की। भावनगर, बडौदा, राजकोट, अहमदाबाद आदि प्रमुख नगरों में जिजी के प्रेरणा से शाखाएं शुरु हुईं और गुजरात का पहला वर्ग १९४४ में भावनगर में आयोजित किया गया।

कराची वर्ग के बाद श्रीमती बकुलताई मौसी जी की सूचनानुसार पन्द्रह दिन वहां रुकी थीं। वहां की शाखाओं पर वे गईं और वहां की राजनीतिक परिस्थिति का निरिक्षण किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंची कि कराची में चुनाव की चहल पहल पूरे जोरों पर है। मुस्लिम लीग का भारी प्रभाव है । विभाजन के ढोल पीटे जा रहे थे लेकिन हिंदू समाज को आने वाली भीषण हत्याकांड की जरा भी भनक नहीं थी। उन्हें लगता था कि विभाजन के बाद भी यहीं रह सकेंगे और अपनी सम्पति तथा मातृभूमि छोड कर जाने की नौबत नहीं आएगी। वास्तविकता से सभी अनजान और बेखबर थे। इस सारी परिस्थिति की जानकारी मौसी जी को बकुलताई ने पहुंचाई। मौसी जी ने मन में ठान ली कि सिंध में संगठन और प्रभावी करना होगा। यही समय की मांग थी।

९

कुशल नेतृत्व

उस वर्ष मई में अलग अलग प्रांतों से आईं प्रमुख सेविकाओं की बैठक नागपुर की भोसला वेदशाला में हुई। इस बैठक में सर्वसुश्री ताई आपटे, ताई दिवेकर, बकुलताई देवकुले, काकू परांजपे, कुसुमताई साठे, प्रमिलाताई मुंजे आदि प्रमुख सेविकाएं उपस्थित थीं। समिति का विस्तार तब तक बहुत हो चुका था। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, सिंध, मध्यप्रदेश आदि प्रांतो में भी शाखाएं प्रारंभ हो चुकी थी। अत: इन सभी शाखा स्थानों पर अच्छा अनुशासन और एकसूत्रता लाने की बहुत आवश्यक्ता थी। इस दृष्टी से यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी।

इस बैठक में कुछ सेविकाओं का कहना था कि, 'समिति के बढते विस्तार को देखते हुए उसे अपने आप संभालने की हिम्मत और साहस क्या महिलाएं जुटा पायेंगी ? क्यों न समिति को संघ में विलिन कर दिया जाए ?'' किंतु इस विचार का किसी ने विशेष समर्थन नहीं किया। मौसी जी ने इसका विरोध किया तथा बकुलताई आदि ने मौसी जी का पूरा समर्थन किया। यूं तो इस विषय पर यहीं परदा पड गया था; फिर भी किन्हीं मान्यवरों ने संघ और समिति का संचालक एक ही व्यक्ति हो यह प्रस्ताव रख ही दिया। किंतु वास्तव में कोई भी इस बात पर सहमत नहीं हुआ। मौसी जी की एक वरिष्ठ सहकारी और नागपुर विभाग प्रमुख काकू परांजपे की राय थी कि समिति को रचनात्मक कार्यो में अधिक ध्यान देना चाहिए। अंतत:, समिति कार्यालय अधिक कार्यक्षम बने, रक्षाबंधन का संदेश इसी कार्यालय से भेजा जाए, तथा हिसाब किताब और बैठकों के विवरणादि को अधिक वरियता देते हुए यह बैठक संपन्न हुई। और समिति के कार्य को एक अलग ही मोड देने वाली बात समाप्त हो गई।

इस बैठक से पूर्व यानी सन १९४२ के आंदोलन के समय मौसी जी एक बहुत ही बडी दुविधा में उलझ गईं थीं। तब महात्मा गांधी ने 'भारत छोडो' का नारा बुलंद किया

था। बंबई के गवालियां टैंक मैदान पर ८ अगस्त १९४२ को बडी सभा हुई थी। जिसमें काँग्रेस ने सत्याग्रह की घोषणा की थी। महात्मा गांधी ने पूरे देश को संबोधित करते हुए अपने भाषण में कहा था कि, '' कल शायद हम सब कारागृह में होंगे। नेतृत्व करने के लिए कोई भी न बचेगा। अत: प्रत्येक ग्रामवासी को स्वयं नेता बन कर इस आंदोलन को जारी रखना होगा। अब स्वतंत्रता पाए बिना पीछे हटना नहीं है। हमारे लिए यह अंतिम अक्सर है।'' यह भाषण और स्थान स्थान पर कांग्रेस के अन्य नेताओं के भाषण देश के सभी स्त्री पुरुषों को बहुत प्रभावित कर गए। सारा समाज, विशेषत: युवा वर्ग इस स्वतंत्रता संग्राम में कूदने को बहुत उत्सुक था। स्वतंत्रता के सिद्धांत की सीख देने वाली, देश भक्ति की भावना जागृत करने वाली 'राष्ट्र सेविका समिति' की युवा सेविकाओं का गर्म खून उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रहा था। उन्हें भी इस स्वतंत्रता संग्राम में सहभागी होने की इच्छा हो रही थी। स्थान स्थान से मौसी जी को इस बारे में पूछा जाने लगा। '' मौसी जी क्या हम भी इस आंदोलन में शामिल होंगे? हमें क्या करना होगा?'' मौसी जी ने अपनी सहयोगी बहनों विशेषत: माई नागले, काकू परांजपे, कलमलकर आदि से विचार विनिमय किया। मौसी जी ने मन ही मन कुछ निश्चय तो कर लिया था। परंतु अपनी सहयोगी बहनों के विचार जाने बिना किसी निर्णय तक पहुंचना उन्हें उचित नहीं लग रहा था। इसीलिए इस मुद्दे पर उनसे मौसी जी ने बात छेडी थी। चर्चा के बाद तय हुआ कि समिति प्रत्यक्ष रुप से इस आंदोलन में नहीं उतरेगी क्योंकि एक तो समिति की इतनी ताकद नहीं थी कि वह स्वतंत्र रुप से इस संग्राम में शामिल हो सके। समिति की स्थापना को अभी पांच छह वर्ष ही तो हुए थे। नींव अभी कमजोर थी। ऐसी अपरिपक्व स्थिति में समिति का अपना अलग अलग पहचान बनाकर संग्राम में शामिल होना सर्वथा अनुचित होगा ऐसी मौसी जी की धारणा थी। और दुसरे अलग अलग स्थानों पर शुरु हुई शाखाओं में आनेवाली सेविकाओं के हौसले कितने बुंलद हैं, मौसी जी ने आजमाए नहीं थे। मौसी जी के स्वभाव की विशेषता थी। कि वह जो भी काम शुरु करतीं, उसे पुरा कर के ही सांस लेती। अत: समिति भाग नहीं लेगी ऐसा निर्णय लिया गया किंतु स्थान स्थान के अधिकारी वर्ग को सूचना दी गई कि, '' समिति अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ इस आंदोलन में नहीं उतरेगी, किंतु व्यक्तिगत रुप से कोई इस में भाग लेना चाहे तो उसे लेने दें, रोके नहीं।''

तदनुसार कई इच्छुक सेविकाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया, जैसे प्रसिद्ध लेखिका मृणालिनी देसाई (कु. धनेश्वर)। पुणे शाखा की यह सेविका अत्यंत मेघावी और देश प्रेम की दीवानी थी। प्रत्यक्ष रुप से इस लडाई में उतरी और उसे कारावास भी भोगना पडा। मौसी जी को अपनी इस सेविका पर बहुत गर्व था।

सन १९४२ के इस आंदोलन में सारा देश सुलग उठा था। अनेक लोग पकडे जा रहे थे। कुछ कारावास भोग रहे थे तो कुछ भूमिगत हो रहे थे। इन भूमिगत देशभक्तों को भी समिति की सेविकाएं सहायता किया करतीं थीं। इस आंदोलन से संबंधित मौसी जी का निर्णय सचमुच बहुत दूरदर्शिता वाला सिद्ध हुआ। सेविकाओं के दिलों में जगी स्वतंत्रता प्राप्ति की ज्योति उन्होने बुझने नहीं दी। जिस सूझ बुझ का परिचय देते हुए मौसी जी ने यह प्रश्न सुलझाया, वाकई प्रशंसनीय है। अपने अधिकार के बल बुते पर यदि मौसी जी सेविकाओं से कहतीं कि इस आंदोलन से पूर्णत: अलिप्त रहें, या इस आंदोलन से समिति का कोई संबंध नहीं, तो परिणाम विपरीत होते। मौसी जी और समिति के प्रति भ्रांतियां पैदा हो सकती थीं। किंतु उसे मौसी जी ने बडी कुशलता से टाल दिया।

विश्वयुद्ध के दिन थे। भारतीय फौजें अंग्रेजी हुकमत के लिए स्थान स्थान पर लड रही थीं। शत्रुओं ने अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। युरोप की स्थिति भी पेंचीदा हो रही थी। और इधर भारत में स्वतंत्रता - आंदोलन जोरों पर थे। लडाई शुरु होते ही स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने हिंदी तरुणों को, सेना में भरती हो जाओ ऐसा आदेश दिया था। उनके इस आदेश की कुछ लोगों ने निंदा की थी। लेकिन सुभाष चंद्र बोस ने जब जपान में कैद हिंदी सैनिकों की आजाद हिंद सेना बनाई तो इन लोगों की आंखे खुल गई। रास बिहारी बसू तो इस दृष्टीसे पहले से ही प्रयत्नशील थे। १५ फरवरी १९४२ को सिंगापुर पर जपान ने अधिकार कर लिया। बीस हजार भारतीय सैनिक उनके हाथ लगे। जपान से बातचीत कर रास बिहारी जी ने इन हिंदी जवानों के नेतृत्व का दायित्व सुभाष बाबू पर सौंपा। आजाद हिंद सेना के पराक्रम के समाचार भारत पहुंच रहे थे। मौसी जी नियमित रुप से उन्हें पढा करतीं।इस बारे में अपने लडकों से भी विचार विनिमय करती थीं। मौसी जी के मन में इस घटना ने बडी उत्सुकता जगाई थी। तत्कालीन राजनीति का वे बारीकी से अध्ययन कर रही थीं। शाखा में समाचार पत्रों का नियमित पठन हो ऐसा उनका हमेशा आग्रह रहता था। एक बार एक सेविका ने पूछा - "मौसी जी, समिति का राजनिती से जब कोई संबंध नहीं, तो समाचार पत्र पढने का इतना आग्रह क्यों ?"

मौसी जी ने कहा, "राजनीती की दौड में हमें नहीं उतरना क्योंकि स्वतंत्र भारत में ना तो हमें किसी सत्ता की लालसा है और ना ही किसी कुर्सी की चाह। किंतु हम जिस वर्तमान में जी रहे हैं उसकी पुरी जानकारी हमे होनीही चाहिए। अंधेरे में जीने से बात नहीं बनेगी। भविष्य की सोचने वाले वर्तमान को भुला नहीं सकते।"

लडाई के इस दौर में रेल गाडियों में बहुत भीड हुआ करती थी। लेकिन मौसी जी के दौरे नियमित रुप चलते रहते। इधर घर में उनके बच्चे अब बडे हो रहे थे। बडा बेटा

मनोहर उर्फ बापू कालेज की पढाई के लिए वर्धा छोड नागपुर रहने लगा था। दुसरा पद्माकर वर्धा शहर की संघ शाखा का मुख्य शिक्षक था तो दिनकर छुट्टियों में संघ विस्तारक के नाते जिले में काम करता था। बडे भाईयों का अनुकरण स्वाभाविक रूप से छोटे भाई करते थे। घर में काफी स्थिरता आ चुकी थी। घर में रखा गया दत्तु वैशंपायन मैट्रिक हो कर खेती का काम काज करने लगा था। अत: मौसी जी के सिर का बोझ काफी हलका हो गया था। मौसी जी के भाई नीलकंठ राव अब तक खेती का कामकाज देखते थे - वे भी अब नागपुर लौट गए थे।

उसी दौरान याने १९४२ से १९४६ के कालखंड में घर में दो विवाह हुए । एक था बडे बेटे मनोहर का जो कि प्रेमविवाह था। नागपुर में उसी के कालेज की सहपाठी पद्मावती को उसने पसंद किया था। लडकी का रंग रुप सभी सुंदर था। किंतु मौसी जी इस संबंध से बहुत प्रसन्न नहीं थी। प्रेमविवाह था इसलिए नहीं बल्कि वे चिंतित थी कि प्रगतिशील और स्वतंत्र वातावरण में पली यह लडकी उनके जरा पुराने और बडे कुनबे में सुखी हो पायेगी या नहीं ? अत: मौसी जी ने मनोहर को बात ठीक ढंग से समझाई । मनोहर और पद्मावती को पहचानने वाले उनके मित्रों ने भी दोनों के भिन्न स्वभाव के कारण निरंतर टकराव और संघर्ष का भय व्यक्त किया था। किंतु मनोहर का इरादा पक्का था , अत: दोनों का विवाह हो गया।

विवाह बडी धूमधाम से हुआ। मौसी जी ने विवाह के बाद फिर कभी अपनी अप्रसन्नता व्यक्त नहीं की। वकालत करने के लिए मनोहर नागपुर छोडकर वर्धा आ गया। बहु बेटे के घर में आगमन पर मौसी जी बडी प्रसन्न थी।

इसी दरम्यान घर में दुसरा विवाह हुआ। और वह था दत्तू वैशंपायन का। मौसी जी ने यह विवाह भी बडी धूमधाम से कराया, बिल्कुल अपने बेटे के विवाह की तरह। इस बहू को पांच तोले सोने के आभूषण दिए। यही नहीं पचीस एकड जमीन देकर हिंगणघाट में उसकी गृहस्थी बसा दी। अपने-पराए में भेद करना मौसी जी ने कभी सीखा ही न था। दूसरों को जो दिया वह दिल खोल कर भरपूर दिया। वे हमेशा अपनी सेविकाओं से कहतीं, " अरी दुसरों को हमेशा अच्छा ही दो। सीधी सी बात है, घर में रांधी रसोई बचने वाली है। इसका गृहिणी को पता होता है। ऐसे में वह अन्न बाँसी करके दूसरे दिन नौकरानी को देने की बजाए , ताजा हो उसी दिन क्यों न दिया जाए ? " छोटी छोटी बातों का भी मौसी जी बारीकी से ध्यान रखती थी।

मौसी जी की एक खास बात थी। घर के कर्तव्यों को निभाते समय उन्होंने समिति की कभी उपेक्षा नहीं की। १९४४ की बैठक नागपुर में वेदशाला में हुई थी। मौसी जी सोच रही थी कि सब १९४५ की बैठक कहां ली जाए ? तभी श्रीमती बकुलताई ने सुझाया कि, ''यह बैठक बंबई में ली जाए और इसमें चुनिंदा प्रमुखों को बुलाने की बजाए भारत की सभी सेविकाओं को बुलाया जाए।'' बात बन गई। तारीख तय हो गई । स्थान था दादर की छबिलदास कन्या शाला। सबको पत्र भेजे गए। आगे चलकर जो त्रैवार्षिक रैलियां होने लगीं, यह बैठक उसका प्रारंभ था। इस बैठक का स्वरुप थोडा बहुत सम्मेलन की तरह था।

बंबई की इस बैठक नें पचास स्थानों से तीनसौ सेविकाएं उपस्थित थीं। बंबई में सभी तरुण सेविकाएं बडे उत्साह से काम कर रही थीं। बैठक तीन दिन चली। हर स्थान की रपट मौसी जी ने सुनी। एक बात वे ताड गई कि इस महिला संगठन का सर्वत्र स्वागत हो रहा है और मांग भी बढ रही है। बैठक में कई विषयों पर चर्चा हुई। किंतु शाखा की कार्यप्रणाली पर मुखत: अधिक जोर दिया गया। श्रीमती अंबुताई देवधर ने स्पष्ट और क्रमबद्ध रुप से कार्य प्रणाली लिख कर तैयार की थी। उसमें गट प्रणाली पर काफी जोर दिया गया था। आज की कार्य प्रणाली की नींव इसी बैठक में रखी गई। सेविकाओं के आपसी संबंध, अधिकारियोंका आपस में व्यवहार, शाखा स्थान का अनुशासन , और शाखा चलाने की नियमावली इसी बैठक में सुनिश्चित की गई। उस समय समिति की कार्यप्रणाली अधिकतर संघ शाखा की तरह थी। किंतु अपनी विचारी सेविकाओं की सहायता से मौसी जी ने इस कार्य प्रणाली में आवश्यक सुधार किए। मौसी जी इतनी उदारमना थीं कि उम्र से छोटी सेविकाओं की उचित सूचना का स्वीकार तुरंत कर लेतीं।

दूसरों के गुणों को प्रोत्साहन देने में उन्हीं को बडी प्रसन्नता होती। इसीलिए कई गुणवान सेविकाओं का उपयोग मौसी जी ने समिति के लिए किया। इनमें पहली बार बैठक में आई काकू रानडे का नाम विशेष उल्लेखनीय है इस हरफन मौला काकू के गुणोंको मौसी जी पहली नजर में ही पहचान गई ! आगे चलकर रुई से बने उनके चित्र प्रदर्शनियों का लाभ सारे देश को हुआ। यह मेघावी महिला मौसी जी की प्राणप्रिय सहेली बनी। एक बुद्धिमान कलाकार और निर्मोही काकू को मौसी जी ने निधी प्रमुख माई नागले की सहायक बना दिया। उन्हें सौपे गए इस काम को काकू जी ने आजीवन किया, अन्य काम भी बिल्कुल नि:स्वार्थ भाव से करती गईं।

इसी बैठक में मौसी जी ने दैनंदिन कार्यक्रमों के अतिरिक्त कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों की रुपरेखा बताई। उन दिनों स्थान स्थान पर बाल मंदिर शुरु किए गए थे। मौंटेसरी मैडम तभी

भारत की सद्भावना यात्रा कर लौटी थी। उनके जाने के बाद भारत में मौंटेसरी स्कूलों का दौर चल पडा था। मौसी जी ने सोचा क्यों न इस बात का लाभ उठाया जाए। सुसंस्कारों का अपना उद्देश बाल मंदिरों के माध्यम से पुरा हो सकता है। बच्चों की माताओं से भी संपर्क रखा जा सकेगा। इसी तरह उद्योग मंदिरों के चलते महिलाओं के आर्थिक प्रश्न भी कुछ मात्रा में सुलझाए जा सकेंगे। और मुख्यत: समाज की बहुसंख्य महिलाओं तक हम पहुंच पाएगे तथा उनके सुख दुखो को हम स्वयं अनुभव कर सकेंगे। मौसी जी की स्पष्ट मान्यता थी की संगठन का अर्थ रोजाना या सप्ताह में एक बार एकत्रित होना नहीं बल्कि समाज की महिलाओं के अधिक से अधिक पास जाना, उनके प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास करना तथा बहुजन समाज से मेल जोल बढाना ही संगठन का सही अर्थ क है। उनके इस संदेशानुसार कोल्हापुर की श्रीमती कृष्णाबाई ठाकुर ने सर्वप्रथम उद्योग मंदिर चलाने का सफल प्रयोग किया। इसी उद्योग मंदिर के द्वारा उन्होने कई बहनों से नाता जोडा। मौसी जी ने आगे चलकर श्रीमती ठाकुर को बडे प्यार से 'उद्योग लक्ष्मी' की पदवी देकर सम्मानित किया। इस प्रकार एक सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण मौसी जी ने सेविकाओं के सामने रखा। उद्देश्य इतना ही था कि समाज के अधिक से अधिक लोग संपर्क में आया जाए। समाज सेवा केवल बौद्धिक का विषय नहीं है। उस पर अमल करना सीखना होगा। कहना ही होगा कि मौसी जी ने इस दृष्टी से कई प्रयोग स्वयं प्रारंभ किए। इस बैठक का संपूर्ण आयोजन बकुलताई और इंदुताई अय्यर (इंदू देव, पुणें) ने किया। बैठक से सेविकाएं नए विचार और नई उमंग के साथ लौटीं। इसी बैठक में मौसी जी ने केन्द्रीय कार्यकारी मंडल और भारतीय अधिकारियों की नियुक्ति की।

अब हर वर्ष समिति की अखिल भारतीय अधिकारियों की बैठक आयोजित करने का निश्चय किया गया। तदतनुसार सोलापुर में १९४६ में बैठक हुई। प्रत्येक बैठक में मौसी जी नया विचार, नई प्रेरणा सेविकाओं को देतीं। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के गुणों का समिति के कार्य में किस तरह उपयोग किया जा सकता है, इसकी कल्पना देतीं। सोलापुर की बैठक में उन्होंने सुझाया कि दूर दराज के देहातों तक समिति को पहुचांने के लिए भजन, कीर्तन और प्रवचनों का माध्यम चुनें। काफी बहस हुई। किसी ने कहा, हर कोई कीर्तन प्रवचन नहीं कर सकतीं। ताल, सुर, गायन और मीठी सुरीली आवाज इसके लिए आवश्यक है। इन्हीं गुणों के कारण ही तो कीर्तन प्रभावी होता है। मौसी जी बोली, "देखो, कठिनाइयां तो हर बात पर आयेंगी ही। समाज के लिए कुछ करना है तो इन अडचनों का विचार अवश्य करें किंतु उन्हें अपने ऊपर हावी न होने दें। प्रयत्न तो कीजिए।" सभी एक दुसरी को ताकने लगी। "काशीताई, आप इस कार्य में पहल कीजिए। आपके पास विनोद बुद्धी है, वक्तृत्व

है अत: मुझे विश्वास है कि आप कीर्तन अच्छा कर सकती है। आज से ही प्रारंभ किया जाए।'' काशीताई कुलकर्णी ने भी अपनी सहमति दर्शाई। और कई वर्षों तक उत्तम कीर्तन करती रहीं। देह तों आदि में कीर्तन सुनने के लिए बडा जनसमुदाय उमड़ता था। मौसी जी एक जौहरी की भाँति एक एक हीरा परख कर तराश कर, समिति के हार में पिरो रही थी।

१९४६ में बंबई और पुणें में वर्ग हुए। बंबई वर्ग के लिए गुजरात से हंसा मोदी, कुसुम त्रिवेदी, काणे बहनें ,आदि सेविकाएं आई थी। लौटने पर गुजरात के प्रमुख शहरों में लगभग बीस शाखाएं उन्होने शुरु की। इसी प्रकार नागपुर वर्ग के लिए जम्मु से शक्तिदेवी और शारदा शर्मा आई थी। उन्होने जम्मु कश्मीर में शाखा शुरु की। परंतु मौसी जी भारत के सभी प्रांतों में गई। किंतु जम्मु - कश्मीर जाने का मौका तीव्र इच्छा होते हुए भी उन्हें अंत तक नहीं मिला।

१९४७ प्रारंभ हुआ। भारतीय राजनीति के रंग और गहरे होने लगे थे। त्रिमंत्री-योजना , क्रिप्स योजना भारत के सामने रखी गई थी। किंतु उपलब्धि कुछ भी नही थी। इससे पहले १९४५ में पहले महायुद्ध की समाप्ति से ही भारत के स्वतंत्र होने के आसार दिखाई देने लगे थे। किंतु विभाजन की घटाएं भारतियों के सर पर घिर आने लगी थी। महात्मा गांधी और बॅ. जिना के बीच बातचीत के कई दौर हो रहें थे। विभाजन की मांग पर मुस्लिम लीग अड़ी थी और गांधी जी उन्हें विभीजन के मायने बार बार समझा रहे थे। अंग्रेज सरकार अलिप्तता का स्वांग रचा कर परोक्ष रुप से मुस्लिम लीग को भड़का रही थी।

अंत में विभाजन हो कर ही रहा। सारा देश हिंदु मुसलमानों के दंगों में झुलस रहा था। रौंगटे खडे करने वाले समाचार आ रहे थे। महिलाओं पर अत्याचारों की तो कोई सीमा ही नहीं रही। मौसी जी अत्यंत बेचैन थी। ना रातों की नींद थी ना दिन का चैन। भोजन का भी स्वाद जाता रहा था। किंतु अपने इस छोटे से संगठन के बलबुते पर कुछ कर भी नहीं पा रहीं थी। उन्हें दुख था कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसा समर्थ युवकों का देशव्यापी संगठन भी इस विभाजन को थाम नहीं पा रहा था। एक दिन मौसी जी, श्री. अप्पाजी जोशी के घर गईं और बोली , '' अप्पाजी, यह सब क्या हो रहा है ? क्या सचमुच विभाजन होगा ? ऐसे में आपके संगठन का क्या उपयोग? संघ ने क्या करने की सोची है ? '' किंतु अप्पाजी से भी मौसी जी को कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला।

१५ अगस्त १९४७ भारत और पाकिस्तान की स्वतंत्रता का दिन तय हुआ। जिस सिंध प्रांत में भारतीय संस्कृति का विकास और संवर्धन हुआ वही सिंध प्रांत अब भारत से कट रहा था। वहां की महिलाओं के लिए मौसी जी सदैव चिंतीत रहतीं। उन्हें लगता कि सिंध प्रांत की महिलाओं की सुरक्षी की जिम्मेदारी उनकी है। किंतु क्या किया जाए, उन्हें सुझ नहीं रहा

था। इसी उधेड बुन में उलझी मौसी जी को तभी याने विभाजन पूर्व जुलाई मास के अंतिम सप्ताह में कराची से माननीय जेठी बहनजी का बहुत ही मुखर पत्र मिला। लिखा था,

'' वंदनीय मौसी जी, सादर प्रणाम,

आपकी के मार्गदर्शन के कारण हिंदुभूमि के इस अति दूर के प्रदेश की बहनों ने ' हिंदुत्व याने राष्ट्रीयत्व ' इस विशुद्ध भूमिका को समझकर हिंदू महिलाओं का संगठन करने का ध्येय सामने रखा है। और पहली बार हिंदु नारियाँ आपसे धर्म और संकृति के अटुट बंधन को समझती हुई अतीव आनंद अनुभव करने लगी है। पर अब दुनिया जानती है कि भारतीय स्वतंत्रता के महान सुखद समय ही हम सिंधवासियों पर कितनी बडी आपत्ति आई है।

अब हमें सिंध छोडना ही पडेगा, यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती जा रहीं है। क्यों कि हमारी मातृभूमि अब मुसलमानों की भोग भूमि बन रहीं है। हम चाहते थे कि इसी भूमि में हम निरंतर रहें ; पर अब वह बिल्कुल असंभव प्रतीत होता है।

मौसी जी, सिंध की सब सेविकाएं चाहती है कि भारत वर्ष का विभाजन होने से पहले आप एक बार हमारे बीच आ जाएं। ताकि पवित्र सिंधु को साक्षी रखते हुए आपकी महान उपस्थिती में हम इस महान देश के प्रति अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो सके। आपका यहां आना इसलिए जरुरी है कि बिदाई के अति कठीन समय पर आप जैसी प्रेमदायिनी, धैर्यदीयिनी माता की उपस्थिती में दुख का बोझ हलका महसूस होगा और भविष्य के कर्तव्य की ओर निर्भयता से बढने की प्रेरणा मिलेगी।

क्या आप हमारी आरजु पूरी करेंगी ?

आपकी

जेठी देवानी।''

मौसी जी ने मन को छूने वाला यह पत्र पढा। पलभर सोचा और कुछ निश्चय कर पास खडे अपने बेटे दिनकर से वेणूताई कलमकर को बुला लाने को कहा। वेणूताई के आते ही उनके हाथ में जेठी जी का वह पत्र दिया। उन्होंने पढकर प्रश्नार्थक मुद्रा में मौसी जी की ओर देखा। मौसी जी ने कहा,

''हमें कराची जाना ही होगा।''

वेणूताई बोलीं, '' किंतु मौसी जी देश की हालत बहुत खराब है। ऐसे में थोडा और विचार कर लें तो ठीक रहेगा।''

''विचार एक ही है, निर्णय पक्का है, हमें जाना ही होगा। आप और दिना मेरे साथ चलें।''

जो नेता अपने प्राणों की परवाह न कर अपने अनुयायियों की गुहार सुनकर दौड कर जाता है, अनुयायी उसके लिए अपने प्राण न्यौछावर कर सकते हैं। नेता की कसौटी पर मौसी जी खरी उतरी थीं। उन्होंने तुरंत कूच करने की तैयारी की। उमा काकु ने भी उन्हें परिस्थिती की गंभीरता समझाने की कोशिश की, किंतु मौसी जी की कर्तव्यनिष्ठता के आगे किसी की एक न चली।

४ अगस्त १९४७ को मौसी जी बकुलताई के घर पहंची और जिस विमान में टिकट उपलब्ध हो, निकालने को कहा। टिकट मिलना एक टेढी खीर था। १४ अगस्त पाकिस्तान की आजादी का दिन था। भारत के अनेक मुसलमान उस समारोह के लिए पाकिस्तान जाने वाले थे। अत: कराची जाने वालों की बडी भीड थी। फिर भी जयंतराव देवकुले ने बडी मुश्किल से दो टिकट प्राप्त कर लिए अब सवाल था, कौन दो जाएं? अंत में मौसी जी ने कहा, ''मैं और वेणूताई दोनों जने जाएंगी।'' मौसी जी का यह निर्णय सुनकर सभी हैरान थे। ऐसी हालत में दोनों महिलाओं का ही कराची जाना खतरे से खाली नहीं था। किंतु मौसी जी के निर्णय पर कुछ कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी।

१३ अगस्त को मौसी जी और वेणूताई जुहू हवाई अड्डे पर पहुंची। सब लोग उन्हें देखते ही रह गए कि इतने घमासान में ये दो महिलाएं कराची जाने का साहस कैसे जुटा पाईं है? एक चालीस की ओर एक पैंतीस साल की यानी दोनों युवा ही थीं। वे दोनों औरते हवाई जहाज में चढीं। हवाई जहाज में केवल दो हिंदु बंधु थे। एक श्री. जयप्रकाश नारायण और दूसरे पुणें के श्री. देव। वे भी अहमदाबाद उतर गए। उनके स्थान पर दो मुसलमान यात्री ही आए। सफर के दौरान मौसी जी के मन में विचारों का अम्बार लगा था। वहां की परिस्थिति का वे अंदाजा नहीं कर पा रही थीं। किंतु मन में डर का नामोनिशान नहीं था।

मौसी जी के दामाद श्री. चोलकर (वत्सलाबाई के पति) नौकरी के लिए कराची में रहते थे। मौसी जी के आने की सूचना उन्हें पहले से ही दी गई थी। तदनुसार उनकी बेटी और वे स्वयं हवाई अड्डे पर उन्हें लेने आए थे।

प्रवासियों के उतरने पर वहां के लोगों ने जोरदार नारे लगाए - ''हंस के लिया पाकिस्तान, लड़ के लेंगें हिंदुस्तान।''

मौसी जी वत्सलाताई से बोली, ''हवाई जहाज में भी कुछ इसी प्रकार के तारे लगाए जा रहे थे।''

''आपको डर नहीं लगा ?'' वत्सलाताई ने पूछा ।

''डर किस बात का ? हमने उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। और फिर आत्मरक्षा का हमारा साधन हमारे पास जो था '' मौसी जी ने उत्तर दिया। आत्मरक्षा के लिए लंबे अरसे से मौसी जी एक छोटासा खंजर अपने पास रखती थी।

१४ अगस्त १९४७ का सूर्योदय हुआ। भारत ने १५ अगस्त अपना स्वतंत्रता दिवस निश्चित किया था, किंतु पाकिस्तान ने १४ अगस्त ही को स्वतंत्रता ग्रहण की थी। वह दिन कराची शहर में बडी धूमधाम से मनाया गया। स्थान स्थान पर हिंदू नेताओं की प्रतिमांए हटाई जा रहीं थीं। सडकों के पुराने नाम हटाकर मुस्लिम नेताओं के नाम उन्हें दिए जा रहे थे। 'हंस के लिया पाकिस्तान के नारे लगातार लगाए जा रहे थे। एक मदमाता स्वतंत्रता उत्सव था वह। पाकिस्तान प्राप्ति का आसुरी आनंद सर्वत्र झलक रहा था। उसी रात को समिति का एकत्रीकरण था । एक घर की विस्तृत छत पर सिंध के विभिन्न स्थानों से आई लगभग १२०० सेविकाएं उपस्थित थीं। काली अंधियारी रात सेविकाओं के उत्साह का को जरा नहीं पाई थी। उनके एक बार पुकारने पर उनकी अपनी मौसी जी इतनी बिकट परिस्थिती में भी दौडी चली आई , इस बात से वे अति प्रसन्न थीं।

रात के १२ बजे। पाकिस्तान की आजादी की घोषणाओं से सारा शहर गूंज उठा। चारों ओर अत्याचारों की कोई सीमा नहीं रही। लाहौर में तो राक्षसी प्रवृत्ती का तांडव हो रहा था। ऐसे समय पवित्र भगवे ध्वज को साक्षी मानकर प्रत्येक सेविका ध्वज पर अपना खून चढाकर , मौसी जी के गंभीर स्वर में अपना स्वर मिलाकर प्रतिज्ञा ले रही थी। सभी सेविकाओं में चेतना ठाठें मार रहीं थीं। प्रतिज्ञा कार्यक्रम की समाप्ति पर मौसी जी ने अपने धीर गंभीर स्वर में सेविकाओं का मार्गदर्शन किया । वे बोलीं ''धीरज से काम लीजिए। कायर मत बनिए, अपनी लाज की स्वयं रक्षा कीजीए। अपने पर तथा संगठन पर भरोसा रखिए । इस घडी में समिति भी कसौटी पर खरी उतरेगी।'' सेविकाएं बोली -''हम आपके उपदेशानुसार ही आचरण करेंगी। और आखरी दम तक इस भूमि की सेवा करेंगे।'' किंतु नियती के इरादे कुछ और ही थे। मौसी जी की यह कराची भेंट अंतिम साबित हुई। इस बैठक में अनेक सेविकाओं के अभिभावक मौसी जी से मिलने आए थे। उन्होंने पूछा-

'' कोई बाँका प्रसंग आ ही जाय तो हम अपनी बहु बेटियों को कहां भेजें ? ''

मौसी जी ने तुरंत उत्तर दिया ,''आपके मन में यह प्रश्न आया ही क्यों ? भारत की हर सेविका के घर का द्वार आपके लिए हमेशा खुला है।'' इस आश्वासक उत्तर के कारण

पूछने वालों की आंखे भर आईं। आगे चलकर प्रसंगवश मौसी जी के इस आश्वासन की सत्यता सबने अनुभव की।

कराची से मौसी जी १७ अगस्त को बंबई लौटीं। उसी दिन पोद्दार कालेज की छत पर समिति की बैठक थी। करीब १००० सेविकाएं उपस्थित थीं। रात दस बजे कार्यक्रम शुरु हुआ। शाखा लगाई गई और तत्पश्चात मौसी जी का भाषण हुआ। अपने भाषण में उन्होने सिंध की परिस्थिती और अपने अनुभव कथन किए। उनका भाषण बहुत ही हृदयस्पर्शी था। इस भाषण में दुख और क्रोध की अभिव्यक्ति थी। साथ ही संगठित समाज की अत्यावशकता का आग्रही प्रतिपादन था। ''पाकिस्तान के हमारे भाई बहनों की सहायता के लिए अब हमें कमर कसनी पडेगी। कोई भी संकट हमें विचलित न कर पाए'' यही उनके भाषण का आशय था। इसके बाद वेणूताई कलमकर ने भी अपने विचार रखे। एक-डेढ बजे तक भाषण चलते रहे। तत्पश्चात सेविकाओं को प्रतिज्ञा देने का सिलसिला भोर होने तक चलता रहा। एक ऐतिहासिक रात थी वह।

इस बैठक के बाद मौसी जी पुणे गई। तब वीर सावरकर भी वहीं थे। उनसे मिलने को मौसी जी कई दिनों से उत्सुक थीं। इस बार उन्हें भेंट का अवसर मिला। सावरकर जी बहुत बडे देशभक्त थे, क्रांतिवीर थे और हिंदुमहासभा के आधारस्तंभ थे। केवल इसलिए मौसी जी उन्हें नहीं मिलना चाहती थीं। बल्कि वे महिलाओं के संगठन के बारे में सावरकर जी का दृष्टिकोण जानना चाहती थी; उनका मार्गदर्शन चाहती थीं। क्योंकि हिंदुमहासभा ने भी सावरकरजी की प्रेरणा से महिलाओंका अलग संगठन शुरु किया था। ऐसे महान व्यक्तियों से विचार विनिमय करते हुए ही मौसी जीने अपने संगठन का विस्तार किया था। इन लोगों का मार्गदर्शन लेने में उन्हों ने कभी कोई हेठी अनुभव नहीं की। मौसी जी को अपने संगठन के प्रति कोई अहंकार नहीं था। अपितु निरंतर सुधार करने की, कुछ सीखने की विनम्र भावना ने ही उन्हें समिति कार्य में यशस्वी किया।

नियोजित समय पर मौसी जी सावरकर जी से मिलने गई। दो नेताओं की वह ऐतिहासिक भेंट थी।

सावरकर जी ने बडी हार्दिकता से मौसी जी से समिति के कार्य के बारे में पूछा। वे बोले, ''लक्ष्मीबाई 'राष्ट्र सेविका समिति' का कार्य तो रिमझिम बरसने वाले पानी की तरह है, जो हमेशा भूमि में नमी बनाए रखता है। राजनीतिक उद्देश से हिंदु महासभा ने शुरु किया हुआ कार्य तूफानी बरसात जैसा है। इसका प्रभाव दूर तक नहीं होता। जो क्षेत्र इस तूफान की चपेट में आता है वह जलमय होता है, किंतु कुछ ही देर के लिए। कालांतर से पानी

बह जाता है, उसका भाप में रुपांतर हो जाता है । अत: समिति के कार्य की आवश्यक्ता कालजयी है। मेरी शुभ कामनाएं सदैव आप के साथ हैं।'' मौसी जी काम के सिलसिले में सावरकर जी से देर तक बोलतीं रहीं। इस भेंट से उन्हें बडा संतोष मिला और सावरकर जी द्वारा समिति कार्य का जो मूल्याकंन किया गया वह मौसी जी के इरादे और बुलंद कर गया।

१५ अगस्त - भारत के स्वतंत्रता दिवस पर शाखा स्थानों पर राष्ट्रध्वज के साथ भगवा ध्वजारोहण करके यह स्वतंत्रतोत्सव मनाया जाए ऐसी सूचनाएं मौसी जी ने समिति की शाखाओं को दी थीं। स्वतंत्रता खंडित थी। बहुत बडी कीमत चुकानी पडी थी हमें। फिर भी कई वर्षों की गुलामी से आज भारत आजाद हुआ था। यह भी सत्य था। अत: भारत वासियों को खुशी होना बिल्कुल स्वाभाविक था। मौसी जी भी इस बात को अच्छी तरह समझती थीं। इसीलिए उन्होने उपरोक्त सूचनाएं सभी शाखाओं को दी थी

१०

नारी शक्ती की अनुभूति

भारत अब स्वतंत्र था। विदेशी सत्ताधीशों का कोई भय नहीं था। अब खुली हवा में सांस ली जा सकती थी। अतः सभी सेविकाओ में एक उमंग जागी थी कि ऐसे खुले वातावरण में हमारा संगठन पूरे दमखम से समूचे भारत में फैलेगा। मौसी जी का भी मानना था कि इस स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अब उत्तम सुसंस्कारित नागरिकों की आवश्यकता होगी। समिती को इसी काम का बीडा उठाना होगा। भारतीय नारी कैसी हो इसकी सुस्पष्ट कल्पना अब उनके सामने थी। नारी का मातृत्व बोध चिरंतन प्रेरणा का स्त्रोत है इसे उन्होने भली भाँती समझा था। इसीलिए रानी जिजामाता (शिवाजी महाराज की माँ) का आदर्श उन्होने सेविकाओं के सामने रखा। देवी अहल्याबाई को महिलाओंकी कृतीत्व शक्ती का प्रतीक मानकर सेविकाओं को उनकी शक्ती से अवगत कराया। उन्हें विश्वास था कि महिलाएं गृहस्थी और समाज कार्य दोनों साथ साथ कर सकती हैं। नारी अबला नहीं प्रबला है। समय आनेपर वह अपनी और राष्ट्र की रक्षा के लिए शस्त्र उठा सकती है। बल्कि उसे शस्त्र उठानाही चाहिए। नारी सामर्थ्य और उसके नेतृत्व गुणों को उजागर करनेवाले कई उदाहरण पुराणों और इतिहासमें मिलते हैं। स्वतंत्र भारत में ऐसे गुणसंपन्न नेतृत्व की आवश्यकता को समझकर मौसीजी ने झाँसी की रानी का उदाहरण सेविकाओं के सामने रखा। अपने मातृत्व, कृतीत्व और नेतृत्व तीनों गुणोंका प्रसंगनुसार महिलाएँ राष्ट्रकार्य के लिए उपयोग करें ऐसा आवाहन मौसी जी समय समय पर करती थी।

उसी वर्ष दिसंबर में मीरज में अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। श्रीमती कुसुमताई घाणेकर ने इस सम्मेलन की बहुतसी जिम्मेदारी उठाई थी। भारत के कोने कोनेसे, जहां जहां समिती की शाखाएं थीं, सेविकाएं आमंत्रित थीं। आजकल हर तीन वर्ष बाद समिती का अखिल भारतीय सम्मेलन आजोजित किया जाता है, जिसका प्रारंभ मीरज के इस प्रथम सम्मेलन से हुआ। संमेलन उत्तम रीतिसे संपन्न हुआ। सेविकाएं नया उत्साह और नई उमंगे लेकर वापस लौटी।

इसी दौरान मौसी जी के मन में एक नया विचार आकार ले रहा था। अपनी चारों ओर उन्होने देखा और अनुभव किया कि हमारा श्रद्धालु समाज भगवान को बहुत मानता है। मूर्तिपूजा हिंदुसमाज की आत्मा लगती है। पूजा-अर्चा में औरतों का विशेष सहभाग होता है। किंतु सिंदूर पोतकर भैंसाबाबा या मरीमाता मानकर उसकी पूजा करने की बजाए किसी ऐसे देवता की मूर्ति लोगों के सामने रखनी चाहिए जो उन्हें वास्तव में रक्षणकर्ता लगें। यूं ही किसी भी देवी-देवता की उपासना करना योग्य नहीं। मौसी जी का विचारचक्र जोरसे घुमने लगा। उन्होंने पुराणों का पठन शुरु किया। देवी महिमा को बारबार पढा। रामकृष्ण की काली माँ और छत्रपति शिवाजी महाराज की भवानी माता का रुप उनके मन में रचने बसने लगा। अंत में धीरे धीरे अष्टभुजा देवी की प्रसन्न और सात्विक प्रतिमा उनके मन में बस गई। अपने आंतरिक सामर्थ्य के आधारपर उन्होने उनके भाव विश्व में साकार हुई इस अष्टभुजा के हाथों में उन्होने एक एक आयुध दिया। उनकी सूझ बूझ और प्रगल्भ बुद्धिमत्ता का अविष्कार इस अष्टभुजा देवी के रुप में साकार हुआ। अष्टभुजा के हाथ में दी गई सुमिरनी समाज को सत्कृत्यों का चिंतन करने, उन्हें जपने का संदेश देती है। घंटी जागृती का प्रतीक है। भगवद्गीता यशस्वी जीवन जीने का मंत्र देती है। अग्निकुंड त्याग और पवित्रता का परिचायक है। कमलपुष्प पवित्रता और निर्मोही मन का स्मरण दिलाता है। तलवार देती है शौर्य का मंत्र। त्रिशूल साक्षी है त्रिगुणात्मक देह का और भारतीय संस्कृति की परंपरा का मानदंड है केसरिया ध्वज। ऐसी थी मौसी जी के मनमानस में साकार हुई इन आयुधों से अलंकृत अष्टभुजा देवी। उनका कहना था कि उपरोक्त सभी चीजों की समाज को हमेशाही बहुत आवश्यकता होती है। इसलिए ये प्रतीक समाज के सामने बार बार आने चाहीए। इस संदर्भ में वे समर्थ रामदास स्वामी का उदाहरण दिया करती थी। जिस समय राष्ट्र को दुष्टों को सजा देनेवाले, पतिव्रताओं का रक्षण करने वाले, सज्जनों को आश्रय देनेवाले, बलदंड और समर्थ पुरुष की आवश्यकता थी तब रामदास जी ने कोदंडधारी रामचंद्र की प्रतिमा जनता के सामने रखी थी। परिणामतः रामकथा घर घर में गायी जाने लगी। मौसी जीने अपने मन में साकार हुई मूर्ति की कल्पना कई लोगों से बतायी। मौसी जी को लगता था कि यह मूर्ति सिंह पर सवार हो। उसके चेहरे पर सात्विकता, संकल्प और स्मितहास्य हो। वह जगत् जननी है इसलिए उसे देख मातृत्व के भी दर्शन होने चाहिए। यह सिंहारुढ दुर्गा दर्शाती हो कि वह दुष्ट प्रवृत्तियों को अपने वश में रखनेवाली है। इस तरह यह स्फूर्तिदायिनी, अभयदायिनी, संगठन का महामंत्र बतानेवाली शक्ति देवता समिति की आराध्य देवी बने ऐसा मौसी जी का विचार था।

१९४८ के प्रारंभ में जब मौसी जी बंबई आई तो उन्होने श्री. जयंतराव देवकुले को अपनी कल्पना सुनाई। उसी के अनुरुप उन्होने देवी का एक सुंदर चित्र प्रख्यात चित्रकार श्री. दलाल

जी से बनवाया। मौसी जी ने कुछ सुझाव दे कर वह चित्र अपनी इच्छानुरुप बनवा लिया। वे देवी के चेहरे पर बचकाना भाव नहीं चाहती थी। उन्हों चाहिए थी धीर गंभीर सत्व भावदर्शी जगदंबा। दलाल जी द्वारा बनाए गए चित्र से जब वे संतुष्ट हुई, तो उन्होने उसकी अनेक प्रतियाँ निकलवाकर पूरे भारत में उनका वितरण किया। सेविकाओं ने इस देवी को अपने राष्ट्र की उपास्य देवता के रुप में स्वीकार किया तब उसकी तस्वीर शाखा स्थान पर, उत्सवों आदि में रखी जाने लगी।

इन्हीं दिनों मौसी जीने अनुभव किया कि समिति की प्रार्थना बदलना भी अब आवश्यक है। क्यों कि समिति अब केवल महाराष्ट्र तक ही सीमित नहीं थी। मराठी प्रार्थना महाराष्ट्र के बाहर सर्वमान्य नहीं हो सकती थी। नई प्रार्थना संस्कृत में हो यह आवश्यक था, अतः उन्होने संस्कृत में प्रार्थना बनवा ली। पहले वह श्री गुरुजी को दिखलाई। उन्होने वह प्रार्थना श्री. वर्णेकर को दिखाकर उसमें कुछ सुधार किए; प्रार्थना इस प्रकार से थी - तदादर्शयुक्तं पवित्रं सतीत्वम्। यहां 'सतीत्वम्' के स्थानपर 'स्त्रीत्वम्' शब्द पहले था। दुसरा परिवर्तन था, स्वयं जिवितान्यर्पयामतस्वयीं'। इन शब्दों के स्थान पर पहले हविश्याम् अयुर्षा मात्स्वयीं था। इसी तरह समिति के प्रातःस्मरण - श्लोक जिनमें सभी कृतीत्वशील महिलाओं का समावेश था, वे भी तैयार किए गए। इन में अहल्या, द्रौपदी से लेकर कल्पना दत्त और प्रीती बहाद्दर जैसी क्रांतिकारी महिलाओं तक सभी का स्मरण किया गया है। लगभग उन्हीं दिनों मराठी की सुप्रसिद्ध कवयित्रि संजीवनी मराठे ने दस वंदना श्लोंकों की रचना की। मौसी जी ने उन्हें बहुत पसंद किया। प्रशिक्षण वर्ग, शिबिरों आदि में प्रातःस्मरण के साथ ये वंदना श्लोक भी कहे जाने लगे। मौसी जी अपने मधुर आवाज में प्रातः स्मरण और वंदना श्लोकों का नित्यरुपसे पठन करती थी। उन्हें भजन और गीत सुर, ताल और लय में गाना बहुत भाता था। वे स्वयंम् वैसे गाती और दुसरों से भी वैसे गवाती थी।

१९३६ से लेकर १९४७ तक समिती का कार्य विस्तार बहुत हो चुका था। सभी शाखा स्थानों पर सेविकाओं की उपस्थिती उल्लेखनीय रहती थी, जिसमें युवा सेविकाओ की संख्या ज्यादा होती थी। मौसी जी के प्रवास नित्य नियम से जारी थे। उनकी उपस्थिती मात्र सेविकाओं के लिए उत्साहवर्धक होती थी। उनका प्रभावी व्यक्तित्व और जबरदस्त अनुशासन प्रियता का सभी सेविकाओं पर बहुत अच्छा परिणाम होता था। सादगी और स्वच्छता के प्रति उनका प्रेम शिबिरों, वर्गों, आदि में हमेशाही नजर आता था। ऐसे मौकों पर मौसी जी रसोई घर से लेकर सेविकाओं के निवासस्थानों तक हर चीज पर कडी निगरानी रखतीं थी। कहीं भी किसी प्रकार की गंदगी उन्हें जरा नहीं सुहाती थी। शिबिरार्थी - सेविकाओं को अपना सामान दीवार के साथ

सली के से लगाए रखने के कडे आदेश दिए जाते थे। जूते , चपलों की पंक्तियां जरा भी बिगडने न पाए इसपर उनकी पैनी नजर होती थी। जैसा साफ सुथरापन समिति में उन्हें अपेक्षित था वैसा ही घर पर भी था। मौसी जी वर्गों आदि में अपने कपडे स्वयं धोया करती थी। वे स्वयं अपनी साडी आदि में हमेशाही नजर आता था। सुखाने डालती थी। किसी दूसरे द्वारा सुखाए कपडे उन्हें पसंद नहीं थे। मौसी जी के घर आने की खबर पाते ही बहु बेटे घर की साफ-सफाई इस तरह करते मानो कोई निरीक्षक - परीक्षक आनेवाला हो। लेकिन मौसी जी के साफ-सुथरेपन को उन्होंने कभी मुसीबत नहीं माना। चाहे कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पडें, कितनी ही भागदौड क्यों न करनी पडे, घर हो या प्रवास में बेढंगापन मौसी जी को कभी स्वीकार न था। मौसी जी की शुभ्र साफ वस्त्र परिधानधारी पवित्र मूर्ति प्रत्येक में श्रद्धायुक्त आदर निर्माण करती थी।

१९३६ से लेकर १९४७ तक मौसी जी के सामाजिक जीवन की तरह उनका पारिवारीक जीवन भी घटनाप्रधान रहा। तीनों लडके स्नातक हो चुके थे। वे चाहती थीं कि उनका चौथा बेटा रत्नाकर अपने बडे भाईयों की ही तरह लीक से हटकर कुछ करे। शिक्षित बेरोजगारों की

सभी बातें समझाई। वे बोले -'लक्ष्मीबाई, आप रत्नाकर को जहाज पर सैनिक प्रशिक्षण लेने अवश्य भेजें। आप सचमुच धन्य हैं जो बेटे के लिए निराला मार्ग ढूंढ लाई।

''नहीं नहीं इसमे कौनसी धन्यता है। नई राहें, नई मंजिलें तो खोजनी ही होंगी। हमेशा की लीक में जीने से अब काम नहीं बनेगा।'' मौसी जी ने कहा।

इस पर मुख्याध्यापक बोले,

''यह बात नहीं है। पढ़ाई के लिए माताएँ अपने बच्चों को दूसरे गांव भेजने के लिए भी राजी नहीं होती। आप तो बेटे को इतनी दूर जहाजपर भेजने जा रही है - जो बहुत बडी बात है।''

मौसी जी ने गांव में संघ के मान्यवरों को अपना विचार सुनाया। किंतु वहां किसीने उनका विशेष समर्थन नहीं किया। उल्टे, रत्नाकर को जहाजपर न भेजने की ही सलाह दी। किंतु मौसी जी का निर्णय पक्का था। चौदह वर्ष का रत्नाकर उफरीन जहाजपर गया। उसकी देखा देखी वर्धा गांव के अन्य छह व्यक्ती भी डफरीन जहाजपर पहुंचे। इतना ही नहीं, मौसी जी का छोटा बेटा आनंद भी आगे चलकर जहाज पर ही गया।

समय गुजर रहा था। १९४७ तक मौसी जी के घर में दो बहुंए आ चुकी थीं। पद्माकर के लिए जलगांव के लिमये वकील की लडकी उन्होंने देखी और पसंद की। यह विवाह मौसी जी की इच्छानुरूप हुआ। यूं तो सभी विवाह उनकी सम्मति से ही होते थे। यही नहीं, उनके मायके में भी हर विवाह के समय उनकी राय अवश्य ली जाती थी। उनके भाई वामनराव दाते का विवाह १९४२ में यमुताई काणे की लडकी सुशीला के साथ हुआ। मौसी जी के बडे बेटे मनोहर (बापूसाहब) ने वर्धा में घर पर ही वकालत शुरु कर दी थी। मौसी जी को समिति के कार्य के लिए कई बार घरसे बाहर जाना पडता था। उन्हें लगा कि अब बडी बहू के आने से उमाकाकू का काम कुछ हल्का हो जायेगा। किंतु स्वतंत्र विचारों और सुधारवादी परिवारसे आई स्नातक पद्मा को बडी बहू बनकर जीना रास नहीं आया। मौसी जी तो चाहती थी कि बहु को ससुराल में सबके साथ घुलमिलकर रहना चाहिए। लेकिन दूसरों के सुख का विचार करनेवाली मौसी जी ने आखिर बापूसाहब और पद्माताई के लिए घर में ही स्वतंत्र बसेरा बना दिया। उद्देश्य था कि वे वर्धा में ही रहकर अपनी वकालत जारी रखें। किंतु वे अधिक दिन वर्धा नहीं रहे और नागपूर जा बसे। अपने बेटे और बहू का स्वभाव वे जानती थीं। इसीलिए इसका कोई विरोध भी उन्होंने नहीं किया। किंतु कई दिनोंतक मन ही मन वे बडी बेचैन थीं। अब नागपुरमें मायके के साथ साथ बेटे का भी घर है इसी में उन्होंने संतोष कर लिया।

१९४७ बडा ही महत्त्वपूर्ण वर्ष था। एक ओर स्वतंत्रता मिलने का आनंद था। तो दूसरी ओर पाकिस्तान के बन जाने का दुख था। पंजाबसे आए दिन भीषण समाचार आ रहा था। महिलाओंपर अनगिनत अत्याचार किये जा रहे थे। आगजनी और लूटमार का कुहराम मचा था। सभी पीडित थे। हृदय विदीर्ण करनेवाले समाचार थर्रा देते थे। सादियोंसे, पीढी घर पीढी जिस भूमीं में पले-पुसे, जिस मिट्टी का उन्हें अभिमान था उसी को छोडने की नौबत लोगोंपर आन पडी थी। भारत आ रहे निर्वासितों का रेल रोक नहीं रुक रहा था। इस संकट को देख देश के नेता भी चक्रा गए थे। ऐसे भयानक दिन भी देखने पडेंगे, इसकी तो उन्होने परिकल्पना भी नहीं की थी। दिल्ली शहर निर्वासितों की छावनी बन चुका था। हर संभाव वाहन ले हिंदू पाकिस्तानसे भारत आ रहे थे। हिंदू मानस पीडीत था, क्रोधित था। ऐसे में कराचीसे राष्ट्र सेविका समितीकी सेविकाओं के अभिभावकों ने मौसी जी और बकुलताई देवकुले से अनुरोध किया, ''हम अपनी रक्षा तो कर लेगे किंतु हमारी बेटियों की रक्षा आप करें।'' मौसी जी की सम्मति से बकुलताई ने उन्हें उत्तर भेजा, 'लडकियों को भिजवा दिजीए, उनका जिम्मा हमारा रहा।'

१९४७ के दिसंबर के अंत में कराची से निकले एक जहाज में लगभग एक सौ लडकियां पूरा साहस बटोरकर बंबई बंदरगाह में उतरीं। घर घर में दो-तीन सेविकाओं के रहने का प्रबंध किया गया था। एक वर्षतक वे इतने विश्वास से यहां रही मानो किसी निकटवर्ती संबंधी के घर रही हों। ज्यों ज्यों उनके अभिभावक भारत आए सेविकाएं अपने घरों को चली गईं। इतनी दूर, बिना किसी परिचय के अपने बेटियोंके निश्चिंत होकर भेजना कोई आसान बात नहीं थी। किन्तु यह तो मौसी जी के प्रति लोगों का विश्वास था जो उन्हें इतनी दूर ले आया।

नोआखली का हत्याकांड, गांधीजी की पदयात्रा, आनेवाले निर्वासितों की दुर्दशा के समाचार पढकर मौसी जी बहुत व्यथित हो जातीं। अपनी सेविका बहनों से वे कहतीं, ''पता नहीं महिलाओं की ऐसी दुर्गति को लोग कैसे देख पाते है ?'' हमें इस बारे में क्या करना चाहिए यही सवाल उन्हें सता रहा था।

इसी घमासान और तनाव के बीच १९४८ प्रारंभ हुआ। भारत के अनेक शहरों में पाकिस्तान से आए हिंदु बंधुओं की छावनियां लगी थीं। भारत के लोग उन्हें 'निर्वासित' कहते थे। यह सुनकर वे लोग बहुत दुखी होते थे। मौसी जी ने वर्धा शाखा में एक दिन कहा, ''उन्हें 'निर्वासित' मत कहिए। वे सब अपने देश में आये है, उन्हे पराया न समझें।'' एक सेविकाने मौसी जी से कहा, ''इन लोगों ने कितनी भीड मचा रखी है यहां,'' मौसी जी बोली, 'यहां नहीं आएंगे तो कहां जायेंगे ये लोग ? अत्यंत अपमानित और दुख में झुलस रहे हमारे इन भाईयों

के साथ हमें प्रेमसे व्यवहार करना चाहिए।'' केवल वर्धा के सेविकाओं को ही नहीं, सभी स्थाना ``की सेविकाओं को भी इसी आशय के पत्र उन्होने भेजे।

देश में परिस्थिती बडी ही गंभीर और विचित्र बन गई थी। पाकिस्तानसे इतनी बडी संख्या में लोग आएंगे और एक भयानक त्रासदी लोगोंको झेलनी पडेगी, इसका अनुमान राज्यकर्ताओं को नहीं था। इस पेचीदा स्थिती ने सरकार की नाक में दम कर दिया था। दिल्ली जैसे शहर में जनवरी महिने में कडाके की ठंड होती है। ऐसे में खुली छावनियों में रहनेवाले निर्वासित बने लोगोंका बुरा हाल था। उनकें मन में आक्रोश और क्रोध की आग भी धधक रही थी। ऐसे में महात्मा गांधी ने पाकिस्तान को ५५ करोड रुपये देने के समर्थन में अनशन शुरू किया जिसने आग में तेल का काम किया। पूरे देश में उनके इसी हठ का विरोध होने लगा। दिल्ली में भी निर्वासितों की छावनी बडी ही प्रक्षुब्ध थी। उन्हे काबू में रखना बूतेसे बाहर हो रहा था। इसी बीच, जो होना नहीं चाहिए था, हो गया। ३० जनवरी १९४८ को सायंकालिन प्रार्थना सभा के लिए जा रहे महात्मा गांधी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। गोलियां दागनेवाला युवक था नथूराम गोडसे एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।

इसी घटना के बाद पूरे देश में हिंसा भडक उठी। विशेषतः महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के घर जलाए जाने लगे। आपसी बैर रखनेवाले लोगोंने भी अपने बैरियोंसे बदला ले लिया। नथूराम गोडसे हिंदुत्ववादी, हिंदुमहासभा का कार्यकर्ता और किसी जमाने में संघ से संबंधित होने के कारण, रा. स्व. संघ और हिंदु महा सभा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। देशभर गिरफ्तारियां होने लगीं। श्री. गोलवलकर गुरुजी से लेकर संघ के सभी अधिकारीओं को जेल में भेजा गया। हिंदुमहासभा के कार्यकर्ता भी गिरफ्तार कर लिए गए। वयोवृद्ध स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी को भी नहीं छोडा गया। राष्ट्र सेविका समिती की अकोला शाखा की कमलाबाई सोहनी, कराड की इंदिराबाई दिवेकर, बेलगांव की कु. जोगलेकर, वाई की सावित्रीबाई गोखले आदि सेविकाओंको भी पकडा गया किन्तु शीघ्र ही रिहा कर दिया गया। अचानक उत्पन्न हुई इस स्थिती का सामना करना आवश्यक था। समिती के कार्य की जडें गहरी जम ही रही थीं कि तभी इस घटना ने उस पर कडा प्रहार कर दिया। विभिन्न स्थानों पर सेविकाओं की गिरफ्तारियों का सिलसिला यू ही जारी रहा तो समिती में अपनी बहु-बेटियों को भेजनेवाले अभिभावकों के बिगडने की संभावना थी, क्यों कि ये लडकियां स्वयं किसी अन्याय के विरुद्ध लडने के लिए जेलो में नहीं डाली जा रही थी। निरपराधियों को इस तरह दंडित किया जाना कदापि उचित नहीं था। मौसी जी भी इस बातसे सहमत थीं। माई नागले, कळमकर, काकू परांजपे आदी सहयोगी बहनोंसे विचार विनीमय करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंची की ऐसी अस्थिर स्थिती को देखते हुए समिती

के कार्य को स्थगित कर दिया जाए। तदनुसार उन्होंने प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को तार देकर सूचित किया। विभिन्न शाखा स्थानों की कार्यवाहिकाओं को भी इस निर्णय से अवगत कराया गया। इस संबंध में कई सेविकाओं ने मौसी जी से प्रत्यक्ष मिलकर और पत्रादि भेजकर पूछा - ''समितीपर जब कोई प्रतिबंध नहीं है, तो समिती का कार्य क्यों स्थगित किया जा रहा है ? डरने की क्या बात है ?''

मौसी जी ने उत्तर दिया, 'युद्ध में भी विजय सामने दिखाई देने पर भी कभी अचानक ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है, कि आनेवाले यश का ध्यान रखते हुए भी थोडा पीछे हटनाही पडता है।''

११

समिति का अज्ञातवास

शाखाएं बंद हो चुकी थी। फिर भी सेविकाओं का एकत्रित होना जारी था। स्थान स्थान पर भजन मंडलियां, प्रार्थना केन्द्र, संस्कार केन्द्र चलाए जाने लगे। समिति का कार्य नए नाम धारण कर चलता रहा। सभी कार्यक्रम होते थे, केवल, ध्वजवंदन नहीं होता था। इन केन्द्रों द्वारा सार्वजनिक मंगलागौरी पूजन, हरितालिका व्रत, नवरात्रि-उत्सव जैसे समारोह मनाए जाते थे। मंगला गौरी पूजन के लिए तो पांच सौ तक सेविकाएं एकत्रित हुआ करती थीं। ऐसे कार्यक्रमों के लिए विभिन्न अवसरों पर सेविकाएं एक साथ आतीं तो थीं, किंतु मन में एक आतंक रहता था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दूर दराज के गांवो में भी पहुंच चुका था। अतः उनके स्वयंसेवक घर-घर में थे। पता नहीं, कब किसकी गिरफ्तारी का समाचार आयेगा, यह डर हमेशा बना रहता था। वैसे आम जनता भी काफी सहम गई थी।

प्रतिबंध के कारण संघ का अधिकारी वर्ग बंदी बनाया गया था। संघ पर लगी पाबंदी हटवाने की बडी कोशिसे की जा रही थी। परंतु वे सफल नहीं हो रही थी। संघ स्वयंसेवक इस अन्याय के विरुद्ध लढने के लिए मचल रहे थे। सबका ध्यान संघ के निर्णय पर लगा था। अंत में प्रतिबंध हटाने का कोई मार्ग न बचा तो संघ ने सत्याग्रह की घोषणा की। हजारों युवक सत्याग्रह के लिए सज्ज थे। सरकारी नौकरी, शिक्षण, किसी बात की उन्हें परवाह नहीं थी। अपने न्यायसंगत अधिकार को पाने के लिए तरुण रक्त उबाल ले रहा था। गांव गांव में गुप्त रुप से परचे निकाले जाने लगे। संघ स्वयं सेवक सत्याग्रह के लिए सड़को पर आने लगे। हजारों की संख्या में जेले भरने लगे। समिति सेविकाओं ने इस कार्य में यथाशक्ती उनकी सहायता की। गुप्त परचे निकाल कर उन्हें बांटना , किसी नियोजित स्थान पर वे परचे पहुंचाना, आदि काम सेविकाएं करती थी। साथ ही इन सत्याग्रहियों की आरती उतारकर उन्हें बिदा करती और संघ स्वयंसेवकों के हौसले बुलंद करती थी। मौसी जी की सूचना के अनुसार ही यह सब काम चल रहा था। ऐसी स्थिती में भी जितना बन पाता, मौसी जी प्रवास करती और जनसंपर्क बढाती थी। इसी बीच मौसी जी

के बेटे दिनकर का विवाह तय हुआ। मौसी जी ने स्वयं उसकी निमंत्रण-पत्रिकाएं लिखी, जिनमें प्रारंभ में आमंत्रण था और अंत में समिति के कुछ सूचनाएं लिखी थी। बंद लिफाफे में यह निमंत्रण पत्रिकाएं भेजी गई और उस विवाह समारोह का रुपांतर समिति की गुप्त बैठक में हुआ। मौसी जी ने यह दिखा दिया कि प्रतिकूल परिस्थिती में भी किस तरह अपना काम किया जा सकता है। संघ पर लगा प्रतिबंध उठवाने के लिए समिती को भी कुछ प्रयत्न करने चाहिये, ऐसा इसी बैठक में तय किया गया। स्थान स्थान पर मोर्चों का आयोजन किया गया। महाराष्ट्र की राजधानी बंबई में मोर्चा निकालकर संघ पर से प्रतिबंध हटाए जाने का अनुरोध सरकार से किया जाए, ऐसा निर्णय भी लिया गया। तदनुसार मौसी जी और तत्कालिन बंबई विभाग प्रमुख बकुलताई देवकुले के बीच बातचीत हुई, कार्यक्रम बना। किंतु मोर्चे के दिन मौसी जी बंबई में नहीं रहे ऐसा निर्णय हुआ। पाच हजार महिलाओं का अभूतपूर्व मोर्चा सचिवालय की ओर गया था।

मोर्चा दोपहर एक बजे आझाद मैदान से शुरु होना था। उसी दिन फोर्ट विभाग में विभिन्न कार्यालय शुरु होने के समय, युवा सेविकाओं ने हर चौराहे पर संघ पर से प्रतिबंध हटाए जाने के संबंध में पत्रक बाटे थे। मोर्चे में समाज के सभी स्तरों की बहने थी। बंबई निवासी मछवारे (कोली) समाज की बहनें भी बडी संख्या में शामिल हुई थीं। ''संघ पर से प्रतिबंध हटाईये'' और ''भारतमाता की जय'' के नारे लगाता हुआ मोर्चा सचिवालय की ओर चल पडा। किंतु काले घोडे के समीप उसे रोका गया। सेविकाएं वही बैठ गई। दो सहयोगियों समेत बकुलताई तत्कालिन मुख्यमंत्री श्री. मोरारजीभाई देसाई जी से मिलने गई। सेविकाएं इनकी वापसी की राह देखती रही। उन से मोरारजीभाई मिले तो थे, किंतु बडी बेरुखी से पेश आए। बकुलताई आदि से उन्हों ने कहा, '' संघ बंधुओं को हम इस देश के नागरिक नहीं मानते, और उनके लिए न्याय की याचना करने वाली आप सेविकाओं को भी।'' कितना अपमानजनक उत्तर था। किंतु सेविकाओं ने अपना संयम नहीं खोया। समाज के सभी स्तरों का प्रतिनिधित्व करनेवाले ऐसे ही विशाल मोर्चे पुणे और नागपुर में भी निकाले गए।

मौसी जी बंबई के मोर्चे के बारे में जानने के लिए बडी उत्सुक थी। बकुलताई ने उन्हें विस्तार से सारा वृत्तांत लिख भेजा। मौसी जी की प्रतिक्रिया थी ,'' ठीक है, अपनी ओर से हम प्रयत्नशील रहेंगी।'' मौसी जी कभी निराश नहीं होती थी। वर्धा का गुप्तचर विभाग मौसी जी के पीछे पड गया था। उनकी हर गतिविधि पर निगरानी रखी जा रही थी। गुणवंतराव मोरे एक कुशल गुप्तचर अधिकारी, मौसी जी किनसे मिलती है, उनकी दिनचर्या, समिती के काम के लिए प्रवास पर कब, कहा और कैसे जानेवाली है आदि सभी जानकारी वे प्रतिदिन अपने वरिष्ठ अधिकारी को दिया करते थे।

अंत में कई मान्यवरों के प्रयत्नोंसे संघ पर से प्रतिबंध हटा। संघ स्वयंसेवकों की निर्दोश मुक्तता की गई। ग्रहण छुट गया और संघ नई चमक दमक के साथ निखर आया। संघ शाखाएं सर्वत्र शुरु हो गई। तब मौसी जी ने भी अपनी सहयोगी बहनों से विचार विनिमय कर समिति की शाखाए भी पुनः शुरु कर दी। प्रधानमंत्री को तार द्वारा सूचित किया गया कि, '' राष्ट्र सेविका समिती अपना रोका गया कार्य पुनः शुरु कर रही है। ''

१९४९ में नागपुर में मौसी जी ने अखिल भारतीय बैठक बुलवायी। हर दृष्टी से यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। पुरे दो वर्ष समिति की शाखाए बंद थी। उसी दौरान समिति के कार्य का मौसी जी ने गहराई से चिंतन किया। बदलती परिस्थिती और बदलता दृष्टिकोण दोनों का विचार करना जरुरी हो गया था। अतः कुछ नई बाते उन्होने सबके सामने विचारार्थ रखी। उन्होने सुझाव रखा था कि प्रतिदिन मैदान पर होने वाले कार्यक्रमों के साथ ऐसे कार्यक्रम भी शुरु किये जाए जिनसे समिती समाज के अधिकाधिक समीप पहुंच सके तथा जिनके फलस्वरुप समाज के अंतरंग में समिती अपना स्थान निर्माण कर सके। इन कार्यक्रमों में शिशु मंदिर, उद्योग मंदिर, शिशुसंगोपनगृह, पाठशाला, भजन मंडल, कीर्तन और प्रवचनों का समावेश हो ऐसा मौसी जी का आग्रही प्रतिपादन था। उन्हें विश्वास था कि कीर्तन और प्रवचनों के माध्यम से हम बहुजन समाज तक पहुंच पायेंगे। यह बात आगे चलकर रामायण के अपने प्रवचनों द्वारा उन्होने सिद्ध कर दिखाई। इन नए विस्तारात्मक कार्यक्रमों पर काफी चर्चा हुई। कुछ बहनों का कहना था,

'' मौसी जी इन कार्यक्रमों के चलते समिती अपना पूर्वनिर्धारित काम नहीं कर पाएगी। समिति का कार्य से हम दूर चले जाएंगे। ''

मौसी जी उन्हें समझाते हुए बोली, '' यह बात नहीं है। प्रतिदिन शाखा में जाना जितना आवश्यक है, उतना ही समाज के पास पहुचना भी। शाखा में महिलाओं और लड़कियों का संख्या मर्यादित रहती है। उनपर तो हम संस्कार करते ही है। किंतु शिशु मंदिर की सहायता से हम न केवल नन्हीं बच्चियों पर संस्कार कर पाएंगे, उनके माध्यम से उनके अभिभावकों तक भी पहुंच सकेंगे। ''

इसी बैठक में समिति के आर्थिक व्यवस्थापन का भी नियोजन किया गया। प्रत्येक शाखा अपनी शेष निधी का आधा हिस्सा और विद्यमान वर्ष की गुरु दक्षिणा का दसवा हिस्सा केंद्र को भेजेंगी और अधिकारियों का यातायात खर्च समिती करेगी। स्थानिक अधिकारियों की सम्मति से खर्च किया जाए और खाता बहियों की जांच हर वर्ष निधी प्रमुखों द्वारा करायी जाए ऐसे निर्णय लिये गए। प्रारंभ में माई नागले निधि प्रमुख और आयव्यय परीक्षक दोनो काम करती

थी। बाद में मनोरमाबाई गोखले निधि प्रमुख तथा ताई अंबर्डेकर आयव्यय परीक्षक नियुक्त की गई।

एक अन्य विषय की चर्चा ने इस पूरी बैठक में बडी सनसनी फैला दी। विषय था समिति के नेतृत्व में परिवर्तन। कुछ लोगों के इस प्रस्ताव को काकू परांजपे ने, समिति की कार्यपद्धती नुसार, बैठक में रखा। मौसी जी बिल्कुल भी विचलित नहीं हुई। शांती ओर संयम से उन्होने प्रस्ताव सुना। कुछ क्षणों के लिए चारों और स्तब्धता फैल गई। मौसी जी बोली, '' मुझ में यदि कोई त्रृटी नजर आती हो तो नेतृत्व में परिवर्तन पर मुझे कोई आपत्ती नहीं। मैं समिति की संस्थापिका हूं, अतः प्रमुख भी मैं ही रहूं ऐसा मेरा आग्रह कदापि नहीं है। संगठन मुझसे बडा है। अतः जो भी निर्णय ले, सोच समझकर विचारपूर्वक ले।'' वास्तव में नेतृत्व में परिवर्तन किसि भी सेविका कों रास आने वाली बात नहीं थी। बैठक मं उपस्थित सेविकाओं ने एक राय में निर्णय लिया कि, '' नये प्रमुख का प्रश्न उठता ही नहीं है।'' और यह विषय भी वहीं समाप्त हो गया। वैसे देखा जाये तो यह प्रश्न मौसी जी की प्रतिष्ठा का था। उनकें लिए काफी मात्रा में अपमानजनक भी था। किन्तु मौसी जी ने उस बारे में कोई मतप्रदर्शन नहीं किया। और इस तनावपूर्ण परिस्थिती में भी उनका संतुलन जरा भी डगमगाया नहीं। इसी वर्ष के अंत में काकू परांजपे अपनें लड़के के घर दिल्ली रहने लगीं। मौसी जी को पता चलते ही उन्होने कहां, ''यह तो अच्छा ही हुआ, अब दिल्ली में भी समिति की शाखा शुरु हो सकेगी।'' इतना विश्वास था उन्हें अपनी सहयोगी बहनों पर। उसी विश्वास को सार्थक करते हुए काकू परांजपे ने १९५० में दिल्ली में समिति की शाखा की स्थापना की। दिल्ली की बहनों से उनके संबंध प्रगाढ होते गए। समिति के कार्य को स्थिरता दिलाने और अपने लिए भी थोडी सहायता की अपेक्षा से नागपुर की दो सेविकाओं को उन्होने दूर की सोचकर दिल्ली के रिश्ते भिजवाए। इस का उन्हें बहुत लाभ हुआ। दिल्ली में समिति के कार्य को जरा गति मिल ही रही थी, कि अचानक काकू को कैंसर की भयानक बीमारी ने धर दबोंचा। कुछ ही दिनों का खेल था। अगस्त १९५१ को इस भयंकर बिमारी में काकू का निधन हो गया। लगभग समिति की स्थापना के समय से काकू परांजपे ने मौसी जी का साथ निभाया था। हर बात में मौसी जी उनसे विचार विमर्श किया करती थी। एक कृतीत्व की धनी और बुद्धिमान सहयोगी को खो देने का दुख मौसी जी के लिए बहुत बडा आघात था।

किन्तु किसी भी कारण से निराश होना मौसी जी ने कभी सीखा ही नहीं था। मृत्यु ने जीवनभर उनके साथ प्राणघातक खिलवाड किया था। अनेक निकटवर्तियों की मृत्यु के आघात उन्होने झेले थे। बीत गई सो बात गई, यही उनकी जीवन-नीति थी। अतः काकू की मृत्यु का आघात

भी उन्होने झेल ही लिया। और पुनः अपने काम में जुटाई की परिस्थिति समिति की दृष्टी से उत्साहवर्धक नहीं थी।दो ढाई साल बंद रहने के कारण समिति का कार्य बहुत ही छितरा - बितरासा हो गया था। अनेक प्रशिक्षित सेविकाएं विवाहोपरांत ससुराल जा चुकी थी। और शाखा बंद रहने के कारण उनके रिक्त स्थान की पूर्तता करने नया प्रशिक्षित वर्ग तयार नहीं हो पाया था। समिति स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में जो प्रौढ सेविकाएं दैनंदिन शाखा का कामकाज देखती थी, वही थोडा बहुत काम कर रहीं थी। आगे चल कर उनका भी शाखा आना बंद ही हो गया था। अतः दैनिक शाखाओं की भाँति प्रौढ सेविकाओं की साप्ताहिक शाखा चलाना भी दुभर हो गया था। लगभग सभी सायं शाखाओं पर युवा सेविकाएं ही अधिकार पद पर थी। शिशु वर्ग से लेकर तरुण वर्ग तक ही शाखाएं सिमट कर रह गई थी।

गांधी हत्या के बाद हुई गिरफ्तारियां और दंगों के कारण सभी भयभीत थे। सरकारी कर्मचारियों कि बहु-बेटियों ने शाखा से पूरी तरह मुँह फेर लिया था। और तो और इस आतंक के कारण शाखा चलाने के लिए स्थान भी उपलब्ध नहीं होते थे। इसके विद्यालयों ने भी अपनी नीतियां बदल डाली थी। स्वराज्य में गांव गांव जितनी कठिनाईयां आ रही थी उतनी तो अंग्रेजी राज में भी नहीं आई थी। मौसी जी परेशान थी, दिन रात इसी बारे में सोचती रहती थी। गांव गांव जाकर पुरानी सेविकाओं से मिल जुल रही थी। उन सेविकाओं से वे कहती, " आप क्यों डरती हैं ? आप कोई सरकारी कर्मचारी तो नहीं है फिर सरकार से क्यों डरा जाएं ? " इस पर सेविकाएं कहती, " हमे घर से अनुमति नहीं है।" अधिक तर प्रश्नोत्तर इसी प्रकार के होते और मौसी जी की बैचेनी बढती जाती। उन्हें एक विचार बार बार सताया करता कि इतनी आशा आकांक्षाओं के साथ , अनेक कठिनाइयों से जूझकर जो कार्य शुरु किया था। कहीं वह बंद न पड जाए। किंतु वे निराश नहीं हुई। उन्हें अपनी कार्य पद्धति पर पूरा विश्वास था। अतः बैठके लेकर वे समिति के काम काज का मार्गदर्शन करतीं। १५ दिसंबर १९५० को एक बैठक कल्याण में आयोजित की थी। लेकिन उसी दिन श्री. वल्लभभाई पटेल के निधन का समाचार आया। मौसी जी ने तुरंत उस दिन का कामकाज स्थगित किए जाने की सूचना दे दी।

इस बैठक में भविष्य के कार्य की दृष्टि से काफी विचार विमर्श किया गया। बैठक में ताई दिवेकर, काकू रानडे , काशीताई कुलकर्णी , बकुलताई देवकुले ,इंदुताई देव , जेठी दिवाणी आदि अधिकारी उपस्थित थे। संघ प्रतिबंधक काल में सेविकाओं ने जो कार्यक्रम की बात शुरु किए थे उनमें भजनों का भी समावेश था। कल्याण के भजनों की एक खास यह थी कि सभी भजन युवतियों द्वारा संगीतबद्ध किए गए थे।संत तुकडोजी महाराज के राष्ट्रीय विचारों को पोषक, कई भजन उनमें थे। मौसी जी ने विशेष रुप से यह कार्यक्रम सुना। इसी बैठक में

भारत के विभाजन पर आधारित '' भारत माता की मन की बात '' शीर्षक अपना लेख मैं ने पढ कर सुनाया था जिसे सुनते-सुनते जेठी देवाणी रो पडी थी। सभी व्यथित हो गए थे। मौसी जी ने मुझे पास बुलाया और प्रेम से मेरी पीठ सहलाई। वह स्पर्श बहुत कुछ कह गया। यही स्पर्श आगे चलकर मेरे लेखन कार्य का सम्बल बना। इसी बैठक में मौसी जी ने कहा कि इस प्रकार के ललित साहित्य का संस्कार समाज की मानसिकता में गहरा पैठ सकता है। उनका कहना था कि किसी भी प्रसंग विशेष को लेकर समाज प्रबोधन का प्रयास किया जाना चाहिए। आगे चलकर अपने रामायण के प्रवचनों में उन्होंने विविध प्रसंगों के दृश्य दिखाने का प्रयोग आग्रह से किया और करती रहीं। प्रत्येक बैठक में रामरक्षा (एक सायं स्तोत्र) आदि के पठन के बाद मौसी जी, उपस्थित सेविकाओं को अपने कलागुणों की अभिव्यक्ति का अवसर दिया करती थी। तब कोई भजन गाती, कोई स्वरचित कविता, लेखादि पढ कर सुनाया करती थी। इन सब की प्रशंसा के फलस्वरुप कई श्रेष्ठ लेखिकाएं और कवयित्रिया समिति को मिलि।

बैठक समाप्त हुई और सेविकाएं अपने गावों को लौट गई। फिर भी समिति, के कार्य को अपेक्षित गति नहीं मिल रही थी। बीच के अंतराल के कारण सर्वत्र बडी शिथिलता आ गई थी। भुला भटका कोई पत्र आता तो मौसी जी की आशाएं पुनः पल्लवित हो उठती। १९५० प्रारंभ हुआ। वार्षिक बैठक के संबंध में ताई दिवेकर ने मौसी जी को पत्र लिखा। उनका सुझाव था कि, ''यह बैठक पुणे में ली जीए। भारत में उन सब्री स्थानों की प्रमुखों को जहां समिति की शाखाएं थी, पत्र भेजे जाएं। इस बैठक के लिए सभी को बुलाया जाएं और भावी कार्य की दिशा निर्धारित की जाएं। यह प्रयोग करके देखते है, क्या होता है ?''

ताई जी की सुचनानुसार सभी शाखाओं की प्रमुखों के नाम पत्र भेजे गए। दिवाली के पश्चात पुणे में यह बैठक सुनिश्चित की गई। स्थान था पेरुगेट के समीप वाला ब्राह्मण कार्यालय। लगभग दो सौ सेविकाएं इस बैठक के लिए उपस्थित थी। वातावरण में उत्साह था और एक ताजगी थी। इस बैठक में उपस्थित सेविकाओं में आधे से अधिक युवा सेविकाएं थी। बैठक प्रारंभ हुई और दुसरे दिन मौसी जी के छोटे भाई के निधन का समाचार लिए एक पत्र आ पहुंचा। प्रश्न उपस्थित हुआ कि कैसे अब कार्यक्रम पूरा होगा ? अनेक तर्क वितर्क किए जाने लगे। किंतु बैठक पूर्व नियोजित ढंग से पूरी हुई।

पत्र रात को मिला था। उस रात के सभी कार्यक्रमों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। दूसरे दिन प्रातः दस बजे की गाडी से मौसी जी घर जाने वाली थी। प्रभात शाखा और तत्पश्चात् के अन्य कार्यक्रम उसी तरह रहें जैसे तय किए गए थे, मानों कुछ हुआ ही नहीं। उपस्थित सेविकाओं से अनुमति लेकर मौसी जी निकल पडी। उन्हों ने इस अवसर पर जिस संयम का परिचय दिया

उस देख हम सब स्तिमित थी। शेष बैठक का संयोजन श्रीमती ताई दिवेकर और ताई आपटे ने किया। इस बैठक ने तो मानो अखिल भारतीय बैठक का रुप धारण कर लिया था। सायं शाखा, चर्चाओं तथा बौद्धिक वर्गों के कारण शिबिर जैसा वातावरण बन गया था। इस बैठक का संचालन इंदुताई देव ने किया। बैठक में उपस्थिती भी अच्छी थी और कार्यक्रम भी अच्छे हुए; फिर भी समिति के कार्य में उत्साह नहीं आ रहा था। जिन सेविकाओं का विवाह हो गया था, वे घर - गृहस्थी और बाल बच्चों के चक्कर में इस तरह उलझ गई थी। कि शाखा में आना उनके लिए कठिन होता गया था। इधर मौसी जी को एक ही बात सताए जा रही थी कि शिथिलता का यह सिलसिला यूँ ही निरंतर चलता रहा, तो सभी निष्क्रिय हो जायेंगी। अतः शाखाओं में से कोई न कोई कार्यक्रम निरंतर चलते रहना आवश्यक है। अपनी सहयोगी सेविकाओं से इस बारे में वे लगातार विचार - विमर्श करतीं थी। एक दिन गोखले भाभी से उन्होंने कहा,

'' भाभी, मुझे लगता है अब नागपुर के विभिन्न भागों में जाकर हमें बैठकोकी आयोजन करना चाहिए।''

भाभी सुन रही थी किन्तु असमंजस में थी। उनकी बात उन्होने मौसी जी से कह डाली। वे बोली ,

'' मौसी जी , बात तो आपकी ठीक हैं। किंतु संदेशा भेजने के लिए और सबको इक्ठ्ठा करने के लिए तीन चार बहनों का होना तो आवश्यक है ना ? मान लीजीए यह काम हो जाता है, फिर आमंत्रित बहनें आनी तो चाहिए न ?''

मौसी जी ने झट उत्तर दिया, कोशिश करके देखते है। शुन्य से शिखर खडा करने की क्षमता वाली मौसी जी का आशावाद अपराजेय था।

''ठीक है। किंतु किस काम के लिए इकठ्ठा होने का संदेश दिया जाए ? ''

'' अरे हां, बात तो आपने पते की कही। वैसे भाभी आप भजन अच्छा गाती है ना ? और योगासन भी आपने सीखें हैं। बस फिर क्या, योगासन वर्ग के लिए सबको बुलायेंगे ? ''

दोनों ने मिलकर यह प्रयोग शुरु कर दिया। हर विभाग के लिए एक एक दिन तय कर दिया और उस विभाग की परिचित सेविकाओं को सूचित किया कि, '' हम आ रही है। योगासन वर्ग के लिए बहनों को एकत्रित करों।''तद्नुसार गोखले भाभी और मौसी जी विभिन्न विभागों में जाने लगी। अपनी मीठी आवाज में पहले भाभी भजन गातीं और फिर योगासन सिखाती थी। अंत में मौसी जी समिति की शाखा की जानकारी देती थी। उपस्थितों की संख्या कभी

पचीस-तीस होती कबी पांच-छह, परंतु दोनों ने हार नहीं मानी। भरी दोपहर की तेज धूप में भी उनके पांव कभी थमे नही। मन में एक ही लगन थी, सामने एक ही लक्ष्य था कि अनगिनत कठिनाइयों से झुझते हुए शुरु किया हुआ कार्य कहीं बंद न पड जाए।कडी कसौटी की घडी थी। ऐसे में, मौसी जी का मानना था कि समिति की शाखाएं पूर्ववत शुरु करने के लिए अथक परिश्रम ही एकमेव मार्ग है। अन्यथा जीने के लिए संघर्ष करने वाला समिति का यह पौधा वृक्ष होने से पहले ही मुरझा जाएगा। योगासनों का प्रयोग लोकप्रिय रहा और कई दिनों तक चलता रहा। इसके साथ अब एक सुनिश्चित योजना तैयार करने की उन्होंने ठानी। इसी योजना के अंतर्गत प्रार्थना केन्द्र का प्रारंभ हुआ जिसे प्रार्थना शाखा कहा जाने लगा। प्रार्थना -शाखा में पठन किए जाने वाले श्लोक , आरती इत्यादि छपवाकर विभिन्न गांवों में वितरित किए गए। मौसी जी ने सबसे कह रखा था कि जिन स्थानों पर ध्वजारोहण की अनुमति न हो वहां देवी मां की तस्वीर रखकर प्रार्थना - शाखाएं ली जायें। हालात इतने खराब थे के कि यह निर्णय मौसी जी को अकेले ही लेने पडे , क्यों कि चर्चा आदि करने के लिए कोई था ही नही। गिनी पांच-दस बहनें थी। जिनमें काकू रानडे, ताई आपटे, ताई दिवेकर, माई नागले, काशीताई कुलकर्णी, तथा ताई अंबर्डेकर प्रमुख थी। मौसी जी की बैचैनी वे अच्छी तरह समझती थी इसीलिए शाखाएं पुनः शुरु करने के लिए वे अनथक परिश्रम कर रही थी।

शायद ये कठिनाइयां कम थी कि मौसी जी को पीडाओं ने घेर लिया और उनसे जुझना पडा। एक दिन गोखले भाभी और मौसी जी नित्य नियमानुसार प्रार्थना शाखा के लिए आ रही थी। काफी दूर जाना था। इसलिए रिक्षा करनी पडी। किंतु पता नही कैसे रिक्षा उलट पडी। भाभी, मौसी जी पर गिर पडी। पचास साल का नाजुक देह वह छिपी मार सह न पाया। पलभर के लिए आँखों के सामने अंधेरा छा गया। किंतु वे उठी और भाभी से बोली, " भाभी , हम आज का शाखा का कार्यक्रम रद्द नहीं करेंगे।" और इससे पहले कि भाभी कोई उत्तर दे उन्होने सामने से आती रिक्षा को रोका और अंदर जा बैठी। कार्यक्रम तो पूरा हुआ , किंतु आगे आठ दिनों तक मौसी जी को बहुत दुख सहना पडा। उन्होने अपनी कभी परवाह नहीं की। वास्तव में , संघ प्रतिबंध के बाद के दस वर्षों में मौसी जी को बहुत कष्ट सहने पडे, शारीरिक भी और मानसिक भी थे। किंतु दुखती रग की वेदनाएं असहनीय हो रही थी। बात यह थी कि बडा बेटा मनोहर और उसकी पत्नी पद्मा में बात बात पर झगडे होने लगे थे। अनबन बढती जा रही थी। टुटने की सीमा तक तनाव बढ गया था। मौसी जी को बरबस दोनों में सुलह कराने के लिए बीच बचाव करना ही पडता था। वे चाहती थी कि कम से कम तीन नन्हें नाती - पोतों का ख्याल कर बेटा और बहू सुलह कर लें। किंतु सब व्यर्थ साबित हुआ, पद्माताई घर छोडकर चली गई। मौसी जी के सारे प्रयासों पर पानी फिर गया। बाहर लोग मौसी जी पर ताने कसने लगे- " बडी चली

है देश की गृहस्थी चलाने, अपना घर तो संभाले नही संभला , दुसरों का संभालने चली है। अब पहले अपना घर संभालो फिर लोंगों को उपदेश देना। जितने मुंह उतनी बातें। बोलने वालों के मुंह कौन बंद करें। मौसी जी सब ताने चुपचाप सुनती रहीं और नन्हें पोते - पोतियों के लिए मनोहर के पास नागपुर आ गई। पुनः एक बार उन पर पारिवारीक जिम्मेदारी आन पडी। किंतु इस परिस्थिती को भी उन्होंने दृढतापूर्वक संभाला। लोगों के तानों और निंदा के कारण वे हताश नहीं हुई और एक बार स्वीकारा हुआ कार्य व्रतस्थ रहकर करती रहीं।

मानसिक तनाव की त्रासदी के साथ किसी सेविका की कही एक बात ने उन्हें और अधिक परेशान कर दिया। हमेशा की तरह वे और भाभीजी योगासनों के वर्ग के लिए गई थी। वहा एक बहन ने उनसे कहा,

'' मौसी जी, आप स्वयं तो पक्की हिंदुत्ववादी है, आपके बेटे भी पहले संघ के कार्यकर्ता रह चुके है। फिर यह कैसे हुआ ?''

मौसी जी कुछ समझ न पाई। उन्हों ने पूछा, '' क्या हुआ ?मैं कुछ समझ नहीं पाई। आप अपनी बात जरा स्पष्ट करेंगी।

वह बहन बोली, '' ठीक है स्पष्ट ही कहती हूँ। सुना है, आपके बेटे कम्युनिस्ट बन गए है ?''

''आप कैसे कह रही है ?''

''वर्धा में आपके घर में आचार्य अत्रे और खोब्रागडे दो दिन रुके थे। अत्रे अब कम्युनिस्ट बन गए है यह तो सभी जानते है। इसके अलावा आपका बेटा दिनकर इन दिनो नागपुर के ''मराठा'' समाचार पत्र का काम करता है।''

''देखिए, बेटे अब बडे हो चुके है। वे किसी भी पार्टी का काम कर सकते है। आप मुझे इस मामले में कैसे दोषी मानती है। वैसे इस बात का आपके पास क्या सबूत है ?''

इस पर वह बहन कुछ नहीं बोली।

बात यह थी कि संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन के सिलसिले में आचार्य अत्रे तथा श्री. खोब्रागडे दोनो वर्धा आए थे। उनके ठहरने की व्यवस्था मौसी जी के घर की गई थी, क्योंकि उनका घर बडा था। मौसी जी तब वहा नहीं थी। उनके बेटे दिनकर का श्री. अत्रे से अच्छा परिचय हुआ। आगे चलकर नागपुर से समाचार पत्र ''मराठा'' का संस्करण प्रकाशित होने लगा।

दिनकर को समाचार पत्र के व्यवसाय में रुचि थी। अत: उसने "मराठा" में काम करना शुरु कर दिया। बात का बतंगड बना देने में लोग वाकई बडे माहिर होते हैं। संघ के वरिष्ठ अधिकारियों की भी कुछ दिनों तक यही गलत धारणा बन गई थी।

१२

कृतित्व की नई दिशाएं

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और बाद की परिस्थिती में बहुत अंतर आ गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोग सोचने लगे थे कि, अब किसी राष्ट्र कार्य की आवश्यकता नहीं है। अब हमारी जिम्मेदारी पूर्णत: सरकार पर है। चिंता की कोई बात नहीं है। रोटी, कपडा और मकान का प्रबंध तो सरकार करेगी ही। किंतु बात इतनी आसान भी नहीं थी। सुदृढ समाज के लिए पोषक निश्चिंत वातावरण तेजी से नष्ट हो रहा था। समाज में कई जटिल प्रश्न निर्माण हुए थे। विश्वयुद्ध के जमाने से कई लडकियां नौकरी करने लगीं थीं। संयुक्त परिवार व्यवस्था चरमराने लगी थी। स्त्री-मुक्ति की विचारधारा एक नया रुप धारण कर रही थी। नए विचार, नया रहन सहन, पारिवारिक संबंधों की संकीर्ण संकल्पना लोंगों पर हावी होती जा रही थी। मौसी जी हर घटना का और हर मोड का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही थीं। वे अनुभव करने लगी थीं कि नारी का केवल राष्ट्रीय विचारों से प्रेरित होना ही पर्याप्त नहीं है। उसे अच्छी गृहिणी भी बनना ही पडेगा। क्योंकि सुगृहिणी पर ही समाज तथा राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है। अत: भारतीय परंपराओं पर आघात न करते हुए भी बदलते समयानुसार अच्छें संस्कार करने वाली नारी की अधिक आवश्यक्ता है। इसके लिए कोई नया कार्यक्रम प्रारंभ करना होगा। बेचैन मौसी जी ने एक नए कार्यक्रम की खोज शुरु कर दी। आज से २५-३० साल पहले ही उन्होंने अनुभव किया था कि महिलाओं के लिए एक स्वतंत्र पाठ्यक्रम होना चाहिए। उन्होने अपने विचार विदर्भ की एक विदुषी रमाबाई तांबे को सुनाए। इनके पति कुछ समय के लिए मध्य प्रदेश के राज्यपाल रह चुके थे तथा वह स्वयं अखिल भारतीय महिला परिषद की कार्यकर्ती थीं। मौसी जी एक दिन उन्हें मिलने गई और बोली, "आप महिला परिषद का इतना काम करती है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि पाठशालाओं में दिया जाने वाला शारीरिक शिक्षण लडकों और लडकियों के लिए अलग अलग हो ? यही नहीं जिस प्रकार लडकों से एक उत्तम और जिम्मेदार

नागरिक बनने की अपेक्षा की जाती है उसी प्रकार लडकियों से स्वस्थ, सुदृढ और उत्तम गृहिणी बनने की अपेक्षा क्यों न की जाए? क्यों न इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई अनुरुप पाठ्यक्रम केवल महिलाओं के लिए अलग से शुरु किया जाए? क्योंकि उत्तम रोगमुक्त और संस्कारीत स्त्री-पुरुष निर्माण करने का पाठशाला ही एक सर्वोत्तम साधन है। अत: उत्तम गृहिणी निर्माण करने का विशेष पाठ्य पाठशालाओं में शुरु करने की सिफारिश क्या आप की महीला परिषद सरकार से करेंगी ?'' किंतु श्रीमती तांबे ने मौसी जी के इसी प्रस्ताव पर विशेष ध्यान नहीं दिया । मौसी जी इतनी आसानी से हार मानने वाली नही थीं। इसी कालावधी में उन्होने अपने यही विचार पुणे के एक युवक लेखक श्री. अमरेन्द्र गाडगील को सुनाए। इनसे एक पूरी योजना लिखवाली। उसकी अनेक प्रतियां बनवाकर उन चिंतनशील महिलाओं और पुरुषोंको भेजीं जो इस पश्न पर हार्दिकता से विचार करते थे। इन में प्रमुख थे भारतरत्न अण्णासाहेब कर्वे , डा. कृ श्री. म्हसकर, पुणे के शिक्षण विशेषज्ञ डा. ग. श्री. खैर , कमलाबाई देशपांडे, अनसूयाबाई काले, अनाथ महिला आश्रम की ताराबाई बस्तीकर . श्रीमती प्रभावतीबाई जकातदार आदि। किंतु किसी ने भी मौसी जी को कोई समर्थन नहीं दिया। सामान्यत सभी का एक ही कहना था कि, जमाना आगे दौड रहा है। महिलाएं समानाधिकार के लिए झगड रही थी। ऐसे में इस अलग पाठ्य की कल्पना उन्हें बिलकुल रास नहीं आएगी। फिर भी मौसी जी निराश नहीं हुई। वर्धा के '' गांधी मैमोरिअल लेप्रसी फाँडेशन'' के प्रमुख डा. रा. बी. वारदेकर, तथा डा. प्रमिला वारदेकर को उन्होने अपनी योजना बताई। दोनों ने मौसी जी की कल्पना का स्वागत किया। डाक्टर बोले ''मौसी जी आप दूसरों की सम्मति की प्रतिक्षा करती ही किस लिए? आपके संगठन में कितनी ही सुविद्य और चिंतनशील सेविकाएं हैं । उनकी सहायता से आप अपनी योजना छुट्टीयों में एक वर्ग से कार्यान्वित क्यों नही करती ? ''

डा. वारदेकर पति पत्नी की सुचना मौसी जी ने मान ली। किंतु वह अकेली यह काम नहीं कर सकती थीं। यह भी निश्चित नहीं था कि गृहिणी विद्यालय की योजना लोगों कों एकदम पसंद आती और अपनी लडकियों को गृहिणी विद्यालय वर्ग के लिए तुरंत भेजने को तैंयार हो जाते। इसके लिए आवश्यक था कि पहले इस कल्पना का व्यापक प्रचार प्रसार हो। अत: बंबई की कार्यवाहिका बकुलताई देवकुले से मौसी जी ने इस बारें में चर्चा की। वे दोनों और इंदुताई देव (श्रीमती अय्यर) आदि सेविकाओं ने मिलकर बंबई में इस सिलसिले में एक महिला अधिवेशन के आयोजन का निर्णय लिया । इसकी सारी जिम्मेदारी मौसी जी ने बकुलताई को सौप दी। बकुलताई ने भी उसे सहर्ष स्वीकार किया।

अधिवेशन के लिए मई १९५३ की दो,तीन और चार तारीखें सुनिश्चित की गईं। मौसी जी को लगा, इस अधिवेशन के उपलक्ष्य में समिति कि विचार अधिकाधिक लोंगों तक पहुंचाने के लिए उनका अपना एक प्रकाशन हो। तदनुसार "सेविका" के वार्षिक अंक के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस अधिवेशन कि लिए राष्ट्रीय विचारोंवाले और महिलाओं के शिक्षण का हार्दिकता से विचार करने वाले तथा महिलाओं के प्रश्नों को प्रमुख स्थान देने वाले चिंतनशील लोगों को आमंत्रित करने का मौसी जी का आग्रह था। इन में श्री. अण्णासाहेब कर्वे, कमलाबाई देशपांडे, यमुनाबाई हिर्लेकर, डा.म्हसकर आदि लोगों के नाम मौसी जी ने सुझाए। वह चाहती थीं कि ये सब लोग महिलाओं के शिक्षण के संदर्भ में अपने विचार नि:संकोच हो कर व्यक्त करें। इसी इरादे से उन्होंने सब को बुलाया था। बकुलताई ने इस बारे में श्री. ब.ल. बष्ट से भी बातचीत की थी। उन्होने भी गृहिणी विद्यालय की कल्पना का स्वागत किया था। उनका मानना था कि यह योजना बहनों के लिए जरुरी भी है और उन्हे पसंद भी आएगी।

अधिवेशन की अध्यक्षता श्री. अण्णासाहेब कर्वे करे ऐसा अनुरोध करने मौसी जी तथा बकुलताई स्वयं उनके यहां गई। अपने आने का उद्देश्य कर्वे जी को मौसी जी ने बताया। छूटते ही तो उन्होंने आने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि महिलाओं के लिए आवश्यक जो पाठ्यक्रम उन्होने शुरू किया था, उसमें वे स्वयं सफल नहीं हो सके। वे बोले कि, "स्वयं महिलाओं को उनकी "गृहतागमा तथा पंडितागमा" पदवी ओछी लगने लगीं। समाज भी इन पदवी प्राप्त महिलाओं से बंबई विश्वविद्यालय की पदवी प्राप्त लोगों को श्रेष्ठ मानने लगा। अत: महिलाओं के लिए ही खास तौर से बनाया पाठ्य मुझे विवश होकर बदलना पडा और बंबई विश्वविद्यालय का पाठ्य ही शुरु करना पडा। आज महिला विश्वविद्यालय की बडी -बडी इमारते आप देख रही है किंतु वह वास्तविक यश नहीं है।"

इस पर मौसी जी ने कहा, " आपका अनुभव अवश्य कडवा है किंतु उतना ही मार्गदर्शक भी है। इसीलिए हम चाहती हैं कि आप अधिवेशन में आ कर हमारा मार्गदर्शन करें।"

अण्णासाहेब बोले, " आपका आग्रह मैं, इसीलिए टाल नहीं पा रहा क्यों कि पचास साल पहले हम पुरुष महिलाओं के उद्धार का विचार कर रहे थे। आज आप महिलाएं स्वयं ही अपनी प्रगती का मार्ग खोज रहीं है। यही बात बहुत प्रशंसनीय है। इसीलिए मैं आपका निमंत्रण स्वीकार करता हूं।"

नियोजित कार्यक्रमा नुसार १९५३ के मई माह में स्त्री जीवन विकास परिषद हुई । बाहर गांव से आने वाली सेविकाओं के रहने का प्रबंध किंग जॉर्ज याने आज के राजा शिवाजी हाईस्कूल में किया गया था। पास ही के बडे मैदान में शामियाना लगाकर अधिवेशन के कार्यक्रम हुए । इस परिषद के लिए गुजरात तथा मध्यप्रदेश , महाराष्ट्र से करीब २५० से ३०० सेविकाएं आई थी और बंबई से लगभग ५००० महिलाएं उपस्थित थीं। परिषद में विभिन्न विषयों पर परिचर्चा , विचार गोष्टी तथा मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित किए गए थे । इन्हीं कार्यक्रमों के साथ एक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थे। प्रदर्शनी का मुख्य आकर्षण था काकू रानडेद्वारा बनाए गए कपास के पुतले। इन पुतलों को देख सभी दंग रह जाते थे। इसी तरह गिरगांव शाखा ने गुडियों के माध्यम से सोलह संस्कारों का अपूर्व दर्शन कराया था। इस प्रदर्शनी में बहुत विविधता थी। विद्यालय की पांच कक्षांओं तक यह प्रदर्शनी फैली थी। प्रभावती देवी ने इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। तथा "सेविका" के वार्षिक अंक का प्रकाशन श्री. बालशास्त्री हरदास द्वारा किया गया। इस परिषद में पारित प्रस्ताव इस प्रकार थे : -

१) गृहिणी विद्यालय के वर्ग छुट्टियों में लिए जाए।

२) आकाशवाणी पर , चित्रपट संगीत पर मंत्री श्री. केसकर द्वारा लगाई पाबंदी के लिए उनका अभिनंदन किया जाए।

३) विद्यालयों में धार्मिक शिक्षण दिया जाए।

४) छल अथवा जबरदस्ती से किए जाने वाले धर्मांतरण पर सरकार स्वयं रोक लगाए।

इस परिषद की अध्यक्षा मौसी जी थी। बंबई में यह परिषद काफी चर्चित रही। समाचार पत्रों ने भी उसे अच्छी प्रसिद्धि थी। तत्पश्चात गृहिणी विद्यालय के एक महिना चलनेवाले वर्ग मई में शुरु हुए। पहला वर्ग पुणें में हुआ जिस में पचास-साठ महिलाएं उपस्थित थीं। दूसरे वर्ष बंबई में इस वर्ग का आयोजन हुआ। वहा भी पचास-साठ लडकियां उपस्थित थीं। मौसी जी ने लगभग बीस दिन वर्ग में उपस्थित रहकर उपस्थितोंका मार्गदर्शन किया। इस वर्ग की लगभग सभी शिक्षिकाएं सुविद्य होने के साथ ही समिति की सेविकाएं भी थी। और विशेष बात यह थी कि सभी ने महिने भर उपस्थितों को विनामुल्य पढाया था। मौसी जी की शिक्षा दीक्षा का ही यह परिणाम होगा शायद !

गृहिणी विद्यालय में प्रवेश पाने के लिए गृहिणी का १५ वर्ष की आयु तथा ११ वी तक पढ़ाई होना अनिवार्य हो ऐसा तय किया गया। इस विद्यालय का पाठ्य हिंदी में प्रकाशित किया गया था।

लगातार तीन वर्ष, वर्ग के आयोजन के बाद १९५७ में पुणे में मई महिने में फिर एक बार "स्त्री जीवन विकास परिषद" का अधिवेशन आयोजित किया गया। इस बार श्रीमती इंदिराबाई देवधर अधिवेशन की अध्यक्षा थी। बंबई की तरह यहां भी एक प्रदर्शनी आयोजित की गई थी; जिसने शहर में अच्छी प्रशंसा पाई थी। इसी वर्ष से बंबई में गृहिणी विद्यालय का शुभारंभ हुआ जहां तीन वर्ष का पाठ्यक्रम शुरु किया गया। गृहिणी विद्यालय में "गृहिणी विद्या" नामक एक वार्षिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाने लगी। गृहिणी विद्यालय के रुप में मौसी जी के विचारों को एक निश्चित दिशा और आकार प्राप्त हुआ। सन १९५८ से बकुलताई देवकुले के मार्गदर्शन में गृहिणी विद्यालय का तीन वर्षीय पाठ्यक्रम सुचारु ढंग से प्रारंभ हुआ। उसे सरकारी मान्यता भी मिली। इस पाठ्यक्रम की पहली टुकडी ने १९६६ में परीक्षा दी और अच्छी तरह सफलता भी प्राप्त की। समिती की विचारधारानुरुप और मौसी जी के मार्गदर्शन में स्थापित यह समिति की सर्वप्रथम संस्था थी। इस संस्था के माध्यम से समिति ने समाज के एक अंग को स्पर्श किया था। मौसी जी इसकी अध्यक्षा थी। इस समय "गृहिणी विद्यालय और भारतीय स्त्री जीवन विकास परिषद" स्थाइ रुप से ठाणे स्थित अपने भवन में स्थलांतरित हो गई है।

मौसी जी की स्त्री जीवन विकास परिषद में प्रदर्शनी लगाने की कल्पना बंबई और पुणे में साकार हुइ। सभी ने प्रदर्शनीयों को बहुत पसंद किया। तब मौसी जी को लगा कि अन्यत्र भी यह प्रयोग करना चाहिए। तद्नुसार १९५६ में नागपुर में प्रदर्शनी का आयोजन सुनिश्चित किया गया। इंदुताई गोखले, प्रमिलाताई मुंजे, कुसुमताई साठे आदि से इस विषय के बारे में विचार विनिमय हुआ। और निर्णय किया गया कि १८५७ से १९४७ तक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए प्रयत्न और ध्वज के इतिहास को चित्रांकन दिया जाए। श्रीमती कुसुमताई ने तारा साने को चित्रों के विषय तय कर दिए। प्रदर्शनी की जिम्मेदारी काकू रानडे पर सौंपी गई। काकू शीघ्र ही अपने काम मे जुट गई, वह दिनरात इसी काम में लगी रहा। उनकी सहायता के लिए नागपुर की कुछ सेविकाएं रोज आती थी। काकू ने कपास से कई चित्र बनाए और अच्छे चित्रकार से १८५७ का युद्ध, स्वा. सावरकर का समुद्र में कूदना, न्यायालय में लोकमान्य तिलक, आदि विभिन्न प्रसंग जल रंगो में रंगवाए। क्रांतिकार को की तस्वीरें प्राप्त कर लगाई गई। प्रदर्शनी की रचना और प्रस्तुति बहुत ही आकर्षक बन पडी थी। भिडे प्राथमिक शाला में आयोजित यह अपने में अनूठी थी। नागपुरवासियों के लिए इस तरह की प्रदर्शनी एक नई बात थी। पूर्णत: महिलाओं द्वारा संचालित और इतने बडे पैमाने पर आयोजित यह प्रदर्शनी सभी की प्रशंसा का विषय बन गई थी। सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री श्रीमती गंगुबाई पटवर्धन ने इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

नागपुर के हजारो लोगों ने इस प्रदर्शनी का आनंद उठाया। विषय की विविधता और स्वतंत्रता प्राप्ति का यथार्थ चित्रण यह प्रदर्शनी की विशेषता रही।

इसके बाद छत्रपति शिवाजी महाराज, स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, आदि विषयों पर प्रदर्शनियों का एक सिलसिला ही नागपुर में शुरू हो गया। नागपूर विश्वविद्यालय ने दो बार अपना स्थान इन प्रदर्शनियों के लिए उपलब्ध कराया। मौसी जी संभल चुकी थी कि प्रदर्शनी जन संपर्क का एक अच्छा साधन है। यह प्रयोग सफल होता देख उन्होने अखिल भारतीय बैठक में प्रदर्शनी का विषय उपस्थित किया और प्रत्येक गांव को विषय देकर प्रदर्शनी आयोजित करने की सूचना दी। इन प्रदर्शनियों के आयोजन में उद्देश्य था कि राष्ट्र सेविका समिति अधिकाधिक मात्रा में जन जन तक पहुंचे साथ ही समाज के सामने भी कुछ शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायी बात रखा जाए।

नागपुर की प्रदर्शनियों से मिली कुछ धनराशि मौसी जी ने वहां की कुछ सेवाभावी संस्थाओं को दे दी। फलस्वरूप अन्य संस्थाओं से भी मित्रता के संबंध बनाए जा सके। किसी भी व्यक्ति या संस्था से स्नेहभाव बनाए रखना कोई मौसी जी से सीखे। इस संदर्भ को वे कहा करती, "प्रत्यक्ष रुप से हम सब से मिल नही सकतीं। किंतु पत्र लिखकर संबंध बनाए और बढाए जा सकते है। व्यक्ति के सुख दुख में स्मरणपूर्वक पत्र लिखना चाहिए। उसके हृदय तक पहुंचने का यह एक विश्वसनीय मार्ग है." दूसरों से कहतीं और मौसी जी स्वयंम् भी पत्र लिखने में अत्यंत तत्पर रहती थी। उन्होने सैंकडों पत्र लिखे थे। उनका पत्राचार प्रचंड था।

इस प्रकार लोगों तक पहुंचने के अनेक मार्ग मौसी जी ने ढूंढे थे। मन में एक ही धुन थी कि यह समाज सुसंस्कारित हो और देश का भविष्य उज्जवल बनें। इसी दृष्टी से वे सेविकाओं को विभिन्न कार्यक्रम दिया करती थी। वे जानती थी किं किसी न किसी प्रकार से समाज को एकत्रित किया जाना ही चाहिए। जनता से सहयोग की अपेक्षा करनी हो, तो अपने संगठन के प्रति उनके मन में विश्वास निर्माण करना हमारा कर्तव्य है। संघ प्रतिबंध के काल में मौसी जी ने श्रीमती नलुताई काणे से कहा थी, "नलुताई, हम नागपुर के विभिन्न भागों मे जाकर योगासन के वर्ग, कुछ भजन और आरतिंया, आदि गाती है, क्यों न केवल भजन के लिए महिलाओं को एकत्रित किया जाए"

नलुताई ने कहा, "ठिक है, कोशिश करके देखते है।" मौसी जी को प्रत्येक व्यक्ति के गुणों की सही परख होती थी। उसी का यह उदाहरण है। नलुताई काणे को गाने का बडा शौक था। वे स्वयं बडी अच्छी आर्मोनियम (संवदिनी) बजा लेती थी। उनके इसी गुण को परख कर मौसी जी ने उनके सामने भजन वर्ग चलाने का प्रस्ताव रखा था। जिसे नलुताई ने सहर्ष स्वीकार

किया। वे प्रयत्नों में जुट गई। अपनी बचपन की सहेली श्रीमती नलिनीबाई गाडगील के घर उन्होने प्रथम भजन मंडल का शुभारंभ किया। इस भजन मंडल का नाम 'माजघर' रखा। माजघर का अर्थ है बीच का गोल कमरा। दस-बारह महिलाएं आने लगी। भजन के साथ साथ पठन कार्य भी होने लगा। धार्मिक विषयों के साथ समकालीन गतविधियोंकी कुछ पुस्तके भी पढ़ी जाने लगी। मौसी जी जब भी नागपुर में रहती, ''माजघर'' में अवश्य सहभागी होती थी। किंतु मौसी जी वहां के कार्य से संतुष्ट नही थी। उन्हें अधिक शास्त्रीय ढंग से भजन-गायन की अपेक्षा थी। जैसे तैसे किसी काम को निपटा देना उन्हें कतई पसंद नहीं था। रसोई बनाना हो या भाषण देना, पूरे अभ्यास से ही किया जाए इसपर वह विशेष बल देती थी।

मौसी जी किसी कार्य के लिए पुणे गई थी। वहां उन्होने श्री. सबनीस गुरुजी का भजन सुना। वह भजन गायन उन्हें बहुत अच्छा लगा। पूछताछ करने पर पता चला कि वे भजन वर्ग भी चलाते है। मौसी जी ने उनसे पूछा, ''क्या आप बाहर गांव भजन वर्ग ले सकेंगे ?'' उनकें 'हां' कहते ही मौसी जी ने गोखले भाभी को पत्र लिखा। उनके पत्र को आदेश मानने वाली भाभी और उनकी सहयोगी बहन आठ दस दिन घूम घूम कर महिलाओं से भजन वर्ग के बारे में पूछ रही थी। लगभग पंधरह बहनें वर्ग में आने के लिए तैयार हो गई। ऐसी निष्ठावान सेविकाओं के कारण ही उन बुरे दिनों मे भी समिति की शाखाएं चलती रहीं। राष्ट्र सेविका समिति द्वारा महिना भर भजन वर्ग आयोजित किया गया। धीरे-धीरे महिलाओं की रुची और संख्या बढती गई। मौसी जी स्वयं महिना भर इसी वर्ग में आती रहीं। तब सबनीस गुरुजी ने कहां था, ''प्रत्यक्ष अपनी मां को सिखाने का सन्तोष मुझे मिल रहा है।'' इस भजन मंडल का नाम ''रानी लक्ष्मीबाई भजन मंडल'' रखा गया। प्रति वर्ष इस वर्ग में महिलाओंकी संख्या बढती गई और आज भी नागपुर में लगभग तीस स्थानों पर भजन वर्ग चलाए जाते है।

किंतु महिनाभर वर्ग लेने के बाद जब श्री. सबनीस गुरुजी के लौटने का समय आया तो वर्ग बंद पड जाने की नौबत आन पडी। भाभी ने मौसी जी से कहा, ''बहनें वर्ष भर वर्ग चाहती हैं। इसके लिए हमारी तैयारी भी है किंतु अब सिखाएगा कौन ?'' मौसी जी सोच में पड गई। इतनी मुश्किल से इन्हें एकत्रित किया है, अथक परिश्रम किए है, और अब यह सब अधुरा छोड देना उन्हें मंजूर नहीं था। उस समय वहां माई मराठे और दो एक सेविकाएं उपस्थित थी। उनमें से एक ने कहा,

''क्या आवश्यकता है इस झंझट की ? क्या लाभ होगा हमें ?''

मौसी जी ने कहां, ''पुनः शाखा शुरु करने का वह एक माध्यम है। इसी कारण समाज की सभी सतहों की महिलाएं हमारे पास आती है और कुछ सीखती है।''

" मैं निराश कभी नहीं थी। किंतु अशांत अवश्य थी। आज इन युवा लडकियों को देख बहुत संतोष मिला है।" उस शाम को सभी उपस्थितों को रामरक्षा के समय मिठाई बांटी गई। बैठक से लौटने वाली सेविकाओं के मन में नई उमंग जागी थी। बंबई के काम के बारे में मौसी जी चिंतित थी। बंबई में कार्य के विस्तार की गुंजाईश तो बहुत थी। किंतु इतनी विशाल बंबई में काम करना किसी अकेली के बस की बात नहीं थी बकुलताई देवकुले यूं तो बंबई की अधिक तर जिम्मेदारी संभाले थी किंतु बढती पारिवारिक जिम्मेदारीयां और निजी अडचनों के कारण वे पहले जैसा समय निकाल नहीं पाती थी। अत: किसी सहकार्यवाहिका की आवश्यक्ता बढती जा रहीं थी। मौसी जी भी इसी दृष्टी से विचार कर रही थीं, क्योंकि पुणे, बंबई. नागपुर जैसे बडे शहरों में काम बंद कर देना असंभव था। मौसी जी के सामने एक नाम आया - सुशीला महाजन। मैं उस समय विवाह कर बंबई आई थी। बचपन से मैं समिति से मेरा नाता बना हुआ था, और ससुराल में भी समिति के कार्य के लिए पोषक ही वातावरण था। मौसी जी यह बात जानती थी। सेविकाओं के परिवारों पर भी मौसी जी बारीकी से ध्यान रखती थी। शायद प्रत्येक प्रांतिक बैठक में मेरी उपस्थित उनके ध्यान में थी। इसी दृष्टी से उन्होने विचार किया होगा।

उस वर्ष १९५६ के दिसंबर में कल्याण में एक प्रांतिक बैठक थी। उस बैठक में मुझे अकेली को अलग से बुलाकर मौसी जी ने बंबई के काम-काज के बारे में पुछा। बकुलताई की मैं सहायता करुं यह सुझाव उन्होने दिया। सुनकर मैं सक्ते में आ गई। एक तो मैं बंबई मे नई थी। और दूसरे मेरी बडी बेटी तब बहुत छोटी थी। मैं समझ नही पा रही थी कि बंबई की प्रौढ सेविकाओं को छोड मौसी जी मुझेही क्यों कह रही है। मैंने अपनी दिक्कत उन्हें बताई। इस पर वे बोली,

वैसे प्रौढ सेविकाएं आपकी मदद करेंगी, परंतु तुम्हारे जैसी सेविकाओं को ही तो अब आगे आना है।"

मैंने कहा, " मौसी जी, मैं केवल बैठकों के लिए ही आ पाउंगी; क्योंकि मेरी बेटी अभी छोटी है।"

मौसी जी ने कहा, " ठीक है। उतना ही सही ; काम का बोझ कुछ तो कम होगा।" मौसी जी हमेंशा ही बैठकों पर अधिक जोर देती थी। उनके अनुसार "बैठके" एक दूसरे से मिलने की माध्यम होता है। विचारों का आदान प्रदान यहां हो सकता है।" मौसी जी की सुचनानुसार मैंने पहली बैठक का संयोजन किया। उस बैठक में केवल ग्यारह सेविकाएं उपस्थित थी। मौसी जी का मार्गदर्शन था ही सा मैंने उत्साह से काम करना शुरु किया

और आज तक कर रही हूं। दुसरों को कार्यके लिए प्रेरित करने की मौसी जी की यह शैली और तरीका बडी ही सराहनीय थी।

उन्हीं दिनों मौसी जी के मन में कई और विचार आ रहे थे। एक दिन वे बकुलताई से बोली, "जन जागरण हेतु और जन जन तक पहुंचने के लिए ऐसा कोई मार्ग ढुंढना होगा जिस पर चलते समिति को कोई अच्छा कार्यक्रम भी मिल सके। क्यों न हम झांसी की रानी की स्वर्ण जयंति विशाल रुप में मनाएं? समिति की ओर से उनका कोई स्मारक क्यों न बनवाये?" मौसी जी ने मन ही मन निश्यय कर लिया था। अपनी सहयोगी बहनों से विचार विमर्श किया और योजना पक्की हो गई। स्मारक बनाने के लिए स्थान की खोज बीज शुरु हुई। मौसी जी ने सभी को इस बारे मे सूचित किया था। नासिक से ताई मेहेंदले का पत्र आया, स्थान उपलब्ध है। पत्र पाते ही मौसी जी नासिक गई और को देखा गोले, कालनी में बारह सौ गज की जगह थी, जहां दो छोटी इमारतें थीं। उन इमारतो समेत वह स्थान खरीदने का निर्णय लिया गया। अब आवश्यकता थी पैसों की। नासिक के महिला संगठनों को आमंत्रित किया, उनकी एक बैठक ली गई, किंतु किसीने कोई विशेष समर्थन नही जताया, किंतु कोई निराश नहीं हुआ। बल्कि दुने उत्साह और उमंग से सभी सेविकाएं काम में जुट गईं।

नासिक की तरह समिति के केन्द्रीय कार्यालय वर्धा में भी एक स्मारक बनाया जाय ऐसा मौसी जी का प्रस्ताव था। उसे सभे ने स्वीकृती दे दी। तदनुसार बर्धा में रानी के जन्मदिन पर, जो कि नवंबर में आता था, उसकी प्रतिमा बनाए जाने का निर्णय लिया गया। मौसी जी ने भी कमर कस ली। वर्धा के सभी गण्यमान्य व्यक्तियों, तथा राजनीतिक नेताओं से वे मिली और अपना प्रस्ताव उनके सामने रखा। सभी ने उनकी कल्पना का समर्थन किया और मौसी जी की आशाएं बुलंद हो उठीं। किंतु मौसी जी ने जब इन जाने माने लोगों से शहर में कोई मध्यवर्ती स्थान उपलब्ध करवाने का अनुरोध किया, तो एक एक कर सबने कन्नी काट ली। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण स्थान म.गांधी, जमनालालजी, छत्रपती शिवाजी महाराज की प्रतिमाओं के लिए आरक्षित थे। अतः स्थान मिलना दूभर होता जा रहा था। इधर खामगांव के शिल्पी पंधे गुरुजी ने मौसी जी की मांग पर रानी की प्रतिमा बना भी डाली। वह मूर्ति वर्धा पहुंच गई किन्तु स्थान का अभी कोई अता पता नहीं था।

कार्यक्रम का दिन चार दिनों पर था। शुरु शुरु में स्थान का आश्वासन देने वालों ने समय पर मुंह फेर लिया था। मौसी जी की बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी। एक व्यक्ति ने सुझाव दिया कि राम मंदिर में ही किसी कोने में मूर्ति की स्थापना कर के मामला समाप्त कर दिया

जाए। मौसी जी को यह सुनकर बहुत दुख हुआ। वे वेणूताई से बोली, "कैसी विडंबना है, देखिए। जिसने शक्तिशाली अंग्रेजी का डटकर सामना किया -कहते हैं; उसकी मूर्ति की एक कोने में स्थापना कर दें। मानो मूर्ति न हुई, कोई खेल की गुडिया हो गई।"

तभी मौसी जी को समाचार मिला कि वर्धा के भूतपूर्व जिलाधिकारी के स्थान पर श्री. सप्रे नामक नए जिलाधिकारी आये है। मौसी जी तुरंत माई नागले के घर गई और उन्हें साथ लेकर नए जिलाधिकारी के कार्यालय पहुंच गई। श्री. सप्रे को मौसी जी की योग्यता की अच्छी परख थी। उन्होने तुरंत मौसी जी को अंदर बुलाया। मौसी जी की सारी बातें शांति से सुनी। उनके भी मन में झांसी की रानी के प्रति अपरंपार आदर था। तत्काल ही उन्होने वर्धा स्टेशन के पास वाला चौराहा मूर्ति स्थापन करने के लिए दिए जाने कहा आश्वासन दिया। और का कि, "आप के समारोह के एक दिन पूर्व वह स्थान आपके हाथों में होगा इसकी जिम्मेदारी मेरी रही।" वे अपनी कही बात के पक्के निकले। अत: रानी लक्ष्मीबाई की मूर्ति की स्थापना उस स्थान पर विधिवत संपन्न हुई।

अब सबको लगन थी नासिक में स्मारक खडा करने की। सब सेविकाएं उसकी तैयारी में जुट गई। नासिक का स्थान मौसी जी को बहुत पसंद आया था। एक तो मौसी जी को रामायण के प्रति गहरी श्रद्धा थी, और प्रभु रामचंद्र उनके पूज्य देवता थे। दूसरे, जिस पंचवटी मे राम जी रहे थे, नासिक की उसी पावन भूमि मे रानी झांसी का स्मारक बनने जा रहा था। नि:संदेह वे बहुत संतुष्ट थी। उन्हे ऐसा लगता था कि समिति के अपने घर में रहने में अब संकोच की कोई बात न होगी। २४ मई १९५८ ज्येष्ठ सुदी ६ को नासिक के राणिभवन में मूर्ति की स्थापना का निश्चय किया गया। दि. २३,२४,२५ तीन दिन विविध कार्यक्रमों की भरमार थी। इस कार्यक्रमों के लिए महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली आदि स्थानों से करीब ४०० सेविकाएं आई थी। उनके रहने के लिए नासिक का रुंगठा माध्यमिक विद्यालय लिया गया था। रानी लक्ष्मीबाई की मूर्ति की दि. २४ मई को शोभायात्रा निकाली गई। और बाद में उसकी स्थापना की गई। पं. सातवलेकर के हाथों "सेविका" अंक का प्रकाशन हुआ और छत्रपती श्रीमती सुमित्रा राजे भोसले द्वारा मूर्ति का अनावरण किया गया। इस समारोह के लिए डा. राजेन्द्रप्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरु, श्रीमत् शंकराचार्य, परम पूजनीय गोलवलकर गुरुजी, स्वा. सावरकर, महर्षी कर्वे, यशवंतराव चव्हाण, आदि गण्यमान्य व्यक्तियों के शुभ संदेश आए थे। रानी की वंशजा श्रीमती सुमनताई तांबे का भी उस अवसर पर सम्मान किया गया। अस अवसर पर अपने भाषण में मौसी जी ने कहा, "इस स्मारक के निर्माण में जनता का सहयोग सर्वाधिक रहा है। यही

क्यों, उन्हीं की इच्छा की परिणति इस स्मारक के रुप में साकार हुई है।राष्ट्र सेविका समिति ने जनता जनार्दन की इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए कदम बढाया। रानी लक्ष्मीबाई नारी शक्ति साक्षात अवतार है। नारी शक्ति की रक्षक होती है। किंतू समय आने पर आत्मरक्षा के लिए वह भक्षक भी बन सकती है। झांसी की रानी नारी के रक्षक और भक्षक रुप का जीताजागता उदाहरण है।''

यह संस्था पंजीकृत है और इसका ट्रस्ट बनाया गया है। प्रारंभ में इस ट्रस्ट के सदस्यों में सर्वश्री का भा. लिमये, उत्तमराव पाटील, राजाभाऊ साठे आदि बंधु वर्ग हुआ करता था। मौसी जी के बाद वं. ताई आपटे और आज मा.उषाताई चाटी इस की अध्यक्षा है। इस टस्ट द्वारा एक शिशु मंदिर तथा छात्रावास चलाया जाता है। साथ ही राष्ट्र सेविका समिति की बैठकों और शिबिरो के लिए इस संस्था का भवन एवम स्थान उपलब्ध रहता है।

१३

पारिवारिक तनाव

मौसी जी नासिक के कार्यक्रम में बहुत व्यस्त थीं। एक महिना पहले आ कर बडे उत्साह से सारा कामकाज संभाल रही थीं। वहा उपस्थित किसी को भी इस बात की कल्पना नहीं थी कि सतही तौर पर शांत दिखने वाली मौसी जी के मन में कितनी बैचैनी थीं। सच पुछिये तो उस समय मौसी जी घरेलू परेशानियों से बुरी तरह त्रस्त थी। घर-गृहस्थी में कोई एक चिंता तो होती नहीं। अनेक परेशानियां और उलझने आए दिन सताते रहती थी। नासिक स्मारक का समारोह समाप्त होने पर अपनी बेटी श्री. वत्सलाताई को लिखे पत्र में उनकी मनोव्यथा व्यक्त होती है। ये पत्र बहुत कुछ कह जाते है। वे लिखती है -

" चि. कमलाकर से विवाह की बात की थी, परंतु वह इसके लिए राजी नहीं हैं। अब तुम ही इस विषय पर लिखो उसे। "

" आज तुम्हे एक बडा ही दुखद समाचार दे रही हूँ। हालही में निकले "मिनीमम वेजेस एक्ट" के कारण छपाई के धंदे में बहुत दिक्कते आ रही है। अतः दिनकर को अपना छापखाना बेचने के अलावा कोई चारा नहीं था। सो उसने नागपुर के किसी को वह बेच भी डाला। कितनी उम्मीदो से शुरु किया था यह व्यवसाय। इस तरह बंद करना अत्यंत क्लेशदायक है।"

"इन दिनो अपने परिवार की सारी व्यवस्था ही चौपट होती दिख रही है। पता नहीं कब स्थिरता आएगी ? कुल मिलाकर मेरे जीवन में सुखी और संतोष के दिनों की अपेक्षा चिंता भरे दिन ही अधिक आए है। किन्तु किसी बात को लेकर रोते रहना मेरा स्वभाव नहीं। अतः जैसे हो सके एक एक कदम घिसती घसिटती अपने आप को धकेल रहीं हूँ। फिर भी कभी कभी यह सब मेरी सहनशक्ती से परे चला जाता है और मैं परिस्थिती के बोझ तले दबती जाती हूँ। "

कुछ दिनों बाद नागपुर से भेजे अपने पत्र में उन्होने वत्सलाताई को लिखा -

" इन दिनों चारों ओर से बहुत ही बुरे दिन घिरकर आ रहे है। तुम्हें स्मरण होगा, दिलीप के उपनयन समारोह में काकूजी की एक सहेली ने मुझसे कहा था, "लक्ष्मीबाई तुम्हारी गृहस्थी को किसीकी नजर ना लगे।" सच पुछो तो यह सुनकर हर्ष की बजाय उस समय मुझे बहुत दुख हुआ था। उसकी बात हमारी पारिवारिक परिस्थिती से एकदम विपरित थी। वास्तव में हमारे परिवार की एक सदस्या बनकर आने के बाद उसका कर्तव्य था कि घर में बडी बुजूर्ग होने के कारण आमंत्रितों का आगत स्वागत करने का दायित्व गर्व के साथ संभालती। किन्तु वही परिवार के विघटन का कारण बन जा रहीं हैं।"

"पता नहीं क्यों, किसी किसी के भाग्य में मनका चैन होता ही नहीं है। मेरे माता पिता ने बचपन से ही हर परिस्थिती से जूझना सिखाया था। परिस्थिती से हारकर कर्तव्य से मुंह फेर लेना उन्हे स्वीकार नहीं था। अतः कभी कभी मन निराश अवश्य होता है। किन्तु वह निराशा क्षणिक होती है और मै पुनः कार्यरत हो जाती हूं। मेरे इस पत्र के कारण तुम्हें कष्ट तो अवश्य होगा। परंतु अपने मन की बात किसी से कह देने से मन का बोझ कम हो जाता है। थोडा आराम मिल जाता है। इसलिए लिखा है।"

"मेरे जीवन नाटक का अभी तीसरा अंक प्रारंभ हुआ है। अभी दो अंक शेष हैं। आगे क्या क्या होने वाला है, यह तो राम ही जाने। खैर! छोडो ये बातें, सेविका अंक के बारे में तुम्हारे विचार पता चले। समिती के वर्ग के लिए तुम्हारे बच्चों के बचपन के खिलौने और पुस्तकें आदि, जो आज तुम्हारे किसी काम के नहीं है, किसी के हाथ भिजवा दो।"

"मै रविवार को पुनः नासिक जा रही हूं। वहां जाकर हिसाब-किताब का काम पूरा करना है। दस हजार रुपये ऋण का भारी बोझ है सिर पर। जब तक यह ऋण लौटाया नहीं जाता, चैन से बैठना संभव नहीं है।"

"जून के अंत तक मैं वर्धा जाऊंगी। काकुजी भी उस समय वहां लौटने वाली है। अतः हमारे आने तक बापू से कहना किं अपने बच्चों को वर्धा ही रहने दें। क्योंकि एक तो काकूजी तीन वर्ष बाद अपने मायके गई हैं। दूसरें अगले दो-तीन वर्षों में वे पुनः मायके नहीं जायेंगी। मेरी जिम्मेदारियों से तुम भली भाती परिचित हो। लेखा-जोगा पूर्ण होते ही, भविष्य में क्या करना है, यह प्रश्न तो उठेगा ही। अतः उस पर विचार करना भी आवश्यक है। बच्चों की जिम्मेदारी मुझ पर है, मैं समझती हूं। परंतु दूसरी ओर बाईस वर्ष से जिस संगठन का कार्य किया, उससे अचानक मुंह फेर लेना भी तो संभव नहीं। साठ बरस की होते ही यह काम छोड दूंगी, ऐसा विचार किया था तब इस तरह की परेशानियां से जुझना पडेगा, यह तो सोचा भी न था।

" लगता है समस्याएं निर्माण करके भगवान मेरी परीक्षा ले रहे है। बापू को समझा बूझाकर नागपुर की बजाय वर्धा में ही रख लो। "

इन पत्रों में मौसी जी का मन स्पष्ट रुप से प्रतिबिंबित होता है। एक ओर समिति का विस्तार और उससे जुडी सैंकडों चिंताएं थी, तो दूसरी ओर बच्चों की समस्याएं मुँह बांए खडी थी। पद्माताई और बापुसाहब (मनोहर) के बीच तनाव बढते ही गए। और एक दिन बच्चों को छोडकर पद्माताई घर से चली गई। इस घटना ने मौसी जी पर भारी आघात किया। सामाजिक कार्य करने वाले हर व्यक्ति के काम से अधिक उसके व्यक्तिगत गुणों-अवगुणों की ओर लोगों का अधिक ध्यान होता है। उसका व्यक्तिगत जीवन एक खुली किताब होता है। उसके निजी जीवन की अच्छी बुरी घटनाओं के अनुसार उसके अच्छे या बुरे होने का मुल्यांकन किया जाता है। मौसी जी, इसका अपवाद कैसे हो सकती थीं। बहु (पद्माताई) के इस प्रकार घर छोड़ देने के कारण मौसी जी की कडी आलोचना हुई। वास्तव में मौसी जी का इस घटना से कोई संबंध नहीं था। बहु-बेटा दोनों पढे लिखे थे। अच्छा-बुरा समझने लायक भी थे। इस विवाह-विच्छेद के लिये मौसी जी को जिम्मेदार समझने का कोइ कारन नहीं था। आजकल तो छोटी मोटी बातों पर विवाह-विच्छेद हो जाते है । परंतु उन दिनों वे आम चर्चा का विषय बन गया था।

अपने पोतेबालों की जिम्मेदारी उन पर इस प्रकार से आन पडेगी, मौसी जी ने कभी सोचा भी न था। ऐसी स्थिती में भी इस अनपेक्षित जिम्मेदारी का उन्होंने स्वीकार किया। क्योंकि समाज को संस्कारों का महत्व समझाने वाली मौसी जी को पोतेबालों को निराधार छोड देना कदापि सहन न होता। मौसी जी अब बापूसाहब के पास नागपुर में रहने लगी। बच्चें छोटे थे। अतः उनकी बहुत देखबाल करनी पडती थी। मां की अनुपस्थिती में बच्चों को मौसी जी का बहुत बडा आधार था। मई माह में तथा अन्य छुट्टियों में होनेवाले समिति के वर्गों में मौसी जी इन बच्चों को साथ ले जाती थी। बच्चों का वे बहुत ध्यान रखती किंतु अनुशासन और सदाचरणके बारे में कोई समझौता नहीं करती थी। आगे जाकर किन्ही कारणों से पिता पुत्र में भी मतभेद हो गए। और पोते ने भी घर छोड दिया। तब अपने बेटे के विरोध की परवाह किए बिना मौसी जी ने अपने पोते का साथ दिया था। उसके रहने और खाने पीने का सारा प्रबंध उन्होंने किया और उसे अपने पैरों पर खडे रहना सिखाया। उत्तम संस्कार और अनुशासन -प्रिय दादी सभी को बडी प्यारी थी।

ससुराल और मायके दोनों में मौसी जी सबसे बडी थी। अतः नित नई जिम्मेदारी को स्वीकार करते करते कई बार उनकी झोली में कटुता आई थी। मौसी जी शीघ्रकोपी थी। किंतु अपने आचरण पर उन्होने हमेशा कठोर संयम रखा था।

← पत्नी, श्री. के. पुरूषोत्तम हरी
तथा
भाऊसाहेब.

वं. लक्ष्मीबाई तथा मौसी जी केलकर. →

← अपनी दो बेटीयां और बेटोंके साथ
वं. मौसी जी

बड़ी बहन के समान प्रेम और प्र
← देनेवाली वं. मौसी जी की जेठानी
कै. उमाबाई केलकर

लेखिका सुशीला महाजन
वं. मौसी जी का →
स्वागत करतीं हुई

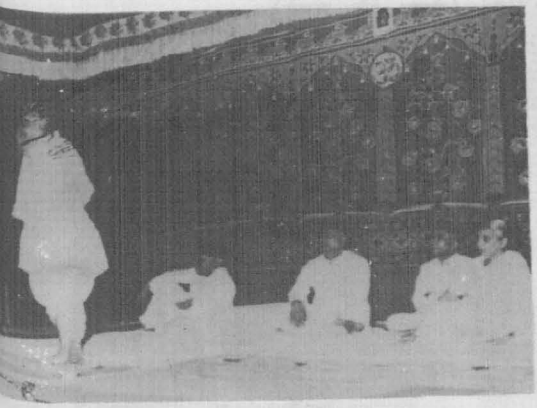

प. पू. कै. गोलवलकर गुरुजी के साथ,
पुणे संमेलन १९६८

शोभायात्रा, ग्वालियर संमेलन १९७१

वं. मौसी जी का हमेशा सामुदायिक प्रार्थना
पर जोर रहा.

वनवासी भगिनियों को संक्रांती के अवसर पर 'तिळगूळ' देती हुई सेविकाएं (येवूर, जि. ठाणे)

गंगा मैय्या की प्रार्थना करती हुई मौसी जी

मां योगशक्ती, वं. मौसी जी और गीताबे
दिल्ली संमेलन १९

← कृतनिश्चयी कार्यकर्ताओं के साथ वं. मौसी जी

वं. मौसी जी की प्रेरणा से स्थापित की गयी संस्थाएं.

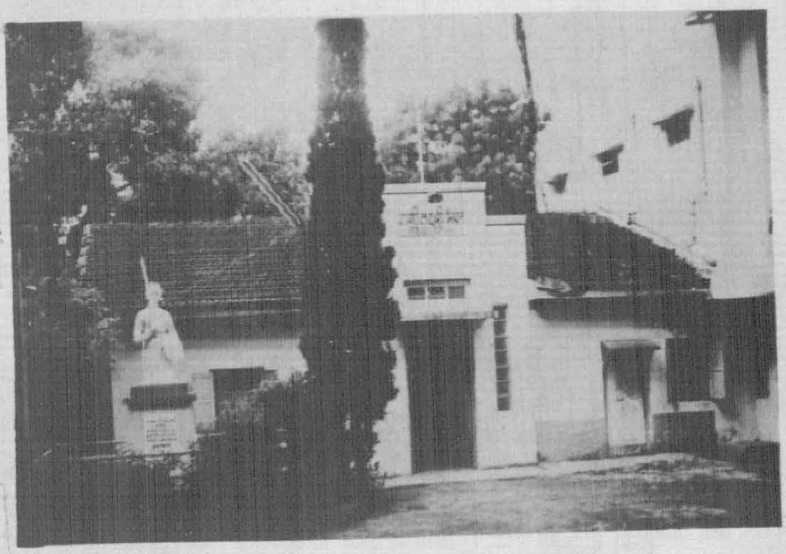

राणी लक्ष्मी भवन, नासिक.

← देवी अहल्य मंदिर, नागपू

रामायण के प्रवचनों के माध्यम से लोकजागृती का कार्य आखिर तक किया.

वं. मौसी जी के साथ राजमाता विजयाराजे शिंदे.

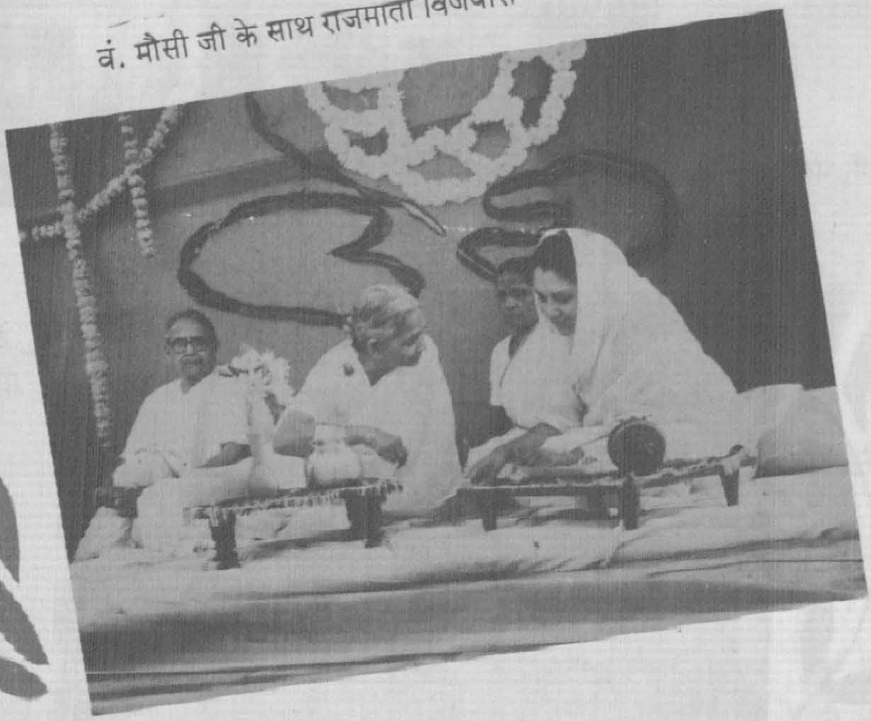

राजमाता जिजाबाई ट्रस्ट, ठाणे.

प्रेरणादायी नेतृत्व को अंतिम प्रणाम.

कार्यमग्नता जीवन होवे, मृत्यु ही चीरशांति

पारीवारीक उलझनों और सामाजिक क्रियाकलापों से टक्कर देते -देते १९६१ में समिति के २५ वर्ष पूर्ण होने जा रहे थे। मौसी जी को लगा कि ऐसे अवसर पर संपूर्ण देश की सेविकाओं का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया जाए, जिस में समिति की आज तक की सफलताओं और विफलताओं का सिंहावलोकन किया जाए। भविष्य के कार्यक्रमों की योजना बनाईजाएं। यह कार्यक्रम सेविकाओं को भी उत्साहीत कर सकेगा। मौसी जी जानती थी कि मनुष्य उत्सवप्रिय होता है। अतः पूरे भारत में समिति को कार्यन्वित करने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम दिया जाए जो पूरे वर्ष तक चलता रहे और इस कार्यक्रम का समापन मुख्य समारोह में किया जाए। तद्नुसार अत्यंत उत्साह और लगन से कार्य में जुटी हुई सेविका डा. कुसुम घाणेकर से मौसी जी ने थोंडा विचार विमर्श किया था। उन्हों ने तय किया कि इस बार नवरात्रि - उत्सव में नौ दिन प्रत्येक सेविका अष्टभुजा के सामने नंदादीप (अक्षय दिप) प्रज्वलित करेगी। समिति की स्थापना वर्धा में हुई थी। इसीलिए मुख्य कार्यक्रम का आयोजन वहीं किया जाए। तद्नुसार डा. कुसुमताई घाणेकर ने संपूर्ण योजना तैयार की और गतिविधियों की चहलपहल धूमधामसे होने लगी। गांव-गांव पत्रक भेजे गए। सभी पुरानी सेविकाओं में उत्साह की लहर दौड़ गई हर जगह यह कोशिश थी कि अधिक से अधिक सेविकाएं इस कार्यक्रम में सहभागी हों। इस कोशिस को अच्छा समर्थन मिल रहा था। कार्यक्रम के लिए भारत के कोने कोनेसे सेविकाएं वर्धा पहुंच रही थीं। पूरे वर्धा शहर में धूम मची थी। प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मालतीबाई बेडकर संमेलन की मुख्य अतिथि थी। एक दिन गोलवलकर गुरुजी ने भी सेविकाओं को मार्गदर्शन किया। पूरे वर्धा शहर में अष्टभूजा देवी की प्रतिमा की शोभायात्रा निकालने का संकल्प किया गया।

किंतु कार्यक्रम से एक दिन पूर्व मौसी जी की जेठानी श्री. उमाकाकू अचानक अस्वस्थ हो गई। उन्हें रक्त चाप का इतना जबरदस्त दौरा पडा कि वे अचेत हो गई। पुनः एक बार मौसी जी की परीक्षा की घड़ी आई। एक ओर प्राणप्रिय उमाकाकू गंभीर रूप से बीमार थी और दूसरी ओर समिति का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था। दोनों में मौसी जी की खीचातानी हो रही थी। फिर भी सम्मेलन का उद्घाटन पूर्वनियोजित ढंग से ही हुआ। और उधर रात को उमाकाकू ने दम तोड दिया। यह समाचार सुन सभी सेविकाएं सन्न रह गई। सब न सोचा कि अब अगले कार्यक्रम नही होगे। सब को लग रहा था कि प्रातः निकलने वाली शोभायात्रा भी रद्द कर दी जायेगी। किंतु अगले दिन तडके ही मौसी जी के घर से संदेशा आया कि, "कोई भी कार्यक्रम रद्द नहीं होगा। नियोजित रूप से ही शोभायात्रा भी निकाली जाए।" तभी उपस्थित सेविकाए चकित रह गई। प्राणप्रिय व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर भी मौसी जी अपने कर्तव्य में नही चूकीं। व्यक्तिगत सुख दुख और समाजकार्य का अंतर वे जानती थीं। आगे चल कर जब भी इसी प्रकार की घटनाएं

सेविकाओं के जीवन में आई, मौसी जी के इस आचरण का आदर्श समिति के कार्यक्रम पूरे करने का धीरज उन्हे बंधाता रहा।

शोभायात्रा से लौटने पर सभी सेविकाओं ने उमाकाकू का अंतिम दर्शन किया। मौसी जी केवल इसी एक दिन कार्यक्रम में उपस्थित नही रहीं। दूसरे दिन प्रातः सेविकाओं की गटशः चर्चा में अचानक मौसी जी आई और अत्यंत शांतिपूर्वक उन्होने बैठक का मार्गदर्शन किया। सायंकालीन आम सभा में भी वे उपस्थित थीं। श्रीमती मालतीबाई बेडेकर का सभा में भाषण हुआ। सांगली की सेविकाओं ने पहली बार "अष्टभुजा दर्शन" का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। आम सभा में इस तरह का कार्यक्रम पहली बार प्रस्तुत किया गया था। आगे चलकर प्रारंभ किए गए त्रैवार्षिक संमेलनों का यह प्रारंभ था क्यों कि इससे पूर्व आयोजित सम्मेलन इतने बडे स्वरुप में नहीं हुए थे।

१४

कार्यक्षेत्र का विस्तार

इ.स. १९५८ से १९६१ की कालावधी में दो उल्लेखनीय घटना हुई। सिंधुताई फाटक पती निधन के पश्चात बंबई में नौकरी करने लगीं। साथ ही वे भारतीय जनसंघ की महीला शाखा का भी काम देखने लगीं। समिति के काम के लिये उन्होने बंबई के रेस्क्यू होम की नौकरी त्याग दी। और समिति के काम के साथ ही वे दिल्ली के सरस्वती शिशु मंदिर में काम करने लगीं। जाते समय उन्होंने मौसी जी से कहा था की "मैं दिल्ली जानेवाली हूं। और वहां समिती का काम करने की मेरी इच्छा है। इससे पहले सिंधुताई ने अकोला, जळगांव, इंदौर, आदि स्थानों पर समिती का काम बड़ी जिम्मेंदारी सें निभाया था। किंतु इसी बीच वे जनसंघ का काम करने लगी और समिति का कार्य खंड़ित हो गया था। वे दिल्ली जानेवाली हैं, यह सुन मौसी जी की आशाएं पुनः पल्लवित हो गई। वैसे भी काकु परांजपे के लौटने के बाद दिल्ली में समिति का कार्य बंद ही पड़ चुका था। सिंधुताई के जाने से वही कार्य पुनः प्रारंभ हो जायेगा यह सोच मौसी जी को बहुत आनंद हुआ। मौसी जी की अपेक्षानुसार सिंधुताई ने सुस्त पड़े समिति के कार्य में पुनःनव चेतना फूँक दी। उनके भाई श्री. आबा थत्ते संघ के उच्च पदाधिकारी थे और सदैव श्री. गोलवलकर गुरुजी के साथ रहते थे। अतः सिंधुताई का संघ के वरिष्ठ लोगों से अच्छा परिचय हो गया था। इन संघ बंधुओं की सहायता से सिंधुताई ने दिल्ली में समिति की शाखाएं शुरु कीं। शाखा में स्थानीय पंजाबी महिलाएं और लड़कीयां आने लगी। धीरे-धीरे मौसी जी की राय पर समिति का काम सिंधुताई ने पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू काश्मीर आदि स्थानों तक फैला दिया। इससे पहले समिति के बारे में किसी को कुछ पता नहीं था। सिंधुताई समय समय पर मौसी जी और ताई आपटे को अपने कार्य की प्रगति का आलेख देतीं रहती। इन दोनों ने भी तत्परता से उनका योग्य मार्गदर्शन किया। आज इन क्षेत्रों में समिति का जो भी कार्य दिखाई देता है, उसका संपूर्ण श्रेय सिंधुताई को जाता है।

उन्हीं दिनों इधर डा. कुसुमताई घाणेकर का समिति की ओर रुझान बढ रहा था। उनकी योजना शक्ति और जिद् समिति के विस्तार के लिए बडी ही उपयुक्त सिद्ध हो रही थी। मौसी जी की अनुमति से उन्होंने महाराष्ट्र के बाहर समिति का प्रचार प्रारंभ किया। भिन्न भिन्न स्थानों पर या तो विवाहोपरांत या तबादलों के कारण जो सेविकाएं जा बसीं थी उनके पते मौसी जी ने प्राप्त किए। प्रत्येक प्रांत के करीब दस-बारह पते मौसी जी ने कुसुमताई को दिए। विवाहोपरांत या तबादले कारण जो भी सेविका दूसरे प्रांतो में जाती, मौसी जी उसका अता पता अपनी डायरी में लिखकर रखती थी। ऐसे पतों से उनकी अनेक डायरीयां भर चुकी थी। उनका उपयोग इस प्रकार होना था। संगठन करने वालों के लिये यह एक सबक है। कागज के टुकड़े पर नाम पता या फोन नंबर लिखना मौसी जी को कतई पसंद नही था। इन पतों के आधार पर कुसुमताई सभी स्थानों पर गई। अब वे सारा समय समिति का काम करनें लगी थीं। तामिलनाडू, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, बिहार प्रांत के प्रत्येक प्रमुख शहरों में एक एक महिना जा कर रहीं और शाखाएं शुरु कीं। स्थान स्थान पर तीन दिनों के शिबिर का आयोजन किया। शाखाएं जब सुचारु रुप से चलने लगीं तो मौसी जी ने भी सभी प्रांतो का दौरा किया। मौसी जी के प्रभावी व्यक्तित्व की छाप महाराष्ट्र के बाहर भी पड़ी। पहले विभिन्न प्रांतो में गई केवल मराठी सेविकाएं ही शाखा में आती थीं। किंतु अब स्थानिय महिलाएं भी शाखा में आने लगी। कर्नाटक में के. रुक्मिणी, सुमती शेणॉय, पद्मा शेणॉय, आंध्र में सीता लक्ष्मी, रमा देवी, कमला देवी और तामिलनाडू में लीला भार्गव जैसी कार्यकर्ती समिती की बडी उपलब्धी ही थी।

मौसी जी को अब भाषा की समस्या सताने लगी। केवल मराठी बोलने से काम नहीं बनता था। अतः साठ वर्ष की आयु में मौसी जी ने हिंदी का अध्ययन शुरु किया। और अपनी बात दूसरे को भली भाँती समझा सके इतनी हिंदी वे सिख गईं। थोडा बहुत अंग्रेजी का भी उन्होने अध्ययन किया। संगठन के प्रारंभ में जिस तरह उन्होने तैरना, साईकिल चलाना, लाठी चलाना, आदि सिखा था, सी तरह अपनी प्रौढावस्था में उन्होने भाषा अध्ययन किया था।

किसी भी प्रांत में जाने से पूर्व मौसी जी वहां के रितिरिवाजों और इतिहास की जानकारी प्राप्त करती थीं। उनका कहना था कि, "जहां जाकर काम करना है, वहां की पूरी जानकारी हमें होनी आवश्यक है।" उन्हें भिन्न भिन्न प्रांतो के ऐतिहासिक स्थलों में विशेष रुचि होती थी। किंतु अधिकतर सेविकाएं उन्हें गांव के सभी मंदिरों के दर्शन करा लातीं। मौसी जी खाने पीने की बड़ी शौकिन थी। किंतु घर की दहलीज लांघते ही जिसके यहां जो कुछ मिलता वे उसे खुशी से और प्रशंसापूर्वक खाती थीं। संगठन के लिए अपनी पसंद नापसंद तथा रुचि-अरुचि का उन्होने कभी विचार नहीं किया। परिस्थितीनुरुप रहने की आवश्यकता को वे भली भाँती समझती थीं। कभी

एक कमरे की गृहस्थी में सबके साथ सोने की बात आती तो भी वे कभी इन्कार नहीं करती थीं। खुले स्नानगृह में स्नान करना पडे तो भी उनकी शिकायत नहीं रहती थीं क्योंकि सावरकर जी की एक कविता पंक्ति उनके हृदयपटल पर गहराई से अंकित थी - "यह व्रत लिया न हमने कुछ अंधता से -।"

१९६१ के दिसंबर में सैनिकी कार्यवाही के बाद गोवा मुक्त हुआ था। वैसे १९५६ से ही जनता ने गोवा मुक्ती आंदोलन छेड़ रखा था। एक सर्वपक्षीय गोवा मुक्ती समिति की स्थापना की गई थी जिसने सत्याग्रह किया था। अनेक तरुण इस सत्याग्रह में अग्रणी रहे। संघ सेवकों ने भी बडी संख्या में इस आंदोलन में भाग लिया था। समिति की सेविकाएं भी पिछें नहीं थीं। जिन सेविकाओं के घर में पुरुषों ने आंदोलन में भाग लिया उन्हें मौसी जी ने धीरज बंधाया। एक सेविका ने मौसी जी को लिखा था कि, "मौसी जी, मेरे पति ने सत्याग्रह किया और आज उन्हें बंदी बनाया गया हैं। किन्तु मैं हिम्मत नहीं हारनेवाली। समिति से प्राप्त राष्ट्रीय विचार मुझे धीरज बंधाते हैं। मैंने अपने कर्तव्यों को पहचान लिया है। मैं निराशा को अपने समीप भी नहीं आने दूंगी।"

'मेरा अपना अनुभव भी यही है। मेरे पति मधुकरराव गोवा मुक्ती समिति के कार्यकारी मंडल में नियुक्त किए गए थे और वे बम्बई के सचिव थे। हर समय दौरे चलते रहते, आज बेलगांव तो कल नगर हवेली। समाचार पत्रों से मुझे पता चलता रहता। मेरी बेटी तब बहुत छोटी थी। और एक दिन पता चला कि सत्याग्रहियों में मधुकररावजी के नाम की घोषणा की गई थी। उन दिनों गोवा जाना याने बंदूकों की गोलियों की बौछारों में अपने पांव जाने जैसा ही था। छोडे गए सत्याग्रहियों में से एक ने मुझे बताया कि पुर्तगालियों का पक्का संशय है कि मधुकरराव गोवा में ही है। संघ के स्वयंसेवकों से मधुकररावजी का पता लगाने के लिए उन्हें बडी निर्ममता से पिटते हैं। ऐसे में यदि मधुकररावजी सचमुच गोवा जाते हैं तो उनका लौट आना असंभव हैं।" परिस्थिती की गंभीरता एकदम स्पष्ट थी। फिर भी मैनें मधुकररावजी को गोवा जानें से नहीं रोका। यह आत्मबल और शक्ति मुझे मिली मौसी जी के साथ रहने से और समिति ने दिए विचारों से।

देश के कोने कोने से सत्याग्रहियों की टुकडियां पुर्णे आ रहीं थी। केसरीवाडा और मोतीबाग कार्यालय में तो मानों किसी छावनी का रुप धारण कर लिया था। मौसी जी के आदेश पर और ताई आपटे के नेतृत्व में इन सत्याग्रहियों के भोजन का प्रबंध पुणे की समिति-सेविकाएं अथक कर रहीं थीं। ताई आपटे ने रात-दिन एक कर दिया था। सीमा पर हुई गोलीबारी में श्री. राजाभाऊ

महांकाल आदि सत्याग्रही गोवा मुक्ति की लडाई में शहीद हो गए। उनके पार्थिव देह पुणे लाए गए। ये सभी शव सड गल गए थे। किन्तु सेविकाएं अपना कर्तव्य पुरी लगन से निभा रही थीं। देश कार्य में हम भी कुछ योगदान कर रहीं है, यही सन्तोष मौसी जी के कारण ही सेविकाओं को मिला। अंत में दिसंबर १९६१ को यह लड़ाई समाप्त हुई। गोवा को स्वतंत्रता मिली। तत्काल मौसी जी और डा. कुसुमताई धाणेकर गोवा पहुंचीं। सत्याग्रहियों के घर गईं। स्थान स्थान पर उन्होंने जनसंपर्क बढाया। और गोवां में भी समिति की शाखाएं प्रारंभ कीं।

१९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। स्वतंत्रता के पश्चात् विदेशियों के साथ लड़ा गया यह पहला ही युद्ध था। इस समय भी सरकार को हर संभव सहायता करने का आहवान मौसी जी ने भारत की सभी सेविकाओं को पत्रक द्वारा किया। तदनुसार सेविकाओं ने प्रथमोपचार और निशानेबाजी के वर्ग प्रारंभ करने में सहायता कीं। मंदिरों में प्रार्थना केंद्र खोले गए। मौसी जी की सूचना नुसार उत्तरांचल प्रमुख सिंधुताई फाटक तत्कालिन रक्षा मंत्री श्री. यशवंतराव चव्हान से मिलीं। उन्होने चव्हाण जी को आश्वासन दिया कि सुरक्षा प्रबंध के लिये आपके एक इशारे पर हमारी एक सौ सेविकाएं उपस्थित हो सकती है। समिति के कार्य के प्रति दिल्ली और उत्तर में उत्सुकता बढती जा रही थी जिसके कारण समिति शाखाएं बढने लगी थीं। इससे पूर्व १९५९ में जलंधर में हुए समिति के शिक्षा वर्ग के लिए मौसी जी उपस्थित थीं और पूरी प्रगति से बहुत संतुष्ट थीं। उसके बाद १९६० में दिल्ली में भी एक वर्ग आयोजित किया गया था।

मौसी जी धीरे धीरे अपनी आयु के ६० वे साल की ओर अग्रसर हो रही थी। फिर भी उनका स्वास्थ्य ठीक था। लेकिन घुटनों में बीच-बीच पीडा हुआ करती थी। साथ ही पैरों में बल पडने की पुरानी बीमारी ने फिर सिर उठाया था। इस बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने योगासनों का अभ्यास प्रारंभ कर दिया। योगासनों की उचित जानकारी प्राप्त करने वे महर्षी जनार्दन स्वामी से मिली। और जानकारी मिलते ही योगासन करने लगीं। महिलाओं के लिए योगासनों की उपयुक्तता को ध्यान में रखकर उन्होंने अनेक लोगों से इस संदर्भ में चर्चा की। तभी से समिति में योगासन नियमित रुप से सिखाए जाने लगे।

१९६१ में स्वामी विवेकानंद की जन्म शताब्दी के उपलब्ध में एक भव्य प्रदर्शनी के आयोजन का निर्णय लिया गया। नागपुर विश्वविद्यालय का दीक्षांत सभागृह प्रदर्शनी के लिये सुनिश्चित किया गया। स्वामी जी पर आधारीत यह प्रदर्शनी सचमुच बहुत ही भव्य थी। साथ ही चीन का आक्रमण सचित्र दर्शाया गया था। श्रीमती काकु रानडे के बनाए कपास के पुतले भी एक प्रमुख आकर्षण था।

जुलाई १९६४ को मौसी जी ने सांठ वें वर्ष में पदार्पण किया। उनके स्वास्थ्य में भी अच्छा सुधार हुआ था। अतः सभी सेविकाओं ने उनका जन्म दिवस धूम धाम से मनाने का निर्णय लिया। तदनुसार विजयादशमी के आसपास नागपुर में एक समारोह का आयोजन सुनिश्चित किया गया। सभी जानती थीं कि आम जन्म दिवस समारोहों में प्रतिष्ठितों को आमंत्रण, उनके भाषण, थैली अर्पण करना, हार पहनाना आदि जो कार्यक्रम होते हैं, मौसी जी कभी स्वीकार नहीं करेंगी। अतः सोचा गया कि कार्यक्रम यदि इस तरह का हो कि समिति के कार्य को संजीवनी मिले, तो मौसी जी सत्कार का अवश्य स्वीकार करेंगी। अतः प्रत्येक सेविका ६१ सिक्कों की श्रध्दानिधी एकत्रित करे, ६१ दिवस अपना पूरा समय समिति को दें, ६१ शाखाओं को भेंट दी जाए, ६१ कथाएं सुनाई जायें, ६१ कीर्तन अथवा प्रवचन किए जायें, ६१राष्ट्रभक्ती के गीत अथवा कुछ अन्य संग्राह्य लेख समिति के लिए संकलित किए जाएं और अपने अपने संकल्प की जानकारी मौसी जी को दी जाए, ऐसा निर्णय लिया गया। लगभग पूरे देश में यह कार्यक्रम कार्यान्वित किया गया और निश्चय ही समिति शाखाओं को बढावा देने में उसकी बडी सहायता मिली।

पूर्वनियोजित रुप से मौसी जी की षष्ठ्यब्दिपूर्ति का कार्यक्रम नागपूर में बडे उत्साह से संपन्न हुआ। सभी सेविकाओं की ओर से मौसी जी को एक मानपत्र और थैली अर्पण की गई। वह मानपत्र था-

"वदंनीय मौसी जी,

आज का दिन हम सभी सेविकाओं के लिए परममंगल है। वास्तविक रुप से आपका गौरव करनेवाली हम कौन होती है। आपका गौरव तो स्वयं आपके कार्य ने ही कर दिया है।

आपने आज तक हम सेविकाओं का बहुत कौतुक किया है। आपने हर व्यक्ति के गुणों को परखा, सराहा और किसी कुशल माली की तरह उसका संवर्धन किया। प्रत्येक सेविका के गुणों को प्रोत्साहन दिया। सेविका के सुखदुख को अपना सुखदुख माना। उनकी आशा आकांक्षाओं को अपनी आशा आकांक्षा मान कर, आधिकाधिक तन्मयता निर्माण करते हुए आपने अपने कार्य को विस्तृत और व्यापक किया। सूक्ष्म निरिक्षण और स्मरण यह दोनों अमोघ शक्तियाँ आपने अर्पित की है। योजकता और प्रयोगशीलता के गुणों ने आपके जीवन में नवोन्मेष जागृत कर दिया। आप ध्येय के प्रति अत्यंत आग्रही और मार्ग के प्रति आनाग्रही है।

आपके कृतीत्व को मातृत्व और नेतृत्व जैसे परस्पर पूरक गुणों ने निखारा है। ध्येय और व्यवहार के दो ध्रुवों को आपने अपने कृतीत्व से जोड दिया है।

आपके गुणों और कृतीत्व के कारण राष्ट्र सेविका समिति का कार्य सपनों का महल या ध्येयाकांक्षी मन का हवाई किला न बनकर सामान्य गृहिणी को कृतीत्व की मिनार पर चढाने वाला सोपान बन गया है। इन सब गुणों का गौरव बढानेवाला आपका सबसे बडा गुण है, हिंदु राष्ट्र - निष्ठा। जिजामाता, देवी अहल्या और रानी लक्ष्मीबाई आपके प्रेरणा स्रोत रही हैं। जिस अष्टभुजा देवी के तेज के कारण इन भारत - कन्याओं का जीवन दिव्य आलोक से भर गया उसी अष्टभुजा देवी का वरदहस्त आप और आपके हिंदु संगठन पर भी है। वही जगन्माता आपको दीर्घायु, आरोग्य और अपूर्व कार्यशक्ति दे यही हमारी प्रभु से प्रार्थना है।''

सभी सेविकाएं इस समारोह से आनंदविभोर हो गई थीं। आज तक जीवन का दृष्टिकोण, ज्ञान, संस्कार सब जी भर कर देने वाली मौसी जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए यह समारोह आयोजित किया गया था। विभिन्न स्थानों से करीब छह सौ सेविकाएं इस कार्यक्रम में पधारी थीं।

१५

संगठन का परिवार

समिति की जडे पुन: सुदृढ हो रहीं थीं। उसे लगा ग्रहण छूट रहा था। ग्यारह प्रांतों में अब समिति की शाखाएं प्रारंभ हो चुकी थीं। अत: मौसी जी का प्रवास भी काफी बढ गया था। वर्धा में उनका वास्तव्य दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा था। किसी कार्यक्रम विशेष अथवा विवाह या उपनयन जैसे समारोह के लिए ही वे घर आतीं और पुन: समिति कार्य के लिए निकल पडतीं। समिति ही अब उनके लिए सब कुछ थी। उनकी दुनिया ही मानो अलग हो गई थी। सामाजिक समस्याओं के निराकारण का कार्य भी उन्होने हाथ में लिया था।

उन दिनों लडकियों की वेशभूषा चर्चा का विषय बन गया था। मौसी जी प्रगतिशील विचारोंवाली थीं। बडौदा वाली घटना ही लीजिए। वहां के महाविद्यालय में उनके भाषण के बाद विद्यार्थियों ने उनसे पूछा, "मौसी जी, वेशभूषा और केशभूषा के संदर्भ में आपके क्या विचार है?" मौसी जी बोली "मेरी दृष्टी से मनुष्य की बाह्य वेशभूषा से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है उसका अंतर्मन। अपने बाह्य रुप के प्रति हम जितने जागरुक होते है उतनी ही जागरुकता अपने मन को स्वच्छ और निर्मल रखने में क्यों नहीं दिखाते?" सभी छात्र और छात्राएं मौसी जी के इस उत्तर से निरुत्तर हो गए। उन्हें लग रहा था कि नौ गज की साडी परिधान करनेवाली यह महिला हमारे पोशाख को जी भर के कोसेगी। किंतु ऐसा कुछ हुआ ही नहीं। ऐसा ही प्रश्न कन्याकुमारी के विद्यार्थियों ने भी पुछा था। मौसी जी ने वहां भी यही उत्तर दिया। वेशभूषा के प्रति मौसी जी के विचार स्पष्ट थे। फिर भी वे कहा करती कि बहु बेटियों के वस्त्र उत्तान नहीं होने चाहिए, पुरुषों की वासना उत्तेजित हो ऐसे भडकिले वस्त्र वे ना ही परिधान करे तो अच्छा है। उन दिनों लडकियां में स्कर्ट पहनने का नया फैशन चल पडा था। पाठशालाओं से लेकर कालिजों तक लडकियों का स्कर्ट परिधान करना अत्यंत लोकप्रिय हो रहा था। इसी संदर्भ में मौसी जी ने अपने उपरोक्त विचार व्यक्त किए थे। इस वेशभूषा के चलते समाचार पत्रों में वाहियात विनोद छपने लगे थे। कुछ सत्य घटनाएं

भी सुनने को मिलती थीं। अतः युवा सेविकाओ से बातचित में उन्होने एक बार कहा था, '' लडकियां, यह आवश्यक नहीं कि साडी ही पहनों, लेकिन स्कर्ट से तो कहीं अच्छा है तुम पंजाबी कपडे पहन लो। बेलबॉटम या लुंगी भी चल सकती है। साथ ही अत्याधिक तंग कपडे पहनना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हितकारक नहीं होता।''

किसी अनुचित बात पर या किसी अन्याय के प्रति केवल विरोध व्यक्त करना मौसी जी को कभी नहीं आया। उस विरोध के साथ तुरंत कोई कृति न हो तो वह विरोध खोसला सिद्ध होता है। मौसी जी के इसी उपदेश को ध्यान में रखते हुए सेविकाओं ने अश्लील विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाओं पर छपे अश्लील चित्र दुकानों की शोके सो में प्रदर्शित किए जाने वाले महिलाओं के वस्त्र, महिलाओं के अंग प्रत्यंगोंका बीभत्स रुप दर्शन वाले फिल्मि विज्ञापन और पाठ्य - पुस्तकों में महान व्यक्तियो के बारे में अनादरयुक्त वाक्य आदि के विरुद्ध जोरदार अभियान छेड दिया। प्रत्येक विषय से संबंधित अधिकारियों से जाकर वे मिलि और सभी आपत्ति जनक बातें बंद करने के लिए उन्हें बाध्य किया।

गोहत्या बंदी का आंदोलन भी समिति ने हाथ में लिया। लाखों हस्ताक्षरोंवाला पत्र समिति ने पंडित जवाहरलाल जी को भेजा था। यहां एक बात का उल्लेख आवश्यक है कि समिति ने समय समय पर आवश्यक प्रश्नों के विरुद्ध अभियान अवश्य छेडे थे किंतु जब वे प्रश्न कालबाह्य हो गए, तो उनका आग्रह छोड भी दिया था।

गोरक्षण के संदर्भ में चौंडे महाराज ने मौसी जी से कहा था कि, '' समिति को चाहिए कि वह गोरक्षण को प्राथमिकता दे और हमारे गोरक्षण आंदोलन में सक्रिय रुप से सहभागी हो।'' इस पर मौसी जी ने कहा था, '' अपना कार्य छोडकर गोरक्षण का काम करें ऐसा मैं सेविकाओं से नहीं कहूंगी। हां, यदि व्यक्तिगत रुप से सेविकाओं को यह काम पसंद आता है तो मैं उन्हें रोकुंगी नहीं।''

१९६६ में पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध युद्ध छेड दिया था। प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ऐसा संकल्पवाला नेतृत्व भारत को मिला था। उन्होने आक्रमक नीती अपनाई थी। देश का मनोबल उंचा रखने के लिए बडा ही प्रेरणा दायक संदेश उन्होंने देश को दिया था। इस समय भी 'राष्ट्र सेविका समिति' ने यथाशक्ति सहायता की थी। स्थान स्थान की सेविकाओं ने जवानों को राखियां भेजकर उनका धीरज बढाया था। उन्हें तरह -तरह की भेट वस्तुएं भेजना, स्टेशनों पर नाश्ता जलपान के पदार्थ भेजना, नागरी सुरक्षा दल में अपने नाम लिखवाना, प्रथमोपचार वर्ग चलाना आदि अनेक महत्त्वपूर्ण काम सेविकाओं ने किए। कर्नाटक, बेलगांव और धारवाड की सेविकाओं का उत्साह विशेष उल्लेखनीय था।

भारत पाक युद्ध की समाप्ति पर शास्त्रीजी बातचीत के लिए ताश्कंद जानेवाले थे। मौसी जी ने सिंधुताई को लिखा कि समिति की प्रतिनिधि के नाते कुछ सेविकाओं समेत वे शास्त्रीजी से मिलें और युद्ध पीडीत महिलाओं को न्याय दिलाने की मांग पाकिस्तान से करने का अनुरोध करें। तदनुसार मा. सिंधुताई ,आशा शर्मा आदि सेविकाएं शास्त्रीजी से मिलीं और लगभग २५ हजार महिलाओं के हस्ताक्षर वाला मांगपत्र शास्त्रीजी को प्रस्तुत किया। पूरी तन्मयता से शास्त्रीजी ने समिति का कार्य सुना और संतोष व्यक्त किया। ताश्कंद की बातचीत सफल हो ऐसी शुभकामना सिंधुताई ने समिति की ओर से उन्हें दी। तब शास्त्रीजी बोले, "बहनों, आपका जैसा आशिर्वाद है, वैसा ही होगा।"

इस युद्ध के समय सिंधुताई जैसलमेर, बाडमेर, जोधपुर आदि युद्ध छावनियों में स्वयं गई। वहां की परिस्थिति को देखा, समझा और आसपास की महिलाओं से मिलकर धीरज बंधाया। एक महिला प्रत्यक्ष युद्धभूमि में आ कर लोगों को दिलासा देती है यह बात अपने में बडी विलक्षण रोमांचकारी थी। समिति की प्रेरणा से और मौसी जी के मार्गदर्शन के कारण सिंधुताई ने यह काम कर दिखाया। हालांकि इस काम में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। किंतु सिंधुताई ने उनकी परवाह नहीं की।

इसी प्रकार १९६० में डॉ. कुसुमताई घाणेकर ने स्थान स्थान पर जाकर युवतियों में काफी सरहानीय काम किया था। मौसी जी से विचार-विमर्श कर समिति का कार्य बढाने के लिए वे नये प्रयोग किया करती थीं। सांगली शहर में महाविद्यालयीन छात्राओं का उन्होने एक अच्छा गुट तैयार किया था। पढाई के पश्चात कुछ वर्ष समिति के काम के लिए देने की उन छात्रोंओं की मानसिक तैयारी थी। उन्हीं दिनो कुसुमताई ने मौसी जी को सुझाव दिया कि, " समिति की शाखा की संचालन पद्धती में कुछ सुधार आवश्यक हैं।" मौसी जी ने उनका सुझाव मान लिया। तब दो तीन बहनों ने मिलकर विचारपूर्वक 'समिति की आचार प्रणाली' की एक छोटीसी पुस्तिका निकाली। सभी शाखाओं का संचालन एक ही पद्धती से हो इसीलिए सर्वत्र इस पुस्तिका का वितरण किया गया। समिति के कार्य का विस्तार करने की दृष्टी से कुसुमताई ने चालीस से कम आयुवाली सेविकाओं की एक बैठक सांगली में आयोजित की। उस बैठक केलिए मैं पंधरा-बीस सेविकाओं के साथ उपस्थित थीं। मौसी जी उस बैठक के लिए नहीं आ सकीं। किंतु बकुलताई उपस्थित थीं। बैठक भी अच्छी हुई। उस समय सांगली शहर का संक्रमण उत्सव पुराने राजमहाल के विशाल प्रांगण में बडी धुमधामसे संपन्न हुआ। प्रात्यक्षिकों में छुरिका, खडग और अत्यंत लयबद्ध पथसंचलन प्रमुख आकर्षण रहा। प्रतिबंध उठाए जाने के बाद प्रात्यक्षिका समेत मनाया गया यह पहला ही उत्सव था। उत्सव के लिए सांगली की रानी सरकार विशेष आमंत्रित

थीं। दूसरे दिन रानी सरकार ने हमें भोजन के लिए आमंत्रित किया। उस समय राजा साहब और रानी सरकार दोनों ने मौसी जी की भूरि भूरि प्रशंसा की।

डा. कुसुमताई के उत्साह और तुफानी दौरों को देख मौसीजी को समिति का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था। बंद शाखाओ में मानो उन्होने नवजीवन फूँक दिया था। कई स्थानों पर नई शाखाएं प्रारंभ हो रही थीं। सर्वत्र कार्य में समन्वय हो और आचार-विचारों की एक ही पद्धति हो इस उद्देश से मई १९६६ में नासिक में अधिकारी प्रशिक्षण वर्ग के आयोजन का निर्णय लिया गया।

मेरी दूसरी बेटी तब केवल सात वर्ष की थी। अत: मैं इस वर्ग के लिए नहीं आ पाऊंगी ऐसा मैं ने मौसी जी को सूचित किया किंतु मौसी जी ने तुरंत लिखे पत्र में सूचित किया कि, 'केवल बच्ची छोटी है इसलिए वर्ग में अनुपस्थित रहना ठीक नहीं। जब माताएं समिति का काम करेंगी तो बच्चों का उनके साथ आना स्वाभाविक है। अन्यथा इतने दिनों तक उन्हें कहां रखेगें ? तुम अपनी बेटी को साथ ले आओ।' न केवल मुझे अपितु वर्ग के पत्रक में ही यह सुचना रेखांकित की गई थी कि छोटे बच्चों के साथ लाने में कोई आपत्ति नहीं है। और सचमुच इस वर्ग में सात-आठ छोटे बच्चे आ गए थे। मां के साथ बच्चों का आना स्वाभाविक है इस कल्पना को सबने अत्यंत सहजता से स्वीकारा था। मौसी जी का शुरु से ही यही दृष्टिकोण था। बच्चों ने भी हमें तंग नहीं किया और ना ही किसी ने कोई नापंसदगी दर्शायी गयी।

७ मई से ३१ मई तक चलनेवाले इस वर्ग के लिए महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बंगाल आदि प्रांतों से करीब पैंसठ सेविकाएं उपस्थित थीं। सभी के लिए प्रात: और सायम, शारीरिक शिक्षण लेना अनिवार्य था। इसी वर्ग में तृतीय वर्ष का प्रशिक्षण सबको मिला। कभी कभी दिया जानेवाला खडग. वेत्रचर्म का प्रशिक्षण भी यहां दिया गया। विधिवत प्रशिक्षण इसी वर्ग में दिया गया था। इस प्रशिक्षण के कुछ भाग का दायित्व संघ बंधुओं ने उठाया था। सांगली की कु. विमल कुलकर्णी (श्रीमती बापट, कलकत्ता) प्रमुख शिक्षिका थीं। काशीताई कुलकर्णी वर्ग की सर्वाधिकारी थीं। शारिरिक शिक्षण के साथ -साथ बौद्धिक में भी कोई कसर नहीं छोडी थी। समिति की अधिकारी हर दृष्टी से श्रेष्ठ हो, उसके बौद्धिक स्तरकी पहुंच नई नई उंचाइयों को छुए, ऐसी मौसी जी की मनीषा थी। इसीलिए वाचस्पती क्षीरसागर, प्राचार्य सोनोपंत दांडेकर, अप्पासाहब पेंडसे, मेजर जनरल दंडिए, डॉ. सोहनी, बालासाहेब ठाकरे, जयंतराव देवकुले आदि गण्यमान्य व्यक्तियों के उद्बोधक और ज्ञानवर्धक व्याख्यान वर्ग में रखे थे। इस प्रकार के बौद्धिक वर्गों के उपरान्त हम बक्ताओं

से खुलकर प्रश्नोंत्तर किया करती थीं। प्रत्येक अधिकारी के लिए नई आचार पद्धति का अभ्यास करना अनिवार्य होता था।

मौसी जी ने इसी वर्ग में एक और नई योजना हमारे सामने रखी। इसके अंतर्गत आसपास के १४-१५ गांवों में प्रतिदिन दो सेविकाओं को भेजकर समिति कार्य का प्रचार करना था और अंत में इसी वर्ग में पांच दिन का एक शिबिर आयोजित करना था। जहां जहां सेविकाएं प्रचार के लिए गई थीं वहां की बाल, तरुण और प्रौढ सेविकाओं को इस शिबिर के लिए बुलाना था। यह योजना क्रियान्वित की गई और उसे अच्छा समर्थन भी मिला था। कुल मिलाकर सत्तर बाल और तरुण महिलाएं पांच दिन के इस शिबिर के लिए उपस्थित हुई थीं। यह देख मौसी जी बोली, "देखिए छोटे छोटे गांव हमारी राह देख रहे हैं, उन्हें हमारी आवश्यकता है। अत: उठिए और अपने आसपास के गांवो में जा कर समिति का प्रसार और प्रचार कीजिए।"

मौसीजी के इस बात ने सभी सेविकाओं पर गहरा प्रभाव डाला। परिणामत: आगे चलकर १९७४ में जिजामाता की तीनसों वीं पुण्यतिथि के अवसर पर मुंबई विभागने एक कार्यक्रम दो महिनोंतक क्रियान्वित किया जिसमें बंबई, ठाणा तथा रायगड (कुलाबा) जिले के चार सौं गांवों में जा कर जिजामाता की जानकारी लोगों को दी।

इस कार्यक्रम के परिणामस्वरुप पश्चिम ठाणे जिले की सभी तहसीलों में समिति की शाखा ओं का शुभारंभ हुआ। उस समय जिजामाता के इस कार्यक्रम के लिए जानेवाली श्रीमती सुशीलाताई वैद्य पिछले दस-बारा वर्षो से वहां निरंतर जर रही हैं और समिति का प्रचार कार्य अनथक कर रही हैं। इस कार्यक्रम का समापन समारोह रायगड किले पर संपन्न हुआ। १९७४ में दिसंबर २४-२५ को लगभग चार सौं सेविकाएं रायगड पर एकत्रित हुई थीं। बंबई से छह बसों में सेविकाएं आई थीं। प्रात: पांच बजे पाचाड में घोष के साथ जिजामाता की समाधि को चार सौं सेविकाओं ने मानवंदना दी। उसी स्थान पर समिति शाखा के कार्यक्रम भी आयोजित किए गए। रायगड जाने से पूर्व सेविकाओं ने रात्रि का विश्राम महाड में किया था। वहां पर उन्होने 'स्वर जिजाई' यह गीतों का कार्यक्रम किया था। मौसी जी के प्रोत्साहन और प्रेरणा से ही मैं ने उस कार्यक्रम के सारे गीत लिखे थे और अरुणा लोढे ने उन्हें संगीत देने का कठिन काम किया था। दो-तीन घंटो का यह कार्यक्रम आज भी प्रस्तुत किया जाता है।

इस बात का उल्लेख यहां इसलिए किया ताकि लोग यह समझ सकें कि मौसी जी का व्यक्तित्व इतना प्रेरणा दायक हुआ करता था कि उनके अल्प मार्गदर्शन से ही सेविकाओं में आत्मविश्वास जागृत हुआ करता था जिसके फलस्वरुप वे इतने बड बडे कार्यक्रम सफलता

से कर दिखाती थीं। ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से मौसी जी सेविकाओं के कृतीत्व को पहचानतीं और उनके सुप्त गुणों को निरंतर प्रोत्साहित करती तथा सेविकाओं के व्यक्तित्व को संवारती, आकार प्रदान करतीं थीं।

स्वामी विवेकानंद मौसी जी के श्रद्धास्थानों में प्रमुख थे। भगिनी निवेदिता स्वामिजी की विदेशी शिष्या थी। स्वामीजी की तेजस्वी वाणी और शुद्ध आचरण से प्रभावित हो कर वे भारत आईं, हिंदु धर्म का स्वीकार किया और रामकृष्ण मिशन का काम करने लगीं। कलकत्ता में वे एक संस्कृत पाठशाला चलाया करती थीं।यह पाठशाला क्रांतिकारियों का आश्रयस्थान बन गई थीं। उनका मुल नाम कुमारी मागरिट था। स्वामीजी ने बदलकर उनका नाम निवेदिता रखा था। युवा वर्ग तो उनके नाम से भी अपरिचित था। अत: उनके कार्य का परिचय युवा वर्ग को कराने और उनका पुण्यस्मरण करने के लिए भगिनी निवेदिता की जन्मशताब्दि मनाने का निर्णय लिया गया। मौसी जी को उनके प्रति नितांत आदर था। उन्होने कहा कि, "एक विदेशी महिला इतनी दूर भारत आती है, यहां का हिंदुधर्म अपनाती है, यही नहीं इस धर्म की श्रेष्ठता लोगों को समझाती है! सचमुच हम हिंदुओं को उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए। वह इस पराई भूमि में, उसकी माटी से कितने सहज भाव से एकरुप हो गई थी। अत: यह हमारा कर्तव्य बन जाता है कि हम उसके कार्य से युवा पीढी को परिचित करायें। आइयें, इसिलिए हम उनकी जन्मशताब्दी मनाए।"

उस वर्ष राष्ट्र सेविका का वार्षिक अंक 'निवेदिता विशेषांक' रूप में प्रकाशित किया गया। विभिन्न पाठशालाओं में जाकर समिति की सेविकाओं ने निवेदिता जी के बारे में जानकारी दी। निबंध और वक्तृत्व प्रतियोगिता आयोजित की गईं। पाठशालाओं और महिला मंडलों ने इन सभी उपक्रमों को उत्साह से समर्थन दिया।

समिति का कार्य दिनोंदिन व्यापक होता जा रहा था। अत: एक स्ततंत्र कार्यालय की आवश्यकता प्रतित होने लगी थी। मौसी जी की इच्छा थी कि समिति के केंद्रस्थान वर्धा में ही मुख्य कार्यालय हो। उन दिनों शारीरिक शिक्षण प्रमुख डा. कुसुमताई घाणेकर ने भी इस दृष्टी से प्रयत्न किए। उन्हीं दिनों मौसीजी जिस घर में रहती थीं उसे बेचने की बात चल रही थी। एक तो इस घर से कोई धन प्राप्ति नहीं हो रही थी। दूसरे घरके रख रखाव का खर्चा दिनोदिन बढता जा रहा था। अत: मौसी जी के लडकों ने ही घर को बेच डालने का प्रस्ताव रखा था। विवाह के बाद जिस घर में उन्हों ने कदम रखे थे, जहां अनेक सुख दुख के क्षण बिताए थे उस घर से एक भावनात्मक नाता जुड जाना स्वाभाविक था। ऐसे घर को बेच देने की कल्पना उन्हें जँचती नहीं थी। उनके बुरे दिनों में इसी घर ने तो उन्हें आधार दिया था।

आज इस घर के बेच देने की बात उनका मन मानता ही नही था। किंतु बच्चों की बात में भी दम था। केवल भावना के कारण जर्जर होते उस घर को संभाले रखना कहां तक उचित था? यही सोच कर अंत में उन्होने घर बेचने की अनुमति दे ही दी। बच्चों के विवाहों के बाद उन्हीं की मांग पर मौसी जी ने संपत्ति का बटवारा कर दिया था। कमलाकर को खेती-बाडी में अधिक रुचि थी। अत: मौसी जी ने उसे उसीकी देखभाल सौंप दी थी। अनेक सेविकाओं की इच्छा थी की मौसी जी का यह घर समिति खरीदे। डा. कुसुमताई घाणेकर ने भी इस बारे में काफी पहल की। परंतु किन्हीं कारणोंसे 'राष्ट्र सेविका समिति' वह घर खरीद नहीं पाई। आगे चलकर १९६७ में गांव के ही किसी व्यक्ति को घर बेच दिया गया और उस घर से जुडी अंतिम कडी भी टूट गई। मौसी जी बहुत उदास थीं। किंतु समय की गति को वे पहचान गईं थीं। इसिलिए यह विषय उनकी दृष्टी से हमेशा के लिए समाप्त हो चुका था। कमलाकर को सभी भाइयों ने अधिकार पत्र दिया था। अत: उसी ने घर की विक्री की। सारी औपचारिकताएं पुरी कीं। मौसी जी की इच्छानुरुप केलकर परिवार की अपनी भूमि पर केलकर वाडी में कमलाकर ने घर बनाया। वर्धा में मौसी जी का घर तो समिति नहीं खरीद पाई। किंतु समिति के लिए किसी स्थान की सचमुच बडी आवश्यकता थी। अंतत: प्रमुख कार्यालय के लिए नागपुर ही निश्चित किया गया। और इस दृष्टीसे नागपुर की सेविकाओं ने और मौसी जी ने जोरदार प्रयत्न शुरू किए। नागपुर के धंतोली विभाग में नागपुर विश्वविद्यालय का एक महिला छात्रावास था। वह छात्रावास अपनी नई इमारत में स्थानांतरित होने जा रहा था। अत: विश्वविद्यालय पुराने छात्रावास को बेचने जा रहा था। मौसी जी ने जैसे ही यह बात सुनी, उस इमारत को खरीदने का निश्चय कर लिया। उसकी कीमत ९० हजार रुपये थी। मौसी जी ने तुरंत ही उन्हें १९६४ में दी गई गौरव-निधि की राशि का इस काम के लिए विनियोग किया। किंतु यह राशि पर्याप्त नहीं थी। अत: उन्होने लोगों से सहायता का आहवान किया। अनेक शुभचिंतकोने बिना ब्याज के अपने पैसे समिति को अमानत के नाते दिए। रामायण के प्रवचनों से मौसी ने वह सारा रुपया लौटा दिया। कुछ सेविकाएं मौसी जी से बोली, "मौसी जी, आप इन प्रवचनों के लिए कितना घुमती हैं, लगातार बोलने रहने से कष्ट भी तो होता ही होगा। क्यों न अहल्या मंदिर की आमदनी से पैसा लौटाया जाए? आखिर यह मंदिर सभी के लिए है ना!" इस पर मौसी जी कहती, "यह जिम्मेदारी मेरी है। आप में से कोई पैसा लौटा देगा इस आशा पर मैं हाथ पर हाथ धरे बैठ नहीं सकतीं।"

छात्रावास का स्थान मिल गया, जिसे देवी अहल्या मंदिर नाम दिया गया। समिति के प्रमुख कार्यालय का स्वप्न साकार हुआ। अनेक कार्यक्रम यहां चलाएं जाते हैं। आज भी इस अहल्या मंदिर में बालक-मंदिर, बाल सांस्कृतिक वर्ग, उद्योग मंदिर, प्रवचन, व्याख्यान

-मालाएं योगासन वर्ग, वनवासी कन्या छात्रावास और पौरोहित्य वर्ग आदि कार्यक्रम नित्य क्रियान्वित होते हैं। विवाह समारोहों और त्यौहारों के लिए भी यह स्थान लोगों को दिया जाता है । मंगल कार्य के लिए इस स्थान का उपयोग मौसीजी ने सर्वप्रथम अपने ही परिवार के एक विवाह से किया। श्रीमती नलिनी काणे को मौसीजी ने मानद व्यवस्थापिका के रूप नियुक्त किया। उनके रुप में अहल्या मंदिर का एक श्रेष्ठ व्यवस्थापिका मिली।

मौसी जी को उनके रामायण प्रवचनों में श्रीमती यमुताई संरजामे नामक एक और हीरा हाथ लगां। उनके गुणों को परख कर मौसी जी ने उन्हें इस प्रतिष्ठान की अध्यक्षा बनाया। समिति को वर्गो और बैठकों आदि के लिए अपना एक स्वतंत्र स्थान मिल गया। कुछ कालावधि के पश्चात मौसी जी जब भी नागपुर आतीं, अहल्या मंदिर में ही ठहरती थीं। कभी कुछ घंटों के लिए बेटा बेटी के घर जाती और पुन: यहीं लौट आतीं थीं। उनका कहना था कि यहां रहने पर ही यहां की कठिनाईयां समझ में आती हैं।

'देवी अहल्या मंदिर' तथा 'राणी भवन' को देखकर बंबई - पुणें की सेविकाओं को लगा कि हमें भी इस प्रकार के एक वास्तु की आवश्यक्ता है क्योंकि दिनोंदिन समिति का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता जा रहा था। शहरों में रहनेवाली बहनों के घर अब बैठकों और साहित्य आदि रखने के लिए छोटे पडते थे और अनेक कठिनाईयां भी आती थीं। इसीलिए बंबई पुणें की सेविकाओं ने स्वतंत्र वास्तु की कल्पना सबके सामने रखी और इस दिशा में काम करना प्रारंभ कर दिया। बंबई की सेविकाओं ने मौसीजी के सामने अपनी इच्छा प्रकट की और उन्होंने सम्मति दे दी। मौसी जी की सूचनानुसार वास्तु का नाम "राजमाता जिजाबाई ट्रस्ट" रखा गया। उसके लिए एक स्वतंत्र कार्यकारी मंडल का गठन किया गया। मौसी जी ने अब की बार पहले से ही कहा था कि "मुझे इस संस्था का कोई पदाधिकारी न बनाएं क्योंकि अहल्या मंदिर और राणी लक्ष्मी भवन की मैं पदाधिकारी तो हूं, किंतु उनकी बैठकों में उपस्थित रहना भी मेरे लिए दिनोंदिन कठिन होता जा रहा है। अत: मेरी इच्छा है कि मुझे और अधिक झमेलों में आप ना ही डालें तो बडी कृपा होगी। वैसे भी इसमें कोई संदेह नही की आप सब इस संस्थान का कामकाज अच्छी तरह संभाल लेंगी।" बंबई विभाग के प्रमुखों ने अपनी योजना से मौसी जी को अवगत कराया और फिर भवन निधि इकट्ठा करने का काम प्रारंभ किया।

थाने के श्री. गोविंदराव पटवर्धन जी की सहायता से थाने (पूर्व) में उद्योगपति निरंजन डालेमिया ने अपनी जगह अत्यल्प कीमत पर समिति को बेची। 'स्त्री-जीवन विकास परिषद' और 'गृहिणी विद्यालय' ने भी इसी भवन में अपना कार्यालय बनाया। दोनों संस्थाओं का उदगम 'राष्ट्र सेविका समिति' ही था। अत: मौसी जी की इच्छानुरुप निर्णय लिया गया कि

दोनों संस्थाएं एक दूसरे को सहकार्य करेगी। समिति के नाम से पत्रक निकाले गए और सेविकाओंने घर-घर जाकर धन इकट्ठा किया। एक एक रुपया कर के अस्सी हजार रुपए इकट्ठा किए गए। अर्थात इतने घरों का संपर्क समिति से आया। समिति के पत्रकों पर उसकी प्रार्थना भी अर्थसहित छपी थी। जिसका इस जन संपर्क अभियान पर अच्छा प्रभाव पडा।

देखते ही देखते राष्ट्र सेविका समिति ने एक लाख रुपयों की निधि ट्रस्ट के सुपूर्द कर दी। मौसी जी ने सेविकाओं के इस अभूतपूर्व उत्साह की काफी प्रशंसा की। वास्तु निर्माण का काम प्रारंभ हुआ और ३० अप्रैल १९७२ को मौसी जी के करकमलों द्वारा उसका विधिवत उदघाटन हुआ। इस अवसर पर 'समाज कल्याण मंत्री' सुश्री प्रतिभा पाटील भी उपस्थित थीं। सेविकाओं के आनंद और उल्लास की कोई सीमा न थी। दोपहर के भोजन के लिए लगभग एक हजार महिलाएं थी। और संध्याकालीन खुले समारोह के लिए पच्चीस सौ महिलाएं और पुरुष आए थे। इस समय एक स्मरणिका प्रकाशित की गई थी। मौसी जी संपूर्ण समारोह में उपस्थित थीं और उन्हें वह कार्यक्रम देख बहुत संतोष भी हुआ। वे बोली, "इस समारोह के कारण मुझे नई-पुरानी सेविकाओं से मिलने जुलने का अवसर मिला।" आजकल इस वास्तु में बालमंदिर से चौथी कक्षा तक पाठशाला चलाई जाती है। वाचनालय है, छात्रावास है और शादी-ब्याह, तीज त्यौहारों के लिए एक सभागृह भी है। यहां का उद्योग मंदिर भी भली भांति चल रहा है।

इस वास्तु के निर्माण के बाद से ही मौसी जी की इच्छा थी कि यहां अष्टभुजा देवी का एक छोटासा मंदिर हो। बंबई की सेविकाओं से उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। किंतु तरुण सेविकाओंने इस बारे में विशेष उत्साह नहीं दिखाया। अतः श्रीमती लीलाबाई गोडबोले और दादा गोडबोले जिन्होंने राजमाता ट्रस्ट के भवन निर्माण से ही पेश आनेवाली असंख्य कठिनाईयों से जूझते हुए वहीं दिन काटे थे, और सुशीलाबाई वैद्य, आक्का कानिटकर, ताई गाडगील आदि प्रौढ सेविकाओं से मौसी जी ने अनुरोध किया, 'हमारी तरुण सेविकाएं तो मंदिर के बारे में काफी उदासीन दिखती हैं, अब आप लोग ही इस दिशा में प्रयास करें।"

मौसी जी की इच्छानुसार आपातकाल में ही बंबई की सेविकाओं ने मंदिर निर्माण प्रारंभ कराया। यह मंदिर भवन के बिलकुल साथ लगा है। देवी की मूर्ति जयपूर से मंगवाई गई। आपातकाल में मूर्ति स्थापना के प्रति कई सेविकाएं अनुकूल नहीं थीं। उनका कहना था कि, "आपातकाल के कारण हमारे अनेक पुरुष और महिलाओं को कारागृह में रखा गया है। ऐसे में मूर्ति स्थापना के उत्सव में हमारा जी नही लगता।" मौसी जी ने कहा, नहीं, नहीं मुझे पूरा विश्वास है कि भगवती की कृपा से वे शीघ्र ही रिहा कर दिए जायेंगे" और संयोगवश जिस दिन अष्टभुजा की प्राणप्रतिष्ठा की गई उसी दिन कुछ लोगों को रिहा कर दिया गया।

थाने कारागृहसे जनसंघ के श्री. जगन्नाथराव जोशी और कुछ अन्य लोग देवी के दर्शन के लिए आए और मौसी जी से मिलकर गए। मौसी जी ने कहा, 'इतने अच्छे समारोह का समापन भी उतना ही अच्छा रहा। हमारे बंधुओं की रिहाई के कारण आज का दिन सोने पे सुहागा रहा।

मौसी जी का आग्रह रहता था कि समिति के प्रत्येक भवन में देवी का मंदिर हो। इसके दो-तीन कारण थे। अष्टभुजा समिति की कुलस्वामिनी है। दूसरे, मंदिर के कारण लोगों का हमेशा आना जाना रहेगा। वे हमेशा कहती कि मंदिर जनसंपर्क का सर्वोत्तम माध्यम है। तीसरे, परमात्मा की शक्ति पर उन्हें बहुत श्रद्धा थी। अत: उस शक्ति का कोई न कोई स्थान अपने भवन में हो ऐसी उनकी इच्छा थी। उन्हें हमेशा लगता कि सेविकाएं साल में कम से कम एक बार देवी के दर्शन करने आएं। इससे अपने भवन से सेविकाओं का संबध जुडा रहेगा। वर्धा में अष्टभुजा मंदिर बनवाने के पीछे यही उद्देश था कि अपने केंद्रस्थल में कम से कम एक बार तो सेविकाएं अवश्य आएं।

वर्धा मौसी जी का गांव था, उनकी कर्मभूमि थी। गांव के केंद्रस्थल में एक भी मंदिर नहीं था, यह बात मौसी जी को बहुत खटकती थी। अत: उन्होने ठान ली कि वहां अष्टभुजा देवी का एक मंदिर बनाया जाए। किंतु उसके लिए स्थान उपलब्ध करने की समस्या थी। हैद्राबाद की नलिनी हरदास ने यह उलझन सुलझा दी। हैद्राबाद की माई अफजलपूरक ने मौसी जी को बताया कि, नलिनीबाई हरदास की वर्धा में ठीक वैसी ही जगह है जैसी आप चाहती हैं। अब वे वर्धा छोडकर जानेवाली हैं। अत: आप उनकी जगह के बारे में उनसे बातचीत कर लें।'' नलिनीबाई अब भलेही वर्धा न रहती हो लेकिन वे हैं मुल वर्धा की ही। समिति से उनका संबंध भी रह चुका था। मौसी जी भी हर वर्ष उन्हें संक्रांति संदेश और सेविका अंक नियमित रुप से भेजती थीं।

१९६८ के त्रिवार्षिक अधिवेशन के लिए जब नलिनी जी आई तो मौसी जी ने उनसे वर्धा की जगह के बारे में पूछा। उन्होने अपने पति और संबंधियों को यह कल्पना सुनाई और सर्व सम्मति से अष्टभुजा मंदिर के लिए वह जगह दान करने का निर्णय किया। इस काम में माई अफजलपुरकर ने काफी प्रयत्न किए। जगह मिल जाने पर वहां एक बडा सभागृह बनाया गया। जयपुर से ही अष्टभुजा देवी की सुंदर मूर्ति मंगवाई गई और बीस नवम्बर १९७२ को उसकी स्थापना की गई। एक बडा समारोह भी इस अवसर पर आयोजित किया गया था। आगे चलकर १९८३ में मौसीजी की इच्छानुरुप इसी स्थान पर एक पंचायतन मंदिर बनाया गया जिसका पूरा प्रबंध मौसी जी ने पहले से ही कर रखा था।

समिति के जन्मस्थल पर उसका अपना एक भवन बन गया। यहां एक वाचनालय और बाल संस्कार केन्द्र चलाया जाता है। नवरात्री में नौ दिन तक उत्सव मनाया जाता है। मौसीजी नौ दिनों तक वहीं रहती थीं। इन दिनों व्याख्यानों, प्रवचनों के साथ ही सेविकाओं द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रमों को भी वरीयता दी जाती थी। मौसी जी ने विशेष रूप से 'स्वर जिजाई' कार्यक्रम उत्सव में प्रस्तुत कराया था जिस में जिजामाता की पद्यमय गाथा थी। इस मंदिर के निर्माण में धार्मिक भावना के साथ जनजागरण का भी उद्देश्य था।

१९७० में दिल्ली में भी 'जिजामाता स्मारक समिति' बनाई गई। मौसी जी के प्रोत्साहन के कारण ही दिल्लीवालों ने उनकी कल्पना का समर्थन किया। सिंधुताई फाटक के भरसक प्रयासों के कारण स्मारक के लिए स्थान मिल गया। वहां निर्माण कार्य चल रहा है। शीघ्र ही वह पूर्ण हो जाएगा और वहां समिति का कार्यालय खुल जाएगा।

पुणे में जिजाबाई के नाम से स्मारक बन गया है, जहां समिति का कार्यालय, बालक मंदिर, संस्कार वर्ग, उद्योग मंदिर चलाए जाते हैं।

हैद्रबाद में भी समिति की एक सेविका रमादेवी ने अपनी जगह निःशुल्क दी। वहां भी देवी अष्टभुजा का मंदिर १९८५ में बनाया गया। इस स्मारक को देवी रुद्राम्मा का नाम दिया गया है। ९ फरवरी १९८५ को इस स्मारक का शानदार उद्घाटन किया गया।

सोलापुर में चन्नम्मा के नाम से स्मारक की योजना क्रियान्वित की जा रही है। कर्णावती (अहमदाबाद) में भी स्मारक बनाने के लिए प्रयास जारी है। बंगलौर की एक सेविका श्री. रुक्मिणी आक्का (प्रांतकार्यवाहिका) ने अपना निजि भवन समिति को दिया है। जहां समिति का कार्यालय प्रारंभ किया गया है।

मौसी जी की हमेशा यही इच्छा रही कि गांव गांव समिति को कार्यालय हो। यह विचार उनकी दूरदृष्टि का परिचायक है। उन्होने कई बार सेविकाओं से कहा भी था कि समिति के अपने कार्यालय होना आवश्यक है। लेकिन वे चाहती थीं कि कार्यालय केवल मंगल कार्यालय न बन जाएं। जनसंपर्क का वे एक प्रभावी माध्यम बनें। इन कार्यालयों में ऐसे कार्यक्रम आयोजित हों जिस से जनसंपर्क बढे और समिति समाज के अधिक से अधिक निकट पहुंच सके। इसीलिए पाठशालाएं, बाल मंदिर, उद्योग मंदिर, छात्रावास, वाचनालय, भजनी मंडल, व्याख्यान, प्रवचन जैसे कार्यक्रम इन भवनों में आयोजित होते रहें ऐसा उनका आग्रह रहता था। आज ये सभी कार्यक्रम विभिन्न भवनों में नियमित रुप से क्रियान्वित होते हैं।

१६

रामायण का अध्ययन

मौसी जी राष्ट्रसेविका समिति की प्रमुख संचालिका के नाते तो सबको परिचित है। साथ ही राष्ट्रीय दृष्टी से रामायण का प्रवचनकर्त्री के नाते भी वे बहुत प्रसिद्ध है। सहज प्रश्न उठता हैं कि समिति का कार्य करते-करते मौसी जी रामायण की ओर किस तरह मुड गई ? यहां यह बता दें कि उन्होने न केवल रामायण का अध्ययन किया अपितु महाभारत भी वे अपनी रसीली और सरल भाषा में सुनाकर लोगों को मंत्रमुग्ध कर देती थीं। किंतु रामायण के प्रति उन्हें अधिक आत्मीयता और श्रद्धा थी।

महात्मा गांधी ने एक बार अपने भाषण में महिलाओं से कहा था कि "आप सीता बनिए" इस भाषण के उपरांत हुए प्रश्नोत्तरो ने मौसी जी के मन में रामायण के प्रति बहुत कुतुहल निर्माण किया। उन दिनों अधिकतर नेता अपने भाषणों में रामराज्य लाने का उल्लेख हमेशा करते थे। अत: मौसी जी के मन यह जानने की प्रबल इच्छा जागी कि रामराज्य कैसा था, उसमें समाज व्यवस्था कैसी थी ? इन्हीं दो कारणों ने मौसी जी को रामायण पढने को प्रेरित किया। वैसे उन दिनों रामायण का अध्ययन करना महिलाओं के लिए बहुत कठिन काम था। क्योंकि रामायण, महाभारत, सप्तशती आदि ग्रंथ घरों में रखना, कलह को आमंत्रण देना है ऐसी एक खुसर धारणा उन दिनों प्रचलित थी। गुरुचरित्र (भगवान दत्तोत्रय की गाथा) का पठन तो महिलाओं के लिए वर्जित है ऐसा एक अलिखित नियम बन गया था। आज भी ऐसी ही कुछ मान्यता है। इन्हीं सब बातों के कारण रामायण जैसा ग्रंथ पढना तब असंभव था। मंदिरों में जा कर प्रवचनों आदि द्वारा ज्ञानवर्धन करे भी तो कैसें ? चूल्हा चक्की से समय मिल पाए तभी ना। किंतु मौसी जी इन बातों से हार मानने वाली नहीं थी। एक बार कुछ ठान लिया तो उसे पूरा करके ही दम लेना मौसी जी के स्वभाव की विशेषता थी। इधर उधर से किसी तरह उन्होने 'रामविजय' गाथा प्राप्त कर पढ ही डाली। महिलाओं को क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इसके खोखले नियमों को उन्होने कभी माना जो नहीं था। 'रामविजय'

ने मौसी जी की ज्ञान की प्यास को तृप्त नहीं किया अत: उन्हों ने 'वाल्मिकि रामायण' का मराठी अनुवाद ला कर पढा।

रामायण पर जो भी सामग्री मिलती, पढना प्रारंभ किया। वे ग्रंथ पठन नियमपूर्वक करने लगी। भांति भांति के पुस्तकें पढने के बादें वे वेणूताई और कालिंदीताई से चर्चा किया करती थीं। एक बार मौसी जी ने वेणुताई से कहा, " मैने रामायण पर इतनी पुस्तकें पढीं, किंतु इस ग्रंथ को पढने से घरों में कलह प्रारंभ होगा ऐसा तो उस में कुछ भी नहीं है। उल्टे समाज के सभी स्तरों के लोगों पर उत्तम संस्कार कर सकनेवाले चरित्रों और प्रसंगो का वर्णन उस में पढने को मिलता है। एक नारी ही अपने परिवार पर उत्तम संस्कार कर सकती है। अत: उसका सुसंस्कृत और प्रगल्भ होना अत्यावश्यक है। समझ नहीं आता ,क्यों महिलाओं को यह ग्रंथ पढने से वंचित रखने की खूसर धारणा लोगों में इतनी गहरी गई है। यहा एक बात उल्लेखनीय है कि रामायण और महाभारत काल में महिलाओं पर इस प्रकार के कोई बंधन नहीं थे। संभवत: बाद में , परतंत्रता के काल में महिलाओं को इस प्रकार के बंधनों में जकडा गया होगा। वेणूताई ने कहा, " आपने इतना पढा है , यहाँ की महिलाओं का आप रामायण क्यों नही सुनाती।"

मौसी जी ने उत्तर दिया , " बहुत अच्छी तरह से सुना पाऊंगी या नहीं पता नहीं, किंतु प्रयत्न करने में कोई आपत्ति नहीं।" तत्पश्चात १९५१ में वर्धा के मंदिर में प्रत्येक एकादशी को मौसी जी ने गिनी चुनी महिलाओं को रामायण सुनाना प्रारंभ किया। महाराष्ट्र में प्रचलित कथा-कीर्तन की ही काफी कुछ शैली में वे प्रवचन करतीं थीं। किस्से कहानी और बीच बीच में गाने। हार्मोनियम के सुरों में अपना स्वर मिलाती थीं। सेविकाएं सर्वसुश्री विमलाबाई देशपांडे, सुधा जोशी (कु. आगाशे) मनोरमा बाक्रे तथा पद्माताई पुणें के राष्ट्रीय कीर्तनकार श्री. वा.शि. कोल्हटकर लिखित 'रामगीतसुधा' ग्रंथ को आधार मानकर मौसी जी ने अपना रामायण कथन का कार्यक्रम रचा था जो समिति की ओर से प्रस्तुत किया जाता था। १९५३ के बाद मौसी जी ने संपूर्णत: स्वतंत्र कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इसका एक कारण था। हुआ युं कि अपने बेटे पद्माकर के पास घाटकोपर में रहते समय मौसी जी ने रामायण कथा का पाठ शुरु किया। उनका पोता अजित (पद्माकर का बेटा) उस समय छोटा था। वह अचानक टाईफाइड का शिकार हो गया। उसकी अवस्था बहुत चिंता जनक थी। किंतु ऐसी बेचैनी में भी मौसी जी ने अपने रामायण कथा सुनाने के कार्यक्रम खंडित नहीं होने दिया। एक रात उन्होंने एक सपना देखा । एक अत्यंत तेजस्वी और श्वेत दाढी, जटा, मूंछवाला, छह फूट उंचा साधु किसी गुहा में सो रहा था। मौसी जी के गुहा में जाते ही वह बोला , 'रामायण सुनाओ,

रामायण बताओ, रामायण सुनाओ'। ये बडे ही गंभीर शब्द मौसी जी को स्पष्ट रुप से सुनाई दिए हीं थे कि अचानक उनकी आंख खुल गई । पुरा शरीर पसीने से लथपथ हो गया था। कुछ सूझता नहीं था। बार बार एक ही प्रश्न मन में उठता था ,इसका क्या अर्थ है ? मौसी जी को लगा कि कदाचित परमात्मा ने ही मुझे रामायण सुनाने का आदेश दिया है। पोते का स्वास्थ्य सुधरने के पश्चात मौसी जी पुनः वर्धा लौटीं। मन में एक ही विचार बार बार आता कि कैसे सुनाऊंगी मैं रामायण ? कौन सुनेगा ? क्या मैं सुना भी पाऊंगी ? सैंकडो प्रश्न मन में उठ रहें थे। उन्होंने उमाकाकू को अपना सपना बताया और आशंकाएं व्यक्त की। वे बोलीं, '' आप इस बार विजयादशमी से नौ दिन रामायण सुनाना प्रारंभ करें।'' मौसी जी बोली, कौन सुनेगा मुझे और मेरी रामायण ? ना तो मैं पढी लिखी हूँ और ना ही कोई विदुषी।'' उमाकाकू ने कहा,'' मैं सुनूंगी, कोई सुने ना सुनें। मैं और भगवान तो होगे ही।

इसी पार्श्वभूमि पर मौसी जी ने प्रवचन देने का निश्यय किया। संकल्प के साथ मौसी जी ने दोपहर का विषय तय किया और चार बजे मंदिर पहुंची। भगवान के सामने माथा टेका, फिर उमाकाकू के चरण छुए और मंच पर जाकर बैठ गईं। सामने वाल्मिकी रामायण की पोथी रखी। सपने में देखे उस तेजस्वी योगी को स्मरण किया और साहस के साथ प्रवचन प्रारंभ किया। पंधरह-बीस महिलाएं प्रवचन सुनने को उपस्थित थीं।श्लोक के साथ उन्होने अपना प्रवचन प्रारंभ किया। इस पहले प्रवचन के अनुभव को कथन करते समय मौसीजी ने हमें बताया कि, ''मेरा तो गला सूख गया था , हाथ पांव कांप रहे थे , क्योंकि उस दिन मैं अकेली थी। पहले हम तीन-चार बहनें मिलकर प्रवचन आदि दिया करती थीं। मैं बहुत भयभीत हो गई थी। परंतु रामकथा प्रारंभ करते ही सारा भय अचानक कही लुप्त हो गया। एक के बाद एक शब्द होठों पर आने लगें और मैं बोलती गई। पूरा एक घंटा मैं बोलती गईं।'' इस प्रकार नौ दिनों तक मौसी जी ने रामायण पर प्रवचन दिया। मौसी जी की वाणी को सरस्वती का वरदान मिला था। उसे एक अलौकिक धारा प्रवाह और वजन मिलता गया।

अंतिम दिन रामायण की समाप्ति पर जब मौसीजी ने उमाकाकू को प्रणाम किया तो वे इतनी गदगद हो गई कि अपने गले से सोने की माला उतार कर मौसी जी को पहना दी। मौसी जी बोली, '' आप की उपस्थिति मात्र मुझे धीरज बंधा गई।'' उमाकाकू ने उत्तर दिया,''हो हो, मैंने लाख कहा बोलने को किंतु विश्वास और धैर्य के साथ बोली तो आप ही ना ? इसलिए प्रशंसा की वास्तविक अधिकारी आप ही हैं।'' मौसी जी और उमाकाकू में सचमुच ही सगी बहनो का -सा प्रेम था। मौसी जी तो हमेशा कहा करती थीं, '' मेरे साथ यश का आधा हिस्सा उमाकाकू का है।''

१९५३ के बाद चार-पांच वर्षोतक समिति का कार्य लडखडा रहा था। ऐसी परिस्थिति में गांव गांव जाकर मौसी जी ने रामायण कथन के माध्यम से सेविकाओं से पुन: संपर्क प्रस्थापित किया। समिति के कार्य के उद्देश को भी मौसी जी ने साध्य कर लिया। सेविकाओं में उत्साह की एक लहर दौड गई।

प्रारंभ में मौसी जी का प्रवचन सुनने के लिए विशेष उपस्थिति नहीं होती थी। मंदिर का छोटासा सभामंडप भी पर्याप्त होता था। किंतु मौसी जी की प्रभावी, प्रवाही तथा सुगम वाणी की कीर्ती चारों ओर फैलने लगी और उनके प्रवचनों में श्रोताओं की संख्या बढने लगी। प्रारंभ में तो लोगों को यही लगता था कि यह महिला क्या रामायण सुनाएगी ? चौथी कक्षा तक पढी एक नारी की बुद्धिमता आदि होती ही क्या है ? किंतु जो भी उनके प्रवचन के लिए मात्र कुतुहल के कारण जाता, वह मौसी जी की रामायण सुनाने की शैली से बहुत ही प्रभावित हो जाया करता था।

धीरे धीरे मौसी जी की कीर्ती पूरे महाराष्ट्र में फैल गई। उनके प्रवचनों की मांग बढने लगी। दूर दूर से लोग उन्हें बुलाने लगे। श्रोताओं की संख्या हजारों में पहुंच गई थी। प्रवचन के अंत में मौसी जी को निधि दी जाती थी। उस धनराशि से मौसी जी ने प्रथम अहल्या मंदिर का ऋण चुकाया और फिर वर्धा के देवी अष्टभुजा मंदिर निर्माण के लिए सारी धनराशि दे दी।

इन प्रवचनों के माध्यम से पुरानी सेविकाए तो मौसी जी को मिलीं ही ; नई बहनें भी समिति की ओर आकृष्ट होने लगी थीं। इनमे श्रीमती यमुताई सरंजामे का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने मौसी जी के प्रवचनों से प्रभावित हो कर अहल्या मंदिर की संपूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और अंत तक उसे निभाती रहीं।

बडौदा, सातारा, ग्वालियर आदि स्थानों में भी मौसी जी ने प्रवचन दिए। जिन्हें सुनने क्रमश: राजमाता शांतादेवी, सुमित्रा राजे भोसले, विजयाराजे सिंधिया रोज उपस्थित रहती थीं। मौसी जी की प्रभावी वाणी और प्रसन्न व्यक्तित्व से वे इतनी प्रभावित हुई की आगे चलकर उन्हों ने समिति के कार्य के लिए समय समय पर भरपूर सहायता दी। विजयाराजे सिंधिया ने एक बार मुझ से कहा था कि, " मौसी जी की ऋषितुल्य तेजस्विता के कारण हर कोई उनके सामने विनम्र हो जाता है।" विजया राजे सिंधिया के मन में मौसीजी के लिए बडा आदर था। मैने स्वयं इस बात को अनुभव किया जब मुझे मौसी जी के साथ एक बार विजया राजे जी के घर जाने का अवसर मिला। हमारी गाडी उनके महल में पहुंचने से पहले ही वे स्वयं मौसी जी के स्वागत के लिए पोर्च में आ कर खडी थीं। और मौसी जी का हाथ थाम कर स्वयं उन्हें प्रासाद ले गई थीं।

मौसी जी ने अब तक हिंदी भाषा पर भी प्रभुत्व पा लिया था। अत: वे अब हिंदी में भी रामायण सुनाने लगी थीं। इसे भी श्रोताओं ने बहुत पसंद किया। वर्ष प्रतिपदा से लेकर रामनवमी तक तेरह वर्ष प्रवचन करने का संकल्प मौसी जी ने किया था। तदूतनुसार १९७२ तेरहवां वर्ष था। संकल्प सिद्धि के उपलक्ष में मौसी जी ने उसका विशाल समापन समारोह नागपुर में आयोजित किया था। मौसी जी के प्रेरणानुसार कुछ सेविकाओं ने गांव गांव जा कर रामायण कथा सुनाने का बीडा पहले से ही उठाया था। उन सेविकाओं को बुलाकर मौसी जी ने चक्रीरामायण की एक नई योजना उनके सम्मुख रखी। इस संदर्भ में मौसी जी ने कहा, "इस चक्रीरामायण का मुझे बहुत लाभ हुआ है। रामायण की कुछ नईं बातें मुझे ज्ञात हुई हैं।" दूसरे से यदि कुछ सीखने को मिलता तो मौसी जी झट वह बात सीख लेती थी। छोटे बडे की भावना उन्हें स्पर्श भी नहीं करती थी। ना ही इस में वे किसी हीन भावना को अनुभव करती थीं।

इस कार्यक्रम में दोपहर को चक्रीरामायण होता और रात्री को मौसी जी का प्रवचन होता था। मौसी जी के प्रवचन से पहले रामायण के दृष्यों का दृश्यांकन किया जाता था ; जो काफी प्रभावी होता था। वे कहां करतीं कि "ऐसे कार्यक्रमों द्वारा अपनी सेविकाओं के कलागुणों को प्रोत्साहन मिलता है।" इस कार्यक्रम के लिए श्रीमती विजयाराजे सिंधिया विशेष रुप से उपस्थित थीं। इस समापन समारोह के पीछे मौसी जी का मुख्य उद्देश समाज को एकत्रित करना ही था। उन्होंने कहा था कि,"लोगों के सहयोग के कारण ही मुझे रामायण कथन में इतना यश प्राप्त हुआ है। मैं लाख रामायण कथा सुनाऊं, किंतु सुनने वाले होंगे तभी ना ? यह बात अवश्य है कि लोगों की समझ में आ सके और उन्हें मान्य हो ऐसी भाषा में बोलने की शक्ति मुझे मेरे राम ने ही दी हैं।"

महाभारत की अपेक्षा रामायण सुनाना मौसीजी को अधिक प्रिय था। रामायण पर उनकी अधिक श्रद्धा थी। उनका कहना था कि रामायण अधिक जीवनस्पर्शी है। समाजजीवन सुसंस्कारीत करने के लिए रामायण जैसा ग्रंथ नहीं। वह अपने में एक आदर्श है। कुछ पढे लिखें लोग रामायण को पुराण मानकर उसकी अवहेलना करते हैं। किंतु रामायण केवल पुराण नहीं, वह हमारा इतिहास है और इतिहास वर्तमान का मार्गदर्शक होता है। वैसे देखा जाए तो मौसी जी का रामायण कथन प्रचलित पद्धतिनुसार कीर्तन अथवा प्रवचन नहीं था। वह था प्रवचन और व्याख्यान दोनों का सुंदर संगम। मौसी जी रामायण के माध्यम से तत्कालीन समाजजीवन, व्यक्ति और उनके कर्तव्य, समाजऋण आदि विषयों का विश्लेषण करती थीं। उन्होंने अनेक रामायण पढे थे परंतु बाल्मिकी रामायण पर ही वे प्रवचन दिया करती थी क्योंकि

उनकी यह धारणा थी कि वाल्मिकीजी ने राम को मानव के रूप में माना है। उन्होंने रामायण की कोई भी समस्या दैवी शक्ति के आधार पर चुटकियों में नहीं सुलझाई। मानवी भावना, यश, अपयश के कारण मन की अवस्था, पत्नीप्रेम, बंधुप्रेम, बिछोह कभी कभी व्यक्त होनेवाला अविश्वास इत्यादि मानवजीवन के विविध पहलुओं का वर्णन उन्होंने अपने रामायण में किया है। उन्होंने राम को महामानव, मर्यादा पुरुषोत्तम कहा है। समाज में राम को यदि मानवी रुप में प्रस्तुत किया जायेगा तो लोग उसे आदर्श मानकर उसके जैसा आचरण करने का प्रयत्न करेंगे। किंतु यदि भगवान रुप में उसे प्रस्तुत किया जाता है तो उसके आदर्शों का पालन करना हमारी पहुंच से परे चला जायेगा और मानव उस को केवल पूजने लगेगा। उसकी भांति अपना आचरण रखने का प्रयत्न नहीं करेगा। यही कारण है कि मौसी जी वाल्मिकी रामायण को अपना आधार ग्रंथ मानती थीं।

सर्व सामान्य समाज यह मानता है कि सीता का त्याग नहीं अपितु वह उस पर हुए अन्याय का द्योतक है। इस पर मौसी जी का स्पष्टीकरण था कि, "राजा पहले समाज का नेता है। प्रजा का हित ही राजा का पहला कर्तव्य है। और उसका आचरण अत्यंत शुद्ध होना चाहिए। लोगों के मनों में उसके प्रति संपूर्ण विश्वास होना चाहिए। इसीलिए एक सामान्य धोबी की आशंका को भी उन्होंने दुर्लक्षित नहीं किया। सीता भी राजाराम का मन जानती थी। इसीलिए उसका त्याग करने पर भी उसने राम को संदेश भेजा था कि मेरे बिछोह के दुख में राज्य के कामकाज की उपेक्षा न करें। व्यक्ती से समष्टि श्रेष्ठ है यही तत्व रामायण हमें सिखाता है" ऐसा आग्रही प्रतिपादन मौसी जी किया करती थीं।मौसी जी को सुनने आनेवाले श्राताओं में कई विद्वान स्त्री-पुरुष भी हुआ करते थे। प्रवचन के बाद वे मौसी जी से अनेक प्रश्न पुछा करते थे। मौसी जी को इससे परम संतोष होता था। बडौदा की रामायण संशोधन संस्था ने भी मौसी जी से अनेक प्रश्न किए थे। उनके प्रवचन जहा अधिकाधिक आलोचनात्मक दृष्टी से सुने जाने लगे थे, वहीं अनेक लोगों सने इच्छा व्यक्त की थी कि मौसीजी के प्रवचनों को पुस्तक रुप में संकलित किया जाए। पं. सातवलेकर जी ने कहा, "रामायण पर आज तक काफी साहित्य रचा गया है। श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर के इस विषय पर प्रवचन मैंने सुने है। इतना मनन और अध्ययन कर के दिया गया प्रवचन मैंने प्रथम ही सुना। वह अति सुंदर है। अत: ये प्रवचन प्रकाशित किए जाए यंह बात मैं अधिक तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ। इन प्रवचनों का अधिक से अधिक प्रसार हो ऐसी मेरी अभिलाषा मनोकामना है। अत: मैं चाहता हूं कि ये प्रवचन पुस्तक रूप में जनता के सामने आएं।"

इस देश तथा समाज को उचित मार्ग दिखाना हो, तो इस देश को राम जैसे नीतिमान, धैर्यवान और पराक्रमी नेता मिलना आवश्यक है ऐसा मौसी जी हमेशा कहा करती थीं। समाज के सभी स्तरों में मौसी जी ने घर-घर रामायण पहुंचाया। उनकी यह धारणा थी कि रामायण के निरुपण के साथ साथ समाज को एकत्रित लाने के लिए सम्मेलनों का आयोजन किया जाए। १९४५ से समिति सेविकाओं के सम्मेलन कुछ अधिक होने तो लगे थे किंतु उन्हें व्यापक स्वरुप नहीं मिलता था। कई बार तो ये सम्मेलन केवल एक बैठक बन कर रह जाया करते थे। १९६१ में वर्धा संम्मेलन से उन्हें थोडी सार्थकता और व्यापकता मिलने लगी थी। १९६४ में नागपुर में मौसी जी के इकसठवें जन्मदिवस पर एक ऐसा सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसकी प्रमुख विषय मौसी जी का प्रकट स्वागत सम्मान था। इसके पश्चात आयोजित किए गए सभी सम्मेलन देशव्यापी थे। जिन का एक उद्देश समिति के कार्य की सार्थकता को भी परखना था। अत: ऐसे संमेलनों का स्वरूप सभी अधिकारियों ने विचारविनिमय कर निश्चित किया।

तीन दिन भारत की सभी सेविकाएं एकत्रित हों, अच्छे अच्छे व्यक्तिओ के भाषण, गोष्ठियाँ, व्यवसाय-बैठकें हो, किसी एक विषय पर प्रदर्शनी लगायी जाय, प्रात्यक्षिकों सहित विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए ऐसी रुपरेखा सुनिश्चित की गई। मौसी जी का कहना था कि ऐसे सम्मेलनों के माध्यम से सभी सेविकाएं एकत्रित आती हैं। विचार विमर्श होता है, अपने कार्य का यथार्थ दर्शन होता है। अत: सेविकाओं को इन सम्मेलनों में अवश्य आना चाहिए। प्रारंभ में केवल समिति की सेविकाओं को ही इन सम्मेलनो में बुलाया जाता था। आगे चलकर मौसी जी ने समिति से बाहर की महिलाओं को भी आमंत्रित करना प्रारंभ किया, क्योंकि वे मानती थीं कि समाज के निकट जाने का वह एक मार्ग है। इससे अन्य बहनो का भी हमारे कार्य से परिचय होता है और वे हमारे निकट आती हैं। माना कि समिति में पहले कभी न आई बहनों के लिए समिति का अनुशासन कुछ कठोर लगता था क्योंकि ये सम्मेलनअन्य संस्थाओं के अधिवेशनों से बहुत भिन्न होते थे। फिर कडा अनुशासन भी रहता था। निर्धारित समय में सब काम करने पडते थे। कार्यक्रम को बीच में छोडकर कहीं जा नहीं सकते थे। फिर भी बाहर की बहनों की उपस्थिती भरपूर रहती थी।

१९६८ में पुणे में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें अठारह सौ सेविकाएं उपस्थित थीं। पुणें का भावे विद्यालय सम्मेलन के लिए लिया गया था। कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बंगाल आदि प्रातों से सेविकाएं आई थीं। इसके पश्चात ग्वालियर, दिल्ली, हैद्राबाद आदि प्रांतो में भी सम्मेलन आयोजित किये गये। ग्वालियर

सम्मेलन में विजयाराजे सिंधिया ने भरपूर सहायता की थी। उन्होने तो सभी उपस्थित सेविकाओं को एकदिन का भोजन भी दिया था। यहां निकाली गई शोभायात्रा में सबसे आगे एक सेविका हाथ में ध्वज लिए, हाथी पर बिना किसी हौदे के दो घंटे बैठी थी। मौसी जी ने उसकी बडी प्रशंसा की, क्योंकि लगातार दो घंटे उस स्थिती में बैठना बडा कठिन काम था। दिल्ली के सम्मेलन में तो राजधानी दनदना गई थी। दिल्लीवालों के लिए यह सम्मेलन एक सर्वथा नया अनुभव था। महिलाएं अपने बलबूते पर इतना बडा कार्यक्रम यशस्वी कर सकती हैं इसका वहां के बंधु वर्ग को बडा आश्चर्य हुआ। दो हजार महिलाओं की शोभायात्रा वाद्यवृंद घोष सहित निकलेगी! यह सुनकर बंधुवर्ग ने सुझाया कि दिल्ली का सरकारी बैंड वे उपलब्ध करा देंगे। किंतु जब उन्हें बताया गया कि सेविकाएं स्वयं बैंड बजाएंगी तो उनके आश्चर्य की कोई सीमा नही रहीं। जो बात बैंड की वही घुडसवारी के बारे में भी हुई। शोभायात्रा में सबसे आगे हाथ में ध्वज लिए एक अश्वारुढ सेविका रहेगी, यह सुन; वहां के लोगों ने पूछा कि कोई नाच घोडा (लकडी का) ला दें क्या ? सचमुच के उंचेपुरे तगडे घोडे पर बंबई की एक तरुण सेविकाने हाथ में ध्वज लिए सवारी कसी तो दिल्लीवालें दातों तले उंगली दबा कर देखते रह गए। सारा दृष्य देखकर वे लोग बोले कि अश्वारूढ महिला के रुप में हम या तो झांसी की रानी या किसी फिल्मी अभिनेत्री की ही कल्पना कर सकते थे। इस प्रकार दो घंटों तक अश्वारूढ महिला को आज हम पहली बार देख रहे हैं। महिलाओं में यू ढिठाई, आत्मविश्वास, निडरता और कृतित्व विकास का बीजारोपण मौसी जी ने ही किया था। शोभायात्रा केवल शोभा की न रहें वह महिलाओं की सबलता का दर्शन करनेवाली हो इसिलिए शोभायात्रा के साथ बैंड पथक और सबसे आगे हाथी या घोडे पर ध्वज लिए एक सेविका का आरुढ होना अपने में एक विशेषता अवश्य थी।

हैदराबाद का सम्मेलन आपातकाल के बाद हुआ था। अत: उसका अपना ही एक महत्त्व था। लगभग पच्चीस सौ सेविकाएं उपस्थित थीं। यहां निकाली गई शोभायात्रा की भी सबने बहुत प्रशंसा की थी। इस सम्मेलन में दिया गया भाषण मौसी जी का अंतिम भाषण रहा।

सभी सम्मेलनों में संघ बंधुओं ने बहुत सहयोग दिया था। इस संदर्भ में मौसी जी की यह मान्यता थी कि, " समाज में महिला और पुरुष दोनो महत्त्वपूर्ण घटक हैं। वे आपस में सहयोग अवश्य करें किंतु एक दूसरे पर निर्भर न हों।सेविकाओं को अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न करना चाहिए। प्राकृतिक असमर्थताओं के कारण जो काम वे नहीं कर सकती, केवल उन्हीं कामों के लिए पुरुषों से मदद की अपेक्षा करनी चाहिए।"

आज भी भिन्न भिन्न प्रातों की सेविकाओं के संमेलन होते रहते हैं। एक दूसरे से मिलकर उनका आत्मविश्वास दूना होता है। जिस प्रांत में काम पिछड रहा है वहां की सेविकाएं जब अपने ही काम में अग्रेसर सेविकाओं से मिलती हैं तो निश्चय ही उनका मनोबल बढने लगता है। इन संमेलनो में समिति के कार्य का एक अखिल भारतीय चित्र सुस्पष्ट होता है। सारे कार्यक्रम राष्ट्रभाषा में ही होते है। अत: वहां प्रांतीय भावना रहती ही नहीं। मौसी जी ने बडी दूरदृष्टि से इन संमेलनो का आयोजन प्रारंभ किया था।

प्रत्येक प्रांत में संमेलन आयोजित करने का तब निश्चय किया था। और आज भी यह कम जारी है। मौसी जी के निधन के बाद १९८० में बंगलौर में १९८३ में अहमदाबाद में १९८६ में नागपुर में और १९८९ में पुणे में सम्मेलन आयोजित किए गए थे। संमेलनो के कारण उस प्रांतमें समिति की गतिविधियां बढ जाती हैं। सेविकाएं भी कामकाज में जुट जाती हैं। उत्साह और उमंग जागृत हो जाते हैं। सेविकाएं दायित्व बोध और आत्मविश्वास से कार्यरत हो जाती है। ऐसे आयोजनों में नई सेविकाए भी सामने आती हैं। सेविकाओं के गुणों और कार्यक्षमता का परिचय हो जाता है। इन मुद्दो पर विचार करके ही समिति ने समंलनों के आयोजन पर जोर दिया था।

धीरे धीरे समिति का विस्तार देश के लगभग सभी प्रांतो में हो गया। इन प्रातों की महिलाओं के कार्यरत होने का यह परिणाम था। अब केन्द्रीय कार्यकारिणी का भी विस्तार किया गया था। अब तक मौसी जी के साथ प्रारंभ से काम करनेवाली सेविकाए ही भारतीय अधिकारी वर्ग में थीं। किंतु जैसे जैसे समिति का विस्तार होता गया, मौसी जी को युवा सेविकाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अत: अपनी वरिष्ठ सहयोगियों की संमति से मौसी जी ने युवा सेविकाओं का समावेश अखिल भारतीय कार्यकारिणी में किया श्रीमती प्रभा देशपांडे जो कि पहले घोष (बैंड प्रमुख) थी को १९७० में उन्हों ने शारीरिक शिक्षण प्रमुख नियुक्त किया। श्रीमती सुशीला महाजन का सहबौद्धिक प्रमुख के नाते चयन किया। कार्य कारिणी अब तेरा सदस्यों की कर दी गईं, जिसमें आधी युवा सेविकाएं थीं। उनका पदविभाजन इस प्रकार था -प्रमुख संचालिका - मौसीजी। प्रमुख कार्यवाहिका - मा. ताई आपटे बौद्धिक प्रमुख - मा. कुसुमताई साठे। सहबौद्धिक प्रमुख मा. सुशीलाताई महाजन। शारीरिक शिक्षण प्रमुख मा. प्रभाताई देशपांडे। गीत प्रमुख- मा. उषाताई चाटी। कार्यालय कार्यवाहिका - मा. प्रमिलाताई मेढे , मा. प्रमिलाताई मुंजे , मा. लीलाताई वाकणकर। प्रसिद्धी प्रमुख - मा. सिंधुताई फाटक, मा. बकुलताई देवकुले निधि प्रमुख - मा. मनोरमाबाई गोखले। कोषाध्यक्षा - मा. सुशीलाताई अंबर्डेकर।

इस कार्यकारिणी की बैठक प्रतिवर्ष अगस्त में तीन दिनों के लिए होती थी। मौसी जी के मार्गदर्शन में आनेवाले वर्ष के कार्यक्रम तय किये जाते थे।

पुणे में आयोजित सम्मेलन में समिति के इतिहास में एक ऐसी घटना हुई जिस में मौसीजी को आगे चलकर बहुत परेशान कर दिया था। घटना थी तो मामुली ही। हुआ यूं कि इस सम्मेलन के लिए हुई बैठक में कुछ कार्यक्रम निश्चित किए गए। किंतु प्रत्यक्ष सम्मेलन समय सुविधानुसार कुछ परिवर्तन किए गए, जिनसे तत्कालीन शारीरिक शिक्षण प्रमुख डा. कुसुम घाणेकर को कुछ गलतफहमी हो गई। उन्हों ने इस बारे में अपनी आपत्ति व्यक्त भी कर डाली। यह घटना समिति की जीवन पद्धति के अनुरुप नहीं थीं। और न ही अपेक्षित थी। मौसी जी ने तत्काल कुसुमताई को समझाया और इस बात का विचार अगस्त महिने के बैठक में करने का आश्वासन भी दिया।

तत्पश्चात इसी सम्मेलन से संलग्न एक शिक्षिका वर्ग का भी आयोजन हुआ, जो कुसुमताई की उपस्थित में पुणें में संपन्न हुआ। कुल साठ सेविकाएं इस शिक्षिका वर्ग में उपस्थित थीं। वर्ग अच्छा हुआ और अनेक स्थानों पर उपयुक्त सिद्ध हुआ।

पुणे सम्मेलन के समय मौसी जी ने पत्रकारों के साथ जो वार्तालाप किया, समिति के दर्शन को सुस्पष्ट करनेवाला था। हिंदुत्व का ज्वलन्त अभिमान, हिंदुराष्ट्र की स्पष्ट कल्पना उन्होंने प्रकट की थी।इस वार्तालाप में उन्होंने कहा-'' समिति के कार्य का मुख्य उद्देश हिंदु महिलाओं को संगठित कर उन्हें शील,बल और चरित्र से समृद्ध करना है। एक बात स्पष्ट है कि जब धर्माधिष्ठित मुसलमान राष्ट्र 'पाकिस्तान' भारत से विभक्त हो गया है तो स्पष्ट है कि शेष बचता है केवल हिंदुओं का हिंदु राष्ट्र ही। हिंदुत्व विशाल है और संपूर्ण मानवजाति को अपने में समानेवाला है। उसके सामने जांत पांत, धर्म, संप्रदाय आदि कल्पनाएं बौनी हैं। प्राचीन काल से ही हिंदुसंस्कृति पूरे विश्व में फैली और समुची मानव जाति को सुसंस्कृत करने के लिए प्रयत्नशील रहीं। हिंदु संस्कृति का यह दर्शन आज हम भूल गए हैं।

१९४७ में स्वतंत्र हुआ वही भारत है और यहां की संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है ऐसी ही भावना पर हमारी अवधारणा टिकि है। अत: समिति की मान्यता है कि अपना प्राचीन वैभव विशालता, उदारता और सर्वसमावेशक विचार प्रणाली हिंदु महिलाओं के मनों में जागृत रखना ही हमारा आद्य कर्तव्य है।''

महिलाओं के शिक्षण और अर्थाजन के बारे में भी मौसीजी का चिंतन स्पष्ट था। केवल अर्थाजन के लिए शिक्षण लेना उचित नहीं ऐसा वे मानती थीं। उनका कहना था कि

शिक्षण ज्ञानार्जन और आत्मोन्नति के लिए होना चाहिए। कई बार उन्होंने अपने ये विचार प्रकट किए थे।

मौसी जी मानती थी कि महात्मा गांधी के एक वाक्य ने उन्हें महिलाओं के लिए कुछ करने की प्रथम प्रेरणा मिलि। अत: उनका ऋण अंशत: चुकाने के लिए १९७९ में आनेवाले महात्मा गांधी के जन्मशताब्दी वर्ष में सभी शाखाओं में उत्सव के रुप में मनाया जाए ऐसी उनकी इच्छा थी। वे हमेशा कहतीं कि महात्मा गांधी एक उत्तम संगठक है। अत: उनके दर्शन का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए ऐसा उन्होंने सभी सेविकाओं को सूचित किया। मौसी जी प्रत्येक बैठक में सेविकाओं को नई नईं पुस्तकें पढने को कहा करती थी। आश्चर्य की बात यह थी कि वे सारी पुस्तके उन्होंने पहले ही पढ रखी होती थीं। इन पुस्तकों में सामान्य लेखकों की कहानियों, उपन्यासों से ले कर पं. सातवलेकर, पु.ग. सहस्त्रबुद्धे , श्री. अप्रबुद्ध जैंसे विद्वानों के ग्रंथ भी होते थे।

१९६८ में पुणे सम्मेलन के बाद काकू रानडे मौसी जी के घर वर्धा जा रही थी। रात को शौचालय जाते जाते वे गिर पडी और उनके पैर को गंभीर चोट पहुंची। उसी स्थिति में वे वर्धा उतरीं और मौसीजी के घर पहुंची। काकू जी असह्य पीडा से त्रस्त थीं। किंतु मुख से उफ तक नहीं निकली।बात मौसी जी के ध्यान में आते ही उन्होंने तुरंत काकूजी को 'मातृसेवा संघ' के रुग्णालय में भरती कराया। उन्हें एक महिना वहां रुकना पडा। मौसी जी ने स्वयं उनकी देखभाल की। अपनी बहन की तरह उनकी सेवा शुश्रुषा की। १९६९ में काकू जी पुणें पहुंची। किंतु पांव की बीमारी के अतिरिक्त कई अन्य रोग भी उन्हें हो गए थे। अत: पुन: उन्हें रुग्णालय में भरती किया गया। पुणे की सेविकाएं बारी बारी से रुग्णालय जाया करती थीं , मानों वे उनकी अपनी कोई संबंधी हो। यह आत्मीयता संगठन की ही देन थी। आखिर १९६९ की वर्ष प्रतिपदा के दिन काकू चल बसीं। उस समय मौसी जी कल्याण में रामायण का कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं।कल्याण के साठे परिवार में वे ठहरी थीं। काकू के निधन के समाचार ने मौसी जी पर गहरा आघात किया। ग्रामस्थ सेविकाओं को भी समाचार का पता चला। सभी ने सोचा कि अब रात्री का प्रवचन कैसे होगा ? समाचार पढ कर मौसी जी आधा पौना घंटा स्तब्ध रह गईं, कुछ भी नहीं बोलीं। दिवानखाने में बेचैन मन से आगे पीछे करती रहीं। शायद अपने मन पर नियंत्रण रखने का वे प्रयत्न कर रहीं थी। दोपहर को उन से मिलने आई सेविकाएं भी चुपचाप बैठी थीं। आखिर मौसीजी ने ही बात छेडी कि " जीवन का अर्थ किसी पुस्तक ने मुझे नही सिखाया। मनुष्यों के संग रहते रहते आनेवाले अनुभवों को मैंने अपना गुरु माना है। काकू रानडे के संपर्क में आने से मैं ने बहुत कुछ सीखा है। काम करते समय आनेवाले संकटों को लेकर रोते रहना काकू जी का स्वभाव नहीं था। उन संकटों का सामना

करके दृढता से अपना मार्ग ढूंढना उनके स्वभाव की विशेषता थी। उनकी इन बातो ने मुझे बहुत प्रमादित किया है।'' रात्रि का प्रवचन योजना नुसार ही संपन्न हुआ।

अगस्त १९६९ को समिति के केन्द्र कार्यालय देवी अहल्या मंदिर में हुई भारतीय बैठक को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन में संघ स्वयंसेवकों से ली गई सहायता को लेकर काफी बखेडा खडा हो गया था। डा. कुसुमताई घाणेकर और कुछ युवा सेविकाओं को कुछ भ्रम हो गए थे। अत: सबके भ्रमोंको दूर करने के भरसक प्रयत्न किए गए किन्तु वे सफल नहीं रहे। फल स्वरूप कुसुमताई और उनकी कुछ सहेलियां समिति से बिछुड गईं।

इतना कुछ होने पर भी मौसी जी ने कुसुमताई से संबंध नहीं तोडे। उन्होंने नियमित पत्रव्यवहार बनाए रखा। कुसुमताई को कभी किसी के सामने बुरा भला नहीं कहा। बल्की हमेशा उनके गणों की स्तुती करती रहीं। सांगली की ओर जब कभी उनका प्रवास रहता तो वे कुसुमताई से अवश्य जाकर मिलती थीं।

पुरुषोत्तम मास के लिए मौसी जी ने सेविकाओं को एक अभिनव कार्यक्रम दिया। इस मास में ३३ संख्या का विशेष महत्व होता है। शास्त्र कहते हैं कि किसी भी वस्तु का दान ३३ की संख्या में किया चाहिए। मौसी जी ने सेविकाओं से कहा की वे ३३ संस्कार कथाओं का संग्रह करें, और शाखाओं में सुनाएं, ३३ लेखिकाओं से संपर्क करें, ३३ निरक्षरों को साक्षर करें, ३३ स्लेटों और पेन्सिलों का दान करें आदि। समाज के समीप जाने के लिए यदि धार्मिक माध्यम ढूंढा जाए तो बहुजन समाज हमारे अधिक से अधिक निकट आयेगा ऐसी उनकी मान्यता थी।

अब तक समिति का वार्षिक अंक केवल मराठी भाषा में ही निकला करता था। किंतु जैसे जैसे अन्य प्रांतो में समिति कार्य बढने लगा उन प्रांतीय भाषा ओं में अंक निकाले जाने की आवश्यक्ता प्रतीत होने लगी। मौसी जी भी उस दिशा में प्रयत्नशील थीं। गुजरात की जिजी काणे के पास उन्होंने पहले बात छेडी। जिजी से उन्होंने कहा, '' जिजी, आपकी बेटीयां इतनी पढी लिखी है, वे यदि ठान लें तो गुजराथी में अंक अवश्य निकाला जा सकता है।'' जिजी ने कहा, ''प्रयत्न करके देखती हूं।'' नलिनी जांभेकर (जिजी की कन्या), कुसुमबेन त्रिवेदी, शरयुबाला पारिख, भागीरथीबेन मेहता आदि सेविकाओं ने पहल की और १९६९ में पहला गुजराथी वार्षिक अंक तैयार हुआ। उसके प्रकाशन समारोह के लिए मौसी जी विशेष रुप से गुजरात गईं थीं। अगले ही वर्ष याने १९७० से हिंदी में अंक निकलने लगा। अपनी विचार प्रणाली की अभिव्यक्ति का 'सेविका' का वार्षिक अंक ही एकमेव माध्यम था। उसमें अच्छे से अच्छे लेख हों ऐसा मौसी जी का आग्रह रहता था। जिसके लिए वे स्वयं गण्यमान्य लेखकों

से लेख देने का अनुरोध करती थीं। उनके अनुरोध को सामान्यत: कोई अमान्य नहीं करता था। मौसी जी हमेशा अपना एक लेख प्रत्येक अंक में देती थीं। मौसी जी इस बात पर हमेशा बल देतीं कि अंक हर दृष्टी से उत्तम हो। छपाई, मुखपृष्ठ, छायाचित्र सभी विभागों पर उनकी बराबर नजर रहती थी। पहले पाच-छह वर्षों तक मराठी अंक बंबई से प्रकाशित होता था। बाद में वर्धा, नागपुर, और अब वह पुणे से प्रकाशित होने लगा है। हिंदी और गुजराथी में भी हर वर्ष अंक निकलता है।

१७

भारत भ्रमण

समिति के कार्यवश मौसी जी का अनेक प्रांतों में प्रवास होता था। लोगों से मिलना जुलना भी लगा रहता था। भिन्न भिन्न गावों को केवल स्पर्श होता था। देश देखने का संतोष उन्हें नही मिल रहा था, क्योंकि विभिन्न गांवो की सेविकाएं उन्हें केवल मंदिर दिखा लाती थी। मौसी जी को हार्दिक आकर्षण प्रकृति का था।उनका भावुक और रसिक मन हिमालय के समीप जाना चाहता था। गंगा यमुना के तट पर भ्रमण करना चाहता था। रजपूतों की वीरभूमि देखना चाहता था। बुद्ध की जन्मभूमि देखना चाहता था, भारत के दक्षिणी सिरे पर खडे कन्याकुमारी के दर्शन करना चाहता था। उनके मन की यह अभिलाषा १९७० में पूर्ण हुई। अब लगभग सभी प्रांतों की सेविकाएं अपने आप निर्णय लेकर काम करने लगी थीं। थोडे से मार्गदर्शन से भी काम चल जाता था।इसलिए मौसी जी को भी थोडी फुरसद मिलती थी। अपना देश आंखों से देखने की अपनी मनोकामना पूरी करने का समय आ गया है ऐसा उन्हें लगा। पर्यटन अपने में एक अलग अनुभव है।उस अनुभव प्राप्त करने की उन्होंने ठान ली।

प्रारंभ नेपाल से करने का निर्णय हुआ। उन्हों ने संघ बंधुओं से वहां के परिचितों के पते प्राप्त किए। हिंदुस्थान समाचार के प्रतिनिधी श्री. विजयदास से पत्राचार कर अपने वहां आने की सूचना उन्हें दी। मौसी जी के साथ यमुताई संरजामे, सिंधुताई फाटक, सिंधुताई नावलेकर, प्रमिलाताई मेढे आदि सेविकाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य बहनें भी थीं। कुल मिलाकर करीब पचास महिलाओं का एक जत्था नेपाल जाने वाला था। नेपाल जाने में मौसी जी का उद्देश केवल पडोसी राष्ट्र को भेट देना नहीं था।और ना ही खरीददारी का। वहां पहुचने पर मौसीजी ने कहा, " मुझे आज बहुत आनंद हो रहा है। क्योंकि बडे गर्व से अपने को हिंदु राष्ट्र कहलवाने वाले विश्व के एक मात्र राष्ट्र की भूमि पर आज हम पाँव रख रहें हैं। महर्षि विश्वामित्र, भृग, वात्स्यायन, कपिल, जनक जैसे महान व्यक्तियों की जन्मभुमि के वे दर्शन ले रही थीं।

हर बात का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही थीं। नेपाली भाषा संस्कृत प्रचुर थी और लिपी भी देवनागरी ही थी। इस बात पर उन्हें बडा गर्व हो रहा था। पत्र पेटी के लिए वहां प्रचलित पत्र मंजूषा शब्द उन्हें बहुत अच्छा लगा। मार्गों को दिए गए नाम भी लक्षणीय लगे - इंद्रपथ, धर्मपथ, शुक्रपथ आदि। एक अन्य बात उन्हों ने देखी की सभी गाडियों पर नेपाली नदी बांगमती के पहले अक्षर अंकित थे - A.B. याने आँचल बागमती।

मौसी जी को यह यात्रा बहुत ही अच्छी लगी। इस यात्रा के बारे में उन्होंने कहा कि इतना छोटासा राष्ट्र होने पर भी नेपाल ने अपना धर्म, अपनी संस्कृति को बनाए रखा है। दोनों पर नेपालवालों को गर्व है - यही कारण है उस राष्ट्र की उन्नति का। श्री. विजयदास जी ने मौसी जी की भेंट करवाई जिसके कारण वहां के राष्ट्रजीवन के अनेक पहलू समझ में आए। मौसी जी ने इस यात्रा का भरपूर आनंद उठाया।

इसके पश्चात समिति का एक वर्ग ऋषिकेश में आयोजित किया गया था। इस वर्ग के समापन समारोह के लिए मौसी जी गई थीं। तीन-चार दिन वे ऋषिकेश में ही थी। वहीं से केदारनाथ और बद्रीनाथ जाना निश्चित हुआ। सिंधुताई फाटक,प्रमिलाताई मेढे और मौसी जी बद्रीकेदार की यात्रा के लिए चल पडी। ऊपर जाने के लिए वहां डोली का प्रबंध होता है। चढाई भी काफी है। किंतु मौसी जी ने डोली में बैठने से इन्कार किया और तीनों पैदल ही मंदिर तक पहुंची। भारत के मेरुदंड हिमालय के उन ऊँचे-ऊँचे शुभ्र शिखरों के दर्शन से वे एक केवल अवर्णनीय भावविश्व में खो गई थीं।

केदारनाथ से बद्रीनाथ जाते समय मौसी जी अस्वस्थ हो गईं। पानी में विद्यमान लोह कण वे पचा न सकीं और दस्त लग गए। भयानक कमजोरी आ गई थी। अचेत अवस्था में उनके हाथ पांव ठंडे पड गए। वहां मौसी जी की महानता जानकर डाक्टरी इलाज मिलने की संभावना कम ही थी। सिंधुताई और प्रमिलाताई दोनों बडी चिंतीत थीं। गांव में इधर उधर पूछताछ कर उन्हों ने एक वैद्यराज को ढूंढ निकाला। उनकी औषधि से मौसी जी को थोडी राहत मिली। इसी अवस्था में उन्हें डोली में बैठाकर बद्रीनाथ का दर्शन कराया और टॅक्सी से सीधे ऋषीकेश पहुंचकर डा. वेदप्रकाश के घर ले जाया गया। आषाढ शुद्ध दशमी का वह दिन मौसी जी का जन्मदिन था। मौसी जी का तो पुनर्जन्म हुआ था। मौसी जी को अचानक ऋषिकेश आया देख वहां कि सेविकाएं उनका शुभचिंतन करने पहुंचीं। कुछ समय के लिए मौसी जी छत पर आईं और उनकी शुभेच्छाओं का स्वीकार किया। समिति का कार्य निष्ठापूर्वक करने के लिए उन्हों ने सेविकाओं को प्रेरित किया।

पूर्णतः स्वस्थ हो जाने पर मौसी जी के मन में कन्याकुमारी जाने का विचार फिर आने लगा। जब से कन्याकुमारी में विवेकानंद स्मारक बना तभी से वहां जाने की उन्होंने सोची थी। मौसी जी अपने साथ कुछ अन्य सेविकाओं को ले जाना चाहती थीं। अतः कुछ सेविकाओं से उन्होंने इस बारे में पूछताछ भी की थी। विवेकानंद स्मारक के प्रमुख श्री. एकनाथजी रानडे मौसी जी को केन्द्र के विद्यार्थियों को रामायण सुनाने का आमंत्रण कई बार दे रहे थे। संयोगवश इस बार उन्होंने दिन भी तय कर दिए। मौसी जी के लिए भी वे दिन सुविधाजनक थे। अतः अपनी यात्रा निश्चित कर मौसी जी ने एकनाथजी को सूचित कर दिया।

हैदराबाद शाखा के विजयादशमी उत्सव के पश्चात् मौसी जी और प्रमिलाताई मेढे कन्याकुमारी गईं। मुंबई की कुछ अन्य सेविकाएं पूर्व नियोजित कार्यक्रमानुसार वहीं उन्हें मिली। श्री. एकनाथजी रानडे ने स्वयं मौसी जी के लिए सारे प्रबंध कर रखे थे। उन्हें एक स्वतंत्र कमरा भी दिया था। वहां विवेकानंद केंद्र के विद्यार्थियों के लिए मौसी जी ने रामायण पर प्रवचन दिया। उनसे खुले मन से चर्चा की। मौसी जी के व्यक्तित्व की छाप उन विद्यार्थियों पर ऐसी पडी की वे पूरा समय उन्हीं के आसपास रहें। मौसी जी के नागपूर लौटने पर भी वे विद्यार्थी उन्हें पत्र भेजते थे जो बडे ही भावपूर्ण होते थे।

विवेकानंद केंद्र में प्रतिदिन सुर्योदय से पूर्व भगवा ध्वज लहराया जाता है और सूर्यास्त से पूर्व उतार लिया जाता है। मौसी जी जितने दिन वहां रहीं प्रतिदिन ध्वजारोहण और ध्वजावतरण समय उपस्थित रहती थीं। वहां के विद्यार्थी वर्ग पर इस बात का भी अच्छा परिणाम हुआ। एक दिन मौसी जी ने उन विद्यार्थियों को अपने देश की ध्वज -परंपरा बताई और ध्वजारोहण के लिए सूर्योदय और ध्वजावतरण के लिए सुर्यास्त का नियम और उद्देश्य समझाया। उन्हों ने कहा कि ऐसा करने का कारण यह है कि हमारा यह गौरवशाली ध्वज हमेशा दमकता भाग्यरवि ही देखे। मौसी जी के तीन चार दिन यहां बडे ही मजें मे बीते। श्री. एकनाथ जी से कई विषयोंपर बातचीत हुई। उन्होंने भी निःसंकोच होकर खुले मन से चर्चा की। मौसी जी ने उनसे एक बार कहा कि, "क्या आपको लगता है कि हिंदुत्व पर गर्व करनेवाली देश की सभी संस्थाएं मिलकर देश की परिस्थिती पर विचार विमर्श करें?"

एकनाथ जी ने कहा, "किंतु इन कार्यक्रमों का एकत्रित आयोजन कैसे किया जाए?" मौसी जी ने कहा, "साल में कम से कम एक बार इन संस्थाओं एंव संगठनों के प्रतिनिधी एकत्रित होकर विचार विमर्श करके कार्यक्रम तय कर सकते है। एक ही कार्यक्रम अलग-अलग संस्थाओं द्वारा करने के बजाय एकत्रित रूप से किया जाए तो हिंदुओं का संगठित

स्वरुप देकर एकाध योजना यशस्वी की जा सकेगी। उदाहरणार्थ गोहत्या बंदी का कानून बनवाने के लिए समिति ने लाखों हस्ताक्षरों वाला पत्र प्रधानमंत्री को भेजा था। संघ ने भी इसके लिए विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किया था। तत्कालिन 'रामराज्य परिषद' इसी काम में जुटी थी। हुआ यह कि एकही काम करने के लिए हमारी शक्ति बिखर गई।

इस पर एकनाथजी ने मौसी जी से पूछा, "अच्छा तो आप बताईए हमें क्या करना चाहिए?" मौसी जी ने सुझाव दिया कि, "एक समन्वय समिति स्थापित की जाए।" मौसी जी की सुझाई वह समन्वय समिति १९७५ में आपात काल में अस्तित्व में आई।

कन्याकुमारी की यात्रा से मौसी जी लौटीं और बांगलादेश और पाकिस्तान के बीच युद्ध छिड गया। इस युद्ध में भारत का हस्तक्षेप तथा इंदिरा गांधीजी ने जिस दूरदर्शिता, योजकता और कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया उसके कारण समुचे विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बढी और विलक्षण धाक जम गई। मौसी जी ने प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी का पत्रद्वारा अभिनंदन किया। यही नहीं, सभी सेविकाएं इस प्रकार के पत्र प्रधानमंत्री को भेजें ऐसा संदेश भी उन्होंने सभी प्रांतो को भेजा। उनके आदेश का यथोचित पालन सभी ने किया।

कन्याकुमारी की यात्रा के बाद सबको साथ ले जाने का अवसर मौसी जी को पुनः नही मिला। कश्मीर-दर्शन की उनकी इच्छा अधूरी ही रही। जहां भी जाती, वहां के रिति रिवाज, सांस्कृतिक जीवन, उस स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व आदि सभी बातें जानने की उन्हें जिज्ञासा रहती थीं। एक बार वे कोकण के 'केलशी' गांव गई थीं। वहां चैत्र पोर्णिमा को देवी का बडा उत्सव मनाया जाता हैं। मौसी जी उस उत्सव को देखने के लिए दो-चार दिन विशेष रुप से वहीं रुकी थीं। किंतु वहां की कुछ बातें उन्हें ठीक लगीं।

उत्सव था तो देवी का लेकिन रथ पर आरुढ छडिए और चोबदार का आपस में हिंदी में बातचीत करना, रथ का आकार भी मुसलमानों की डोली जैसा, शोभायात्रा में बीच ही में देवी को भगाया जाना, आदि बातों के कारण उत्सव पर थोडी मुसलमानी छाप नजर आ रही थी। उन्होने वहां के लोगों से भी पूछा किंतु उन्हें संतोषजनक उत्तर नही मिला। फिर वे मुझसे बोली, "सुशीला, आप भी तो केलशी गांव की है। यहा के महाजन हैं आप। मेरे प्रश्नों के उत्तर ढूंढना अब आपका काम है।"

इतनी पैनी दृष्टी थी उनकी। निरीक्षण शक्ति भी आश्यर्यकारी थी। यात्रा में मौसी जी के पास सर्व प्रकार की सामग्री होती थी। तरह तरह की दवाईयां, पुस्तकें, दैनंदिनी और बच्चों के लिए मिठाई आदि भी। यात्रा में क्या क्या अड़चनें आ सकती है, वे पहले से ही सोच

लेतीं और उन्हें दूर करने की सामग्री साथ रख लेती थीं। यात्रा में भी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम पूर्ण करना उनका नियम होता था। वे कभी किसी के घर अपनी कोई वस्तु नहीं भूलीं। यात्रा में वे अपने आपको हर परिस्थिती में संभाल लेती थीं। आवश्यकता पडने पर बाहर के किसी भोजनालय में भोजन करने के लिए भी वे तैयार हो जाती थी।

उनकी इस दूरदर्शिता बात बात पर अनुभव करने को मिलती थीं। कहीं जाना हो तो मौसी जी आधा पौना घंटा पहले से ही तैयार रहतीं। जाते समय उनकी ओर से कभी कोई भागदौड या ऊहापोह नहीं होता था। अनेक व्यस्तताओ एवं विचारों के बीच इन छोटी छोटी बातों का ध्यान रखना सामान्य बात नहीं है।

१८

संगठन का सामाजिक चिंतन

१९७१ में मौसी जी को एक और चिंता सताने लगी थी। १९५८ के आसपास सरकार ने धार्मिक कार्य के लिए कुछ जमीनें नाममात्र शुल्क लेकर बेचीं थीं। नागपुर के रामनगर में ऐसी ही एक जमीन 'रानी लक्ष्मीबाई स्मारक समिति, नासिक' के नाम पर मौसी जी ने खरीदी थी। उद्देश्य यह था कि, वहां रामायण के अध्ययन के लिए 'रामायण कक्ष' का निर्माण किया जाए। विभिन्न संस्थाओं में काम करनेवाली महिलाओं को एक मंच उपलब्ध कराया जाएं और पालनाघर, उद्योग मंदिर और संस्कार केंद्र जैसी योजनाएं चलाई जाएं। मौसी जी ने ही वहां भूमिपूजन भी किया था। इस स्थान पर निर्माण होने वाले भवन को 'श्री शक्तिपीठ' नाम दिया जाए यह भी तय हुआ था। आगे चलकर 'रानी लक्ष्मीबाई भवन, नासिक' से 'शक्तिपीठ' अलग कर दिया गया। अब समस्या यह थी कि बारह-तेरह वर्ष पहले खरीदी इस भूमि पर कोई भी निर्माण कार्य नहीं हुआ था, जो कि सरकारी नियमानुसार आवश्यक था।

सरकारने इस नियम का स्मरण कराने के लिए पुनः सूचित भी किया था। शीघ्र ही कोई निर्माण (टीन वाले छप्परवाले ही सही) - न होता तो यह भूमि सरकार अपने अधिकार में ले लेती। मौसी जी की भागदौड शुरु हो गई। नागपुर की सेविकाओं ने भी भरसक प्रयत्न करके थोडा बहुत रुपया इकट्ठा किया। जमीन कही हाथ से निकल न जाए, यही चिंता मौसी जी को सताएं जा रही थी। सबके सहयोग से वहा एक छोटा सा कमरा बांधा गया। आज वहां डाक्टरी मदत केंद्र, उद्योग मंदिर, छात्रावास आदि योजनाएं कार्यान्वित की जा रहीं हैं। मौसी जी का स्मारक भी इसी भूमि पर बनाया गया है।

समिति की शाखाएं दिन प्रतिदिन बढती जा रही थी। सम्मेलन भी आयोजित हो रहे थे। किन्तु प्रत्येक के मन में शंकाएं उभर रहीं थीं। अडचन उत्पन्न हो रही थी। सबकी राय थी कि कार्यप्रणाली में कुछ परिवर्तन किया जाएं। बदलते समय के साथ समिति को भी कदम मिलाने

चाहिए। ऐसी सूचनाएं मौसी जी के पास आ रहीं थीं। उन्होने भी थोडा विचार किया। शाखा के कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए एक-दो दिन की बैठक पर्याप्त नहीं थी। कम से कम पांच-छह दिन सभी भारतीय अधिकारियों का एकत्रित आना आवश्यक था। अपना यह विचार उन्होने बकुलताई और ताई आपटे को बताया। वे दोनों भी इस बात से सहमत थी। पांच-छह दिन रहने के लिए शहर से दूर किसी शांत परिसर वाला स्थान आवश्यक था। अतः उरलीकांचन स्थित बकुलताई के बंगले का चयन किया गया।

इस बैठक के लिए सभी भारतीय अधिकारी उपस्थित थीं। कोई बाहरी हस्तक्षेप या संपर्क न हो इसिलिए रसोई बनाने के लिए मुंबई की तीन सेविकाओं अक्का कानिटकर, माई वैद्य तथा ताई गाडगील को बुलाया गया था। इस बैठक में समय का कोई बंधन नहीं था। एक एक विषय समाप्त तक बैठक चलती रहती थीं। सेविकाओं के लिए मौसी जी ने इस बैठक में चार सूत्र बताएं -

१. समाज का अज्ञान दूर करना - इसके लिए शाखा के अतिरिक्त समय भी सेविकाओं को देना चाहिए। व्याख्यान, कीर्तन और चर्चा सत्रों का इस काम के लिए उपयोग किया जाए।

२. गुणवत्ता बढाना - प्रत्येक सेविका को अपनी गुणवत्ता बढाना चाहिए जो पठन, मनन और चिंतन से साध्य की जा सकती हैं। विषय का संपूर्ण ज्ञान हमारे पास हो तो तभी हम दूसरों का अज्ञान दूर कर पाएंगी। (सेविकाओं का ज्ञान और पठन-श्रवण का स्तर बहुत नीचा है ऐसा उन्हें लगता था। इसिलिए वे समय समय पर नई पुस्तकों की सुचि सबको देती थीं।)

३. श्रद्धास्थानों को दृढ बनाना - भारत के श्रद्धास्थानों में जाकर नियमित रुप से अपने श्रद्धा सुमन अर्पण करने चाहिए। हमारे श्रद्धा स्थान कौनसे है, उनका महत्त्व क्या है - यह समाज को समझाना आवश्यक हो, उनकी पवित्रता पर कोई आच नहीं आने दे। हमारे ऐतिहासिक स्थान, पवित्र नदियां, धर्मपीठ आदि भी हमारे श्रद्धास्थान ही तो है।

४. सुस्पष्ट धर्मकल्पना-समर्थ रामदास स्वामी ने कहां है "ईश नाम से जल भर दे। अखिल विश्व में धूम मचां दे।" इसका मर्म समझकर आज ईश का अर्थ धर्म माने। धर्म की धूम सर्वत्र मचा दे। इसके लिए नितांत आवश्यक है धर्म का सूक्ष्म अध्ययन जो प्रत्येक सेविका करे। धर्म और रुढी के बीच का अंतर स्वयम् समझे और लोगों को भी समझाए। दोनों की परिभाषाओं में कोई गडबडी नही होनी चाहिए। धर्म के नाम पर अंधश्रद्धा ओं को कोई स्थान न दें। हिंदु धर्म का सार पहले समझ लें।

दूसरे सेविकाओं के लिए व्यक्ति को परखने की चार कसौटियां उन्होंने स्पष्ट कीं। वे कहा करती थी कि अपने को भी इन्हीं कसौटियों पर परखा जा सकता है। ये कसौटियां थी -

१) पात्र - किसी के घर जाने पर वहां के बर्तनों आदि से उस घर की परिस्थिति का अनुमान हम कर सकती हैं। तदनुसार सेविका उस घर में अपना आचरण एवं शैली निश्चित करे।

२) वस्त्र - मनुष्य के वस्त्रों से हम उसे पहचान सकते है। भडकीले कपडे स्वभाव का छिछौलापन दर्शाते है। जब कि शालीनता कपडों से आंकी जा सकती है।

३) चित्र - घर में लगे चित्रों से उस व्यक्ति की आभिरुचि समझी जा सकती है। भगवान की तस्वीरों से उस घर की भगवान पर कितनी श्रद्धा है इसका अनुमान लगाया जा सकता है। नेताओं आदि की तस्वीरों से उस घर में देशभक्ति कितनी प्रबल है इसका अनुमान लगाना संभव होता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण वे हमेशा देतीं कि जिन घरों में डा. हेडगेवार और प.पू. गोलवलकर गुरुजी की तस्वीरें लगी होती है, वह घर संघ परिवार से जुडा है, यह हम जान सकते हैं।

४) क्षेत्र - परिसर - घर की वस्तुएं भी मनुष्य स्वभाव की द्योतक होती है। साफ सुधरापन और ढंग से रखी गयी वस्तुएं, बाग बगीचा मनुष्य की सौंदर्यदृष्टी और रसिकता के परिचायक होते है। ये सब बातें यहां इसलिए कही गई हैं ताकि कोई भी सेविका जब समिती के प्रचार के लिए जाये तो इन बातों को ध्यान में रखकर अपनी आचरण नीति निर्धारित करें।

उपरोक्त बातों से एक बात स्पष्ट होती है कि समिति के कार्य के बारे में मौसी जी ने कितनी गहराई से सोचा था। सेविका कैसे बोले, उसका आचरण कैसा हो, उसे क्या क्या पढना चाहिए आदि बातो में भी उनकी सूचनाएं होती थीं। वे हमेशा कहा करती थीं कि समिति की सेविका चौबीस घंटे सेविका ही रहती है। घंटे भर शाखा में जाने से मात्र कोई सेविका नहीं बन जाती। प्रत्येक सेविका को इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि वहां जहां रहती है, जिन लोगो में उठती-बैठती है, जहां काम करती है, वहां वह प्रथम समिती की सेविका है।

उरलीकांचन की बैठक में इस बात को दोहराया गया कि समिति को यदि दूर दूर के गांवोंतक पहुंचना है तो प्रवचन और कीर्तन सबसे अधिक प्रभावी माध्यम होगा। काशीताई कुलकर्णी से उन्होंने कहा कि, "काशीताई, जिस प्रकार भजन सिखाए जाने के वर्ग होते हैं, उसी प्रकार आप कथा कीर्तन के वर्ग भी लीजिए।" काशीताई को भी यह कल्पना रास आ गई। यही नहीं श्रीमती सुशीलाबाई नामजोशी ने कीर्तन का एक नमूना भी प्रस्तुत कर दिखाया। चार दिन की इस बैठक में आगामी वर्गों के कार्यक्रम निश्चित किए गए। साथ में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम करने

का भी निर्णय किया गया कि १९७४ में आनेवाली जिजामाता की तीन सौंवी पुण्यतिथी संपूर्ण भारत में मनाई जाए। इस उपलक्ष में समाज के सभी वर्गों तक पहुंचने का एक अवसर समिति को मिलेगा।

बैठक की समाप्ति पर सभी सेविकाएं लौट गई, किंतु मौसी जी वहीं रुकी थी। वे वहां के प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र में अपना इलाज करके देखें ऐसा सबका आग्रह था क्योंकि उन दिनों मौसी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। पेट में प्रायः वात प्रकोप हो जाया करता, बद्धकोष्ठ की भी शिकायत रहती, जी घबराने लगता, रक्तचाप की बीमारी भी लग गई थी। निरंतर प्रवास तथा काम के बढते विस्तार के साथ ही मानसिक तनाव उनकी बीमारीयों को पेचीदा बना रहा था। उनके छोटे बेटे आनंद को जबसे हृदय गति का दौरा पड़ा तब से मौसी जी के तन और मन के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा था।

मौसी जी एक महिना उरलीकांचन रहीं। नासिक की ताई मेहेंदले पुरे समय उनके साथ थी। सिंधुताई फाटक कुछ दिनों के लिए उनके साथ रहीं। उनके रहने से मौसी जी को बडा अच्छा लगा। पुणें शाखा की सेविकाएं बारी बारी से मौसी जी से मिलती रहेंगी ऐसी व्यवस्था ताई जी ने की थी और वे स्वयं भी वहां जाती थी।

मौसी जी चाय बहुत पीती थी। किंतु स्वास्थ्य के लिए उन्होने चाय पीना छोड दिया। वहां परहेज बहुत अधिक थे। किंतु मौसी जी ने सभी परहेज बडे ही नियमित रुप से किए। मौसी जी आयु के सत्तरवे साल की ओर मुड रहीं थीं। अतः ये परहेज उन्हें काफी कष्टदायी साबित हुए। कई दिनों तक घर में पिसे आटे की ही रोटियां वे खाती थी। यात्रा में उनका आटा उनके साथ होता था। किंतु इतना परहेज हुए भी उन्हें विशेष स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ।

मौसी जी की इच्छा थी कि जिजाबाई की तीन सौंवी पुण्यतिथी के उपलक्ष्य में जिजाबाई के जीवन पर कोई उपन्यास, नाटक या काव्य जैसा कोई साहित्य सेविकाएं लिखे। उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त भी की थी। उन दिनों स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण मैं छुट्टी पर थी। सोचा, क्यों न पडे पडे मौसी जी की इच्छा पूरी करने का प्रयत्न किया जाए। तभी जिजाबाई के जीवन पर आधारीत ' स्वर जिजाई ' काव्य की रचना मैने की। इस काव्य गायन के निवेदन सहित पचास से अधिक कार्यक्रम मुंबई और मुंबई से बाहर हुए। मौसी जी को यह कार्यक्रम बहुत अच्छा लगा। उन्हें प्रारंभ से ही इस तरह के कार्यक्रमों में बहुत रुचि थी।

उरलीकांचन की बैठक में लिए निर्णयानुसार जिजाबाई की पुण्यतिथी सर्वत्र मनाई गई। इस अवसर पर मुंबई विभाग ने एक अभिनव योजना शुरु की। इसके अंतर्गत रायगड, ठाणे और

उपनगरीय मुंबई के तीन सौ गावों में जाकर जिजाबाई के बारे में सारी जानकारी दी गई। साथ ही समिति का कार्य के परिचय का भी कार्यक्रम किया गया। अंत में पाचाड़ स्थित जिजाबाई की समाधि पर घोष - सहित मानवंदना दी गई। चारसौं सेविकाओं ने इस योजना में भाग लिया था। 'स्वर जिजाई' कार्यक्रम यहां भी प्रस्तुत किया गया।मौसी जी की प्रेरणा से ही अनेकों सेविकाओं के कलागुणों और कल्पकता को प्रोत्साहन मिलता गया।

'सिंदखेड राजा' - जिजाबाई का जन्म स्थान है। यहां भी मौसी जी की प्रेरणा से ही बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। जिसके लिए उषाताई चाटी पहले तीन-चार बार वहां गई ; बैठकें ली और लोगों से मिली थीं। औरंगाबाद की सेविकाएं इस उत्सव में सबसे आगे थीं। कार्यक्रम दो दिन का था। जिजामाता की प्रतिमा की भव्य शोभायात्रा निकाली गई। पास पडोस के गांवो की महिलाएं भी इस कार्यक्रम में बडी संख्या में आई थीं। तभी रेल्वे की हड़ताल शुरु थी। अतः स्थानीय लोगों ने सेविकाओं से कहा कि कार्यक्रम रद्द कर दिया गया है। किंतु हमारी सेविकाओं ने दृढता से कहा कि ; ''हमारी अधिकारियों ने हमें कोई ऐसी सूचना नहीं दी है। अतः कार्यक्रम रद्द किए जाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। कोई सूचना नहीं इसका अर्थ है हमारी अधिकारी कोई न कोई पर्याय ढूंढ कर यहां अवश्य पहुंचेगी।'' और यही हुआ। नागपुर से भी सौ से अधिक सेविकाए कार्यक्रम के लिए आईं थी। मौसी जी विदर्भ कन्या थी और जिजाबाई भी। इसलिए जिजाबाई पर मौसी जी को बड़ा गर्व था। समिति के उत्सव के बाद सरकारी तौर पर भी जिजाबाई की पुण्यतिथी मनाई गई।

'सिंदखेड राजा' में एक सैनिकी विद्यालय हो, लड़कियों के लिए विद्यालय और छात्रावास हो ऐसी मौसी जी की बडी इच्छा थी। सरकार से इस बारें में उन्होंने पत्रव्यवहार भी किया था। मौसी जी का मानना था कि यही जिजाबाई का सच्चा स्मारक होगा। मौसी जी नें इस दिशा में स्वयं कदम उठाने शुरू कर दिये थे। किन्तु देश की परिस्थिती तेजी से बदलने लगी थी। देश में 'आपातकाल' की घोषणा की गई। १९७५-७६ दो वर्ष तक अत्यंत अस्थिरता का वातावरण था। उसके बाद मौसी जी ही नहीं रहीं। अब तक तो समिती ने इस योजना को कार्यान्वित करने की नहीं सोची है।

मौसी जी की सूचना नुसार जिजामाता पुण्यतिथी उत्सव स्थान स्थान पर धूमधाम से मनाया गया। ठाणे से कल्याण के क्षेत्र की पचीस संस्थाओं ने इस कार्यक्रम में भाग लिया था। इसके लिए एक स्वतंत्र समिती का गठन किया था और ठाणे के जिजामाता ट्रस्ट में तीन दिन तक यह उत्सव मनाया गया था। मौसी जी तीनों दिन उपस्थित थी। व्याख्यान, चर्चासत्र, और मनोरंजन के कार्यक्रम ऐसा उत्सव का स्वरुप था। इस उत्सव के बाद प्रतिवर्ष ट्रस्ट में ठाणे की महिला

संस्थाएं एकत्र होकर जिजामाता पुण्यतिथी मनाती है। स्थायी धनराशी के ब्याज से ठाणे के विद्यालयों में सात वी कक्षा में समाज विज्ञान विषय में प्रथम आने वाले लड़कियों को प्रतिवर्ष पुरस्कार दिए जाते हैं।

उस वर्ष नागपुर में भी यह उत्सव मनाया गया। ''साकार स्वप्न'' कार्यक्रम का प्रथम मंचन इस उत्सव में हुआ। इस रंगारंग कार्यक्रम में नृत्य, दृष्य तथा काव्य का अपूर्व संगम था। मौसी जी का दृष्टिकोण ऐसा कभी नहीं रहा कि इस प्रकार के कार्यक्रमों को केवल समिती तक सीमित रखे। वे चाहती थी कि समाज को साथ लेकर ही ऐसे कार्यक्रम होते रहे। वे कहा करती थी कि महान व्यक्तिओं का स्मरण सबको करना चाहिए। अतः १९४९ के संघ प्रतिबंध काल से उन्होने महिला संगठनों को देवी अहल्याबाई, रानी लक्ष्मीबाई और जिजामाता की पुण्यतिथी उत्सव एकत्रित रुप में मनाने को कहा था। तद्नुसार आज भी उसी पद्धती से यह कार्यक्रम स्थान स्थान पर प्रस्तुत किए जाते हैं।

१९

सत्त्व परीक्षा

वर्ष १९७४ यूं बडी धूमधाम से बीता। १९७५ साल देश में भारी तनाव लेकर आया। सर्वत्र सरकार के प्रति असंतोष बढता जा रहा था। सत्ताधारी दल के विरुद्ध अन्य दलों ने जोरदार संघर्ष छेड दिया था। प्रति दिन कोई न कोई नई बात सामने लाई जाने लगी थी। विरोधी दल के एक संसद सदस्य ने तो इंदिरा गांधी के विरुद्ध मुकदमा दायर किया था। चुनावों में सरकारी वाहनों और सामग्री के दुरूपयोग का आरोप उनपर किया गया था। इलाहाबाद के उच्च न्यायालय में इस मुकदमें की सुनवाई चल रही थी। पुरे देश की नजरें इस मुकदमे पर टिकी थीं। प्रधान मंत्री पर लगाए गए आरोपों पर न्यायालय क्या निर्णय देगा, सबको बडा कुतुहल था। और १२ जून को न्यायालय ने निर्णय दिया कि चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने का आरोप सिद्ध हो गया है। अतः उनका लोकसभा का चुनाव रद्द समझा जाता है तथा उन्हें ६ वर्षों के लिए चुनाव लड़ने के लिए अपात्र घोषित किया जाता है। सत्ताधारी के विरुद्ध निर्भिड न्याय देनेवाले अठारहवी सदी के महाराष्ट्र के पेशवेकालीन न्यायमूर्ती रामशास्त्री प्रभुणे के दर्शन इस निर्णय द्वारा देश को हुए। यह सनसनी पैदा करनेवाला निर्णय सुनकर सभी लोग चकित हुए थे।

इसके बाद श्रीमती इंदिरा गांधी ने लोकसभा में एक विधेयक पारित करवा लिया। उसमें प्रावधान था कि राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के विरुद्ध कोई भी नागरिक मुकदमा दायर नही कर सकता था।

देश में आपातकाल घोषित किया गया। कई संघटनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। समाचार पत्रों में इन संघटनों की सूचि प्रकाशित की गई थी। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नाम भी था। सभी सेविकाओं को भय था की क्या राष्ट्र सेविका समिति पर पुनः प्रतिबंध लगाया जायेगा ? किंतु समिति का नाम प्रतिबंधित संघटनों की सूचि मे नहीं था। अतः इस बार मौसी जी ने निर्णय लिया कि जब हम पर कोई प्रतिबंध नहीं है, तो समिति की शाखाएं पूर्ववत चलती रहेगी। इस निर्णय की सूचना सब दूर दी गई। सेविकाओं ने स्वयं स्थान स्थान जाकर यह संदेश दिया था। प्रत्यक्ष सेविकाओं के आने से छोटे छोटे गावों की सेविकाओं का धीरज बढा।

आपातकाल की घोषणा के साथ ही गिरफ्तारियों का सिलसिला प्रारंभ हुआ। विरोधी दलों के कार्यकर्ता, नेता और संघ के अधिकारी वर्ग को पहले पकडा गया। सर्व सामान्य संघ स्वयं सेवकों ने तो कारागृह में जाने के लिए बिस्तर बांध रखा था। समिति की सेविकाओं का भी अनुमान था कि उन्हें किसी भी समय 'बुलावा' आ सकता है। वे भी पुरी तैयारी में थी। कारागृह जाना पडेगा इसलिए शाखाएं बंद करने का विचार किसी के मन में नहीं आया। आनेवाली हर चुनौती को स्वीकार करने का संकल्प सभी सेविकाओं ने किया था। आपतकाल की घोषणा जून में हुई थी और जुलाई तक सरकार ने उसकी दृष्टी से महत्त्वपूर्ण लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। किंतु अनेक महत्त्वपूर्ण नेता भूमिगत हो गए थे। नाम तथा रूप बदलकर ये भूमिगत लोग सरेआम घूमते रहते थे। गिरफ्तारी से बचे सभी दलों के लोगों की और संघ स्वयं सेवकों की एक समन्वय समिति स्थापित की गई। इस समिति ने सत्याग्रह करने का निर्णय लिया। मौसी जी ने भी सेविकाओं को सत्याग्रह करने में सहभागी होने की अनुमति दी थी। तद्नुसार समिति की सैंकडो युवा तथा वृद्ध सेविकाओं ने सत्याग्रह किया।

सेविकाओं ने इस बार उल्लेखनीय काम कर दिखाया। उन्होने बडी दृढता से परिस्थिती का सामना किया। जिन सेविकाओं के लिए स्वयं सत्याग्रह में भाग लेना असंभव था उन्होने अपने बेटे बेटियों को सत्याग्रह करने की अनुमति सहर्ष दी थी। घर के बेटे, पुरुष 'मिसा' के अंतर्गत बंदीगृह में, कब रिहा होंगे इसका पता नहीं, ऐसी परिस्थिती में भी कई सेविकाओं ने दृढता से अपने घर संभाले। उन दिनों महिलाओं में इतनी घबराहट फैली थी कि जिन घरों के पुरुष बंदीगृह में थे उन घरों में वे सुहाग त्यौहारो पर भी नहीं जाती थी।

इस पार्श्वभूमी पर सेविकाओं ने जिस धैर्य का परिचय दिया, निश्चित ही उल्लेखनीय था। यह हिम्मत समिति के कारण सेविकाओं में आई थी। उनके मनोबल को राष्ट्र सेविका समिती ने दृढता प्रदान की। इसीलिए जिन सेविकाओं ने प्रत्यक्ष रूप से सत्याग्रह में भाग नहीं लिया उन्होने अत्यंत निडरता से गुप्त पत्र बाटे, संदेश वाहक बनी, भूमिगतों को आश्रय दिया। यह निर्भयता मौसी जी के संस्कारों की ही देन थी।

उन दिनों मौसी जी अधिकतर वर्धा और नागपुर में रहीं। नागपुर के महिलाओं के सत्याग्रह की संपूर्ण योजना राष्ट्र सेविका समिती ने कुछ अन्य बहनों की मदद से बनाई। उनकी तैयारी तो इतनी जोरदार थी कि आवश्यकता नुसार अन्य स्थानों पर भेजने के लिए भी उनके पास टुकडियां तैयार थी। अपनी सेविकाओं का यह कृतित्व मौसी जी देख रही थी। कभी कभी कोई उनसे पूछता, "मौसी जी, आपको पकडे जाने का भय नहीं लगता ?"

''भय भला किस बात का ?'' वे प्रतिप्रश्न करती।

''इस बुढापे में वे आपको पकड ले तो ?''

''वह तो मेरा सौभाग्य होगा। इस देश के नागरिकों के न्यायोचित अधिकार के लिए मैंने कुछ किया यह संतोष तो मुझे मिलेगा'' मौसी जी उत्तर देती।

देश में चलने वाले दमनचक्र को देख मौसी जी बेचैन हो जाती। उन्हे लगता था कि सत्याग्रह के साथ साथ कुछ और प्रयत्न होने भी आवश्यक है। अतः उनके मन में आया कि श्री. विनोबा भावेजी से मिलकर कोई उपाय बताने का उनसे अनुरोध किया जाए क्योंकि उस समय इंदिरा जी को कुछ समझा सके ऐसी श्रेष्ठ और वरिष्ठ व्यक्ति आचार्य विनोबा भावे के अतिरिक्त और कोई नहीं थी।

अपना यह विचार मौसी जी ने कुछ संघ अधिकारियों के भी सामने रखा। उन्हे कल्पना अच्छी लगीं। उनका कहना था कि केवल समिति की सेविकाओं के जाने की बजाय विविध क्षेत्रों और राजनितिक दलों की महिलाओं को भी साथ ले लिया जाए। तदनुसार योजना बनी और अक्तूबर १९७५ में विनोबा जी से मिलना सुनिश्चित हुआ।

बंबई की प्राध्यापिका श्रीमती उषा मेहता और श्रीमती कामेरकर से भी पूछा गया था, किंतु किन्ही कारणों से वे नहीं आ पायी। मिलने का दिन भी तय किया गया। नागपुर के अहल्या मंदिर में सबको एकत्रित होना था। इस संपूर्ण काम में कडी गोपनीयता रखी गई थी। फिर भी बाद में अहल्या मंदिर में पूछताछ हो ही गई।

निर्धारित दिन प्रातः एक निजि बस से श्रीमती ताई आपटे, प्रमिलाताई मुंजे, सिंधुताई फाटक, मैं स्वयं और अन्य पंधरह-बीस सेविकाए वर्धा के सेवाग्राम पहुँची। श्रीमती प्रभा देशपांडे और लीला देशपांडे ने अंतिम ट्रेन से जाकर मौसी जी को हमारे आने का समाचार दिया था।

विनोबा जी को देने के लिए एक निवेदन तैयार किया गया था। उसमे लिखा था कि, ''देश पर लादे गए आपातकाल के कारण लोगों पर बहुत अन्याय हो रहा है। आज हमारे पास वयोवृद्ध और विचारक एक आप ही है। इंदिरा जी को आपने बेटी माना है। अतः आप ही उन्हे कुछ समझा सकते है।''

उस समय विनोबा जी ने मौन व्रत धारण कर रखा था। अतः उन्हे मिलने गयी जो सेविकाए गयी थी, उनसे वे बात नहीं कर सके। सभी प्रश्नोत्तर एक स्लेट पर लिखे गए। अंत में उन्होने बताया कि, '' अगले महिने इंदिरा गांधी नागपुर आ रहीं है, तब लोग स्वयं ही उनसे मिल

ले। इस संदर्भ में कुछ कर पाने में मैं असमर्थ हूं।" विनोबा जी से मिलने के बाद मैं, तथा श्रीमती प्रमिलाताई मुंजे, सिंधुताई फाटक आदि तीन-चार बहनें मौसी जी से मिलने वर्धा पहुंची। शेष सभी सेविकाएं नागपुर लौट गई। संघ के कुछ वरिष्ठ अधिकारी याने श्री. मोरोपंत पिंगले, श्री. भाऊराव देवरस मौसी जी से मिलने तथा कुछ बातें तय करने के लिए वर्धा आए हुए थे। मौसी जी से पूछा, "इस आपातस्थिती को समाप्त करने में समिति क्या क्या मदद कर सकेगी ?" "आप जो चाहेंगे वह सब समिति करेंगी।" ऐसा आश्वासन मौसी जी ने दिया। तदनूसार दो बातें तय की गई। एक जहां जहां सत्याग्रह हो वहां समिति भी उसमें सहभागी हो। और दुसरे दो अक्तुबर को गांधी जयंती के अवसर पर समन्वय समिति की सभा होगी, उस दिन सभी सदस्य महात्मा गांधी की तस्वीर वाले भील्लें लगायेंगे जिस पर गांधी जी का प्रसिद्ध वाक्य 'निर्भय बनो" लिखा रहेगा। समिति भी इस सभा में सहभागी हो ऐसा श्री. मोरोपंत जी ने कहा। इस काम के लिए भी मौसी जी ने स्वीकार कर लिया था। यह भेट गुप्त रुप से हुई थी। मोरोपंत जी ने वेषांतर किया था और मौसी जी के साथ हम दो-तीन सेविकाएं ही थी।

उस वर्ष युवा और बाल सेविकाओं के ग्रीष्मकालीन वर्ग बहुत थोडे ही हो पाए थे। अतः निर्णय किया कि अधिकारियों का एक वर्ग ठाणे की जिजामाता ट्रस्ट में लिया जाए। यह वर्ग मई में संपन्न हुआ।

इस वर्ग में शारीरिक प्रशिक्षिण के स्थान पर बौद्धिकों पर अधिक बल दिया गया। इन बौद्धिकों के लिए विष्णुजी क्षीरसागर, बाबासाहब ठकार, मधुकरराव महाजन, स्वामी चिन्मयानंद आदि लोगों के भाषण और बाद में प्रश्नोत्तर तथा चर्चा हुई। आगे की नीति निर्धारित करने के लिए श्री. कपूर जी के घर श्री. माधवराव मुले, श्री. भाऊराव देवरस आदि की मौसी जी के साथ एक गुप्त बैठक हुई। सत्याग्रह अब बंद हो चुके थे। परंतु सत्याग्रहि यों और सरकारी अवकृपा के शिकार लोगों ने सभी कारागृह भर डाले थे। इन लोगों को समय समय पर मिलकर उन्हें धीरज बंधाने का काम समिति की सेविकाएं करे ऐसा मौसी जी ने उस वर्ग में सबको कहा। आपातकाल के भारी तनावग्रस्त वातावरण में भी यह वर्ग अच्छी तरह संपन्न हुआ। मौसी जी स्वयं नागपुर कारागृह में जातीं थी। जिन के घरों के बेटे, पति आदि को बंदी बनाया गया था, ऐसी सेविकाओं को मौसी जी धीरज बंधाने वाले पत्र नियमित रुप से भेजती थी। हर त्यौहार और उत्सव पर सेविकाए कारागृहों में बंदी बनाए लोगों से मिलती थी। बंबई की एक सेविका सुशीला कशेलकर ने चौदह करोड राम नाम जप करने का संकल्प किया था। देखते देखते सेविकाओं ने उसे पूरा कर दिखाया था। पुणे की सेविकाओं ने श्री सूक्त के पारायण तथा आवर्तन किए। भिन्न भिन्न स्थानों पर इस प्रकार के कई कार्यक्रम हो रहें थे।

पुणे के येरवडा कारागृह में बालासाहब देवरस जी के जन्म दिवस पर शुभेच्छाएं देने श्री. ताई आपटे स्वयं गई थी। उनके साथ पांच-छह सेविकाएं भी थी। ताई जी के इस साहस की सभी ने खूब प्रशंसा की थी।

आपातकाल के दमनचक्र की चपेट में आनेवाली प्रत्येक सेविका के लिए समिति एक बडा आधार सिद्ध हुई। महिला सत्याग्रहियों में समिति की सेविकाओं की संख्या लक्षणीय थी। अनेकों के घरों की तलाशियां ली गई। दो-तीन दिन कारागृह की हवा खानेवाली तो अनेक बहनें थी। इसके पीछे एक भ्रम था कि समिति संघ की महिला शाखा है। किंतु बंदी बनाई गई प्रत्येक सेविकाने इतनी दृढता से कहा कि समिति और संघ का कोई संबंध नहीं हैं। अधिकारियों को उनका कहा मानना पडा क्यों कि उन्होने एक राष्ट्रीय विपत्ति के विरूद्ध सत्याग्रह किए थे न कि संघ पर लगे प्रतिबंध के विरूद्ध।

अंततः जनवरी १९७७ में यह ग्रहण छूटने लगा। फरवरी में सभी बंदियों को छोड दिया गया और मार्च में आम चुनावों की घोषणा कर दी गई। इन चुनावों में जनता की अभूतपूर्व जीत हुई। इंदिरा गांधी और संजय गांधी की जबरदस्त हार हुई। जनता दल विजयी हुआ और सत्ता में आ गया। मौसी जी ने मंत्री मंडल को अभिनंदन करनेवाला तार भेजा। बाद में जब वे दिल्ली गई तो रेलमंत्री मधु दंडवते और विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से प्रत्यक्ष भेंट कर उन्हें बधाई दी।

उस वर्ष का राम नवमी उत्सव नागपुर के अहल्या मंदिर में बडे ही उत्साह और धूमधाम से मनाया गया। नौ दिनों तक रामायण का पाठ हुआ और वर्ष प्रतिपदा के दिन 'अन्नकोट' किया गया जिसमें लगभग दो तीन हजार लोगों को अन्नदान किया गया। इस अन्नकोट में भगवान कृष्ण की जो छोटी मूर्ती अन्न के साथ रखी थी, वह गायब हो गई थी। कुछ बहनों का मानना था कि भगवान का इस तरह गुम हो जाना अशुभ होता है। मौसी जी ने कहा, "अच्छा ही तो हुआ। जनार्दन जनता में विलीन हो गया।" किसी घटना का बुरा अर्थ लगाकर धीरज खो बैठना मौसी जी का स्वभाव नहीं था।

रामायण समाप्ती पर भी सामुदायिक भोजन का एक बडा कार्यक्रम हुआ। बंदिवास से मुक्त नागपुर वासियों को भोजन का आमंत्रण दिया था। इन में संघ बंधुओं की संख्या अधिक थी। मा. बालासाहब देवरस और उनके सहयोगी अहल्या मंदिर में भोजन के लिए पधारे थे। यह समारोह बडे ही हर्षोल्लास भरे वातावरण में हुआ। स्पष्ट है कि यह आनंदोत्सव किसी एक व्यक्ति की रिहाई की खुशियाँ मनाने के लिए नही थी। वह सत्य की विजय का प्रतीक था। मौसीजी बडी प्रसन्न थीं। अतिथियों की व्यवस्था वे स्वयं कर रही थी और आनेवाला प्रत्येक

व्यक्ति मौसी जी का चरणस्पर्श कर उन्हें प्रणाम कर रहा था। उनके प्रति आदरभाव की ही यह एक अभिव्यक्ति थी। संभवतः सबको मौसी जी में अपनी माँ के ही दर्शन हो रहे थे। समय समय पर ममत्व की महत्ता बतानेवाली मौसी जी क्या थी, इसे सब ने उस दिन अनुभव किया।

२०

अंतिम पर्व

आपातकाल की अग्नि परीक्षा से समिति भी नई उमंग और उत्साह लेकर निखर उठी। सब दूर शाखाओं में नव चेतना की लहर दौड गई थी। उस वर्ष ग्रीष्मकालीन वर्ग में मौसी जी उपस्थित तो थीं किंतु वे कुछ अस्वस्थ थीं। एक ओर आपातकाल की राजनीतिक परिस्थिती का तनाव तो था ही, दूसरी ओर उनके दामाद नानासाहब चोलकर की अस्वस्थता का तनाव भी मौसी जी पर हावी हो गया था। वे नागपुर में कुछ दिन वत्सलाताई के घर रहने गई थीं। वत्सलाताई मौसी जी की न केवल बेटी थी, अपितु वह उनकी एक सगी सखी भी थी। उसके संसार पर मंडराते दुख के ये काले बादल देख कर मौसी जी बहुत व्यथित थीं। उनके स्वास्थ्य पर इन बातों ने बुरा प्रभाव डाला था। समिति के कार्य में व्यस्त रहते हुए भी वे निरंतर नानासाहब के स्वास्थ्य के बारे में चिंतित रहती थीं। समिति के कार्य के लिए प्रवास पे फिर भी करती रहीं। बेटों की ओर से वे अब निश्चित थीं। क्योंकि सभी ने अपने जीवन और व्यवसाय में स्थिरता पा ली थी। आनंद जहाज पर रहता था लेकिन बच्चों के लिए उसने पुणे में एक मकान ले रखा था। कमलाकर खेतीबाडी में अपनी जडे जमा रहा था। पद्माकर बंबई में था। रत्नाकर गोवा में तथा दिनकर एवं मनोहर नागपुर में ही बस गए थे। बेटों के बारे में तो वे पूर्ण संतुष्ट थीं। आर्थिक दृष्टी से भी उन्हें किसी बात की कमी नही थी। पति निधन के बाद कुछ वर्षों तक उन्हें पैसों की बडी तंगी का सामना करना पडा था। वह तंगी भी अब नहीं थी। रत्नाकर और आनंद ने उनके हिस्से में आया मकान बेच दिया था। उससे प्राप्त धन का पूरा ब्याज वे मौसी जी को भेजा करते थे। उनके कुछ शेअर्स वगैरा भी थे। समिति के कार्य के लिए मौसी जी अपना पैसा काफी खर्च करती थीं।

स्वास्थ्य तोन्नामासा ही था। फिर भी रामायण के कार्यक्रम अखंडित रूप से चल रहे थे। जनवरी १९७८ में हैद्राबाद (भाग्यनगर) में सम्मेलन था। उसकी तैयारी में यात्राएं और बैठकों का क्रम चल रहा था। इस सम्मेलन के समापन समारोह के अंतिम क्षणों में मंच पर ही मौसी

जी का जी अचानक घबराने लगा। सब ने सोचा कडाके की ठंड और तेज हवा का यह परिणाम होगा। सेविकाओं में भागदौड हुई। किंतु थोडी ही देर में मौसी कुछ संभली और उन्हे श्रीमती ब्रम्हापुरकर जी के घर ले जाया गया। डाक्टर का निदान था, अतिश्रम से आई थकान।

हैदराबाद के समेलन के बाद वे नागपुर लौटी। अब उनका वास्तव्य अधिकतर अहिल्या मंदिर में ही रहता था। मनोहर (बापूसाहब) का घर पास ही था। अत: उसके घर बीच बीच में वे हो आती थीं। शोभाताई भी मौसी जी से मिलने आती रहतीं। १९७८ में मौसी जी पद्माकर के पास बंबई आई थीं। उनका स्वास्थ्य दिनोदिन गिरता जा रहा था।

इसी बीच बंबई दूरदर्शन के 'सुंदर मेरा घर' कार्यक्रम में मौसी जी से भेटवार्ता का निर्णय लिया गया। दूरदर्शन केंद्र के तत्कालिन अधिकारी श्री. केशवराव केलकर ने कार्यक्रम की रुपरेषा निश्चित की। सरोजिनी वैद्य ने मुलाकात ली। साथ ही जयवंतीबेन मेहता ने भी मौसी जी से प्रश्न पूछे थे। मौसी जी के साथ कुसुमताई साठे भी थीं। जिन्हों ने मौसी जी को देखा नहीं था उन्हें दूरदर्शन पर उनके दर्शन हुए। सेविकाओं का तो मौसी जीपर इतना प्रेम था कि उन्होने दुरदर्शन पर दिखी उनकी छबी को ही नमस्कार किए थे। मौसी जी के दर्शन और उन्हें बोलता देखकर अनेक सेविकाएं अत्यानंद अनुभव कर रही थीं। तत्पश्चात मौसी जी नासिक में बैठक के लिए गईं। किंतु वहां भी स्वास्थ्य ठीक नहीं था। बंबई लौटते समय वे कार से आई किंतु बैठे बैठे उनके पैरों में सूजन आ गई थी। कदम उठाना भी उन्हें बहुत कष्टदायक प्रतीत हो रहा था। बंबई में पद्माकर के घर वे विश्रांति के लिए आई थीं। डाक्टरी उपचार चल रहे थे। वैसे मौसी जी ने दवा लेने में कभी लापरवाही नहीं बरती। जो कोई भी कुछ दवा बताता, वे उसे नियमित रुप से लेती रहतीं। वे जहां कहीं जातीं वहां की सेविकाएं उन्हें स्थानिक वैद्य या डाक्टर के पास चलने का अनुरोध करतीं। क्या डाक्टर और क्या वैद्यराज दोनों ही मौसी सी जी भी उन्हें कभी नाराज नहीं करती थीं। उनकी बहुत उनसे कहतीं, "मौसी जी आप दूसरों का मन रखने के लिए हर प्रकार के औषधों का सेवन करतीं हैं। परिणापत: क्लेश तो आप ही को सहने पडते हैं।" इस पर मौसी जी केवल हंस भर देतीं, किंतु उनकी आदत में कोई परिवर्तन नहीं होता था।

मौसी जी पूरा जून महिना बंबई में ही रहीं। तत्पश्चात नागपूर गईं और कुछ दिनों के लिए वर्धा भी हो आई। उस समय कुछ घरेलू प्रश्न निर्माण हो गए थे। किंतु वे अब बच्चों की गृहस्थी के थे। अत: उनके कारण परेशान न होने का मौसी जी ने मन बना लिया। प्रतिवर्ष की तरह अगस्त में नागपुर में बैठक हुई। इस बैठक के समापन समारोह का भाषण मौसी जी व्दारा दिया गया जो उनका अंतिम भाषण रहा। पता नहीं क्यों, उस दिन मौसी जी बहुत भावुक हो रहीं

थीं। सेविकाओं से उन्होने कहा कि, हमारे कार्य के लिए आज की परिस्थिती अनुकूल है। अब हमारी ओर से काम में कोई शिथिलता नहीं आनी चाहीए। सरकार का प्रखर विरोध होने पर भी हमने उठकर काम किया था। किंतु अब वह अडचन नहीं आयेगी। सेविकाओं को सूझ-बूझ का परिचय देना होगा। उन्हें कभी किसी बात में कम नहीं पडनी चाहिए। हमारी सेविकाओं का ज्ञान कम पडता है, क्यों कि वे पढती कम हैं। और पढती भी है तो उस पर विचार नहीं करतीं। जिस बात पर विचार नहीं किया जाता उसे आचरण में कैसा लाया जा सकेगा ? हमने सभी प्रांतों में प्रवेश किया है। आप जिस किसी प्रांत में काम करने जाती है, वहां भी भाषा, रितिरीवाज, वहां की माटी से एकरुप होकर काम करिए।"

१९७७ की भारतीय बैठक में प्रत्येक प्रांत के लिए एक एक भारतीय अधिकारी अभिभावक बनाया था। उनका भी मौसी जी ने मार्गदर्शन किया। उस वर्ष संपूर्ण भारत में पैंतीस स्थानों पर ग्रीष्मकालीन वर्ग आयोजित हुए थे। इन वर्गों का विवरण सुनकर मौसी जी को विशेष प्रसन्नता हुई थी। क्योंकी सभी स्थानों पर तरूण लडकियां शिक्षिका के नाते गई थी। संघ स्वयंसेवकों की उपस्थिती अब मैदानों पर आवश्यक नहीं लगती थी। अक्तूबर में अखिल भारतीय शिक्षिका वर्ग नागपुर में लेने का निर्णय इसी बैठक में लिया गया। इस वर्ग का उद्देश्य भारत में आयोजित सभी वर्गों के प्रशिक्षण में समानता बनाए रखना था। न केवल शारीरिक शिक्षण में समानता अपेक्षित थी, अपनी विचारधारा का प्रतिपादन भी एक सुर में हो ऐसा मौसी जी का आग्रह रहता था। तीन दिन की बैठक समाप्त हुइ। मौसी जी से सबने आज्ञा ली और सेविकाएं लौट गईं। तब किसी ने सोचा भी नहीं था कि मौसी जी की उपस्थिती में संचालित यह अंतिम बैठक होगी। किंतु मौसी जी की थकान, उनका गिरता स्वास्थ्य किसी भी से छिपा न था।

दिन तेजी से बीत रहे थे। गणेशोत्सव आया और बीत गया। अब नवरात्री उत्सव को सबको प्रतिक्षा थी। पितृ-कक्ष (पखवाडे) के अंतिम पांच दिन मौसी जी के रामायण कथन का कार्यक्रम था। कार्यक्रत का समय दोपहर का था और स्थान श्रीमती वत्सला ताई के घर के पास था। अत: मौसी जी उन्हीं के घर कार्यक्रम के लिए रहती थीं। भादों अमावस रामायण कथन का अंतिम दिवस था। अगले दिन प्रात: मौसी जी को वर्धा जाना था। वहां देवी के मंदिर में नवरात्री उत्सव प्रारंभ होने वाला था। देवी मंदिर की स्थापना के समय से मौसी जी उत्सव में वहीं ठहरती थीं। इस वर्ष भी वे जानेवाली थी। किंतु रामायण समाप्ति से पुर्व वे नहीं जा सकती थीं। अत: भादो अमावस की बजाए वे प्रतिपदा के दिन प्रात: वर्धा के लिए प्रस्थान करनेवाली थीं।

रामायण प्रवचन की समाप्ती पर वे घर लौंटी। उन्हें एक दो रेच हुए जिसके कारण उन्हें बहुत थकावट आ गई। वे चुपचाप लेट गई। वत्सलाताई ने उनकी पूछताछ की और वे भी सो गई। रात लगभग एक डेढ बजे मौसी जी का जी बहुत घबराने लगा। घर के सब लोग उनके पास आए। डाक्टर को बुलाया गया। मौसी जी को तुरंत अस्पताल ले जाने की राय उन्होंने दी। उन्हें दिल का जबरदस्त दौरा पडा था। वत्सलाताई के फोन करते ही प्रमिलाताई मुंजे गाडी लेकर आई और वत्सलाताई के सदस्योंके साथ मौसी जी को नागपुर मेडीकल कॉलेज अस्पताल ले गई। रात अमावस की थी। मानो नियति भविष्य की सूचना दे रही थी। वह रात सभी ने बडी बेचैनी में काटी। डाक्टरों की भागदौड देखते रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। मौसी जी के स्वास्थ्य के उतार चढाव का केवल अनुमान लगाया जा सकता था। भयानक शांति सर्वत्र फैली थी। मौसी जी के स्वास्थ्य के बारे में देश की सभी सेविकाओंको को सूचित करना आवश्यक था क्योंकि मौसी जी सभी की थी। अस्पताल से हटने के लिए कोई तैयार नहीं था। अंत में जी कडा करके प्रमिलाताई मुंजे ने व्यवहार और कर्तव्य निभाने के लिए अहिल्या मंदिर की ओर कदम बढाए। मौसी जी के परिवारवालों के साथ उषाताई वहीं रुकी थीं।

मौसी जी को अतिदक्षता विभाग में रखा गया था। डाक्टर किसी बात का भरोसा देने की स्थिति में नहीं थे। उपचार चल रहे थे। सबको मानो सांप सूंघ गया था। प्रमिलाताई मेढे उस समय सोलापूर बैठक के लिए गई थीं। ताई आपटे, बकुलताई आदि भारतीय अधिकारी भी सोलापूर में ही थीं। प्रमिलाताई मुंजे ने प्रातः साढे चार बजे मुझे बंबई फोन किया। और प्रमिलाताई को सुचित करने को कहा। मुझे पता था प्रमिलाताई सोलापुर से हैद्राबाद जानेवाली थीं। अतः मैंने सोलापूर और हैदराबाद फोन किए। उसी दिन दोपहर की गाडी से मैं और सुशीलाबाई वैद्य नागपुर के लिए चल पडी। गाडी में मौसी जी की बहु नलुताई से भेंट हुई। नागपुर पहुंचते तक किसी के होश ठिकाने पर नहीं थे। अप्रिय आशंका मन में उठ रही थी। दूसरे दिन मौसी जी के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। अस्पताल में मौसी जी लडके और नागपुर की सेविकाएं उपस्थित थीं। थोडा अच्छा लगने पर मौसी जी ने वर्धा के उत्सव के बारे में पूछताछ की।

अगले दिन हैदराबाद से प्रमिलाताई, पुणे से ताई आपटे और बंबई से बकुल ताई भी आ पहुंची। अस्पताल की बाह्य दीर्घा को किसी शिबिर का स्वरुप आ गया था। प्रमिलाताई मेढे के साथ एक दो अन्य सेविकाओं ने तो वहीं अपना डेरा डाल दिया था। सुशीलाबाई वैद्य भी मौसी जी की परिचर्या के लिए वहीं रुकी थीं। सबने मौसी जी की देखभाल में दिन-

रात एक कर दिए थे। जिसे जो उपाय सुझता, वह डाक्टर की अनुमति से वही कर रहा था। मौसी जी के सब बहु बेटे मौसी जी से मिलने आए थे। पद्माकर ने एक महिने का अवकाश लिया था। वे चौबीस घंटे मौसी जी की सेवा में जुटे हुए थे। मौसी जी से सबका असीम प्रेम था यही प्रतीत हो रहा था। मौसी जी को देखने दूर से सेविकाओं को आयीं देखकर वहां की परिचारिकाएं भी दंग रह गई थीं। अपर्याप्त स्थान के कारण अतिदक्षता विभाग में मौसी जी की अपेक्षित देखभाल करना संभव नहीं हो रहा था। मौसी जी के कक्ष में ही एक बुरी तरह पीडित मुसलमान रोगी था। उसका तडपना देख मौसी जी रात रात तक सो नहीं पाती थीं। हार्दिकता से उनकी पूछताछ करती थीं। उस अवस्थामें भी मौसी जी ने उस मुसलमान परिवार पर इतना प्रेम बरसाया कि मौसी जी के निधन पर उस परिवार की ओर सेभी मौसी जी को फुलमाला चढाई गयी थी। वे भले ही किसी का सैद्धान्तिक विरोध करती रही हों, किंतु मनुष्य के नाते वे सभी से बडा प्रेम करती थीं। अस्पताल की परिचारिकाओं के साथ भी वही बात थी। वे सभी मौसी जी की मन लगाकर देखभाल करती थीं। वहां के रोगियों और कर्मचारियों को लगता कि मौसी जी निश्चय ही बहुत बडी हस्ती हैं।

मौसी जी को अस्पताल आए पंधरह-बीस दिन हो गए थे। स्वास्थ्य में धीरे धीरे सुधार हो रहा था। आशा की किरण दिखाई देने लगी थी। सभी के चेहरे खिल उठे। मौसी जी को अब दूसरे कक्ष में रखा गया। कुछ देर बैठकर वे बोलने लगी थीं। एक दिन वे सुशीलाबाई से बोली, '' सुशीलाबाई मैं ठीक होजाऊं तो ठाणे में आपके घर आऊंगी। चलेगा ?''

''यह भी कोई पूछने की बात है मौसी जी ? घर आप ही का है।'' सुशीलाबाई ने कहा।

वहां उपस्थित गोखले भाभी, प्रमिलाताई आदि से मौसी जी ने कहा ''भाभी ठीक हो जाने वर मैं घर जाना नहीं चाहती। वानप्रस्थ अनुभव करना चाहुंगी। रहने को क्या कई घर हैं मेरे। कभी नासिक, कभी ठाणें और कभी अहल्या मंदिर।'' भाभी बोली ''अवश्य; सभी घर आप ही के है।''

मौसी जी सदैव कहा करती थी, 'मैं अपने जीवन का नौवा शतक तो पूरा कर ही लूंगी।' ऐसी उनकी तीव्र इच्छा थी।

मौसी अस्पताल में थीं तभी अहल्या मंदिर में शिक्षिकाओं का पूर्व नियोजित वर्ग प्रारंभ हुआ। मौसी जी ने उसकी पुरी पूछताछ की। कहां कहां से कितनी सेविकाएं आई हैं आदि संपूर्ण विवरण देखा। प्रतिदिन कार्यक्रम का वृत्त वे पुछा करती थीं। वर्ग के लिए सभी प्रांत

की सेविकाएं आई थी। उनकी भी मौसी जी से भेंट हो पाई थीं।

मौसी जी के स्वास्थ्य में सुधार हो रहा था। चार-पांच दिनों में घर जाने की अनुमति मिल जायेगी ऐसा डाक्टर साहब नें कहा था। सभी आनंदित थीं। सभी अचानक एक दिन वे पुनः अस्वस्थ हो गईं। परिचारिकाओं की भागदौड प्रारंभ हो गई। डाक्टरोंने अविलंब निर्णय लिए और आवश्यक औषधोपचार शुरु कर दिए। मौसी जी को पुनः अतिदक्षता विभाग में रखा गया। सब के हाथ पांव फूले जा रहे थे। तत्कालीन महाराष्ट्र सरकार की स्वास्थ्य मंत्री डा. प्रमिलाताई टोपले थीं। वे भी मौसी जी को देखने आई थीं। फिर एक बार देशभर में टेलिफोन खनखना उठे। ताई आपटे और बकुलताई को नागपुर बुलवाया गया। नागपुर आए भारतीय अधिकारी वहां पहले से ही थे। अपने इन सहयोगियों को बुलाकर मौसी जी ने कहा, "आप सब एकजुट होकर काम कीजिए। अब मेरे स्थान पर ताई आपटे आपका मार्गदर्शन करेंगी।"

मौसी जी की हालत थोडी संभली। नागपुर के बजाय उन्हें बंबई के 'जसलोक' अस्पताल में रखा जाए ऐसी सबकी इच्छा थी। डा. प्रमिलाताई टोपले से इस बारे में बातचीत भी हुई। किंतु उन्होने कहा कि मौसी जी नागपुर से बंबई लाई जाने की स्थिती में नहीं है। मौसी जी के परिवार में सभी आर्थिक दृष्टीसे समृद्ध थे और उनके लिए कुछ भी करने को तैयार थे। उनके अनेक हितैषियों ने भी हर प्रकार सहायता की तैयारी दर्शाई थी। हर कोई सहायता के लिए तत्पर था। कई लागों ने कहा था कि, " पैसों की चिंता न करें। चाहे कितना ही पैसा क्यों न लग जाए, प्रयत्नों में कोई कसर न छोडें।"

मौसी जी के स्वास्थ्य लाभ के लिए सेविकाओंने विभिन्न स्थानों पर जप-जाप, पुजा-अर्चा और व्रत आदि प्रारंभ किए थे। कल्याण की सेविकाओं ने तो मृत्युंजय जप करवाया था। मौसी जी के लिए उनके बंधु वामनराव दाते पुणें से नागपुर पहुंचे। वे दिन-रात मौसी जी के पास ही रहते थे। भाई बहन खूब गपशप करते रहते। स्वास्थ्य की उस नाजुक अवस्था में भी मौसी जी ने एक दिन श्री. ना.भा. खरे लिखित "मेरे काँग्रेस जीवन कें दो दशक" पुस्तक भाई से मंगवाई, पढी और उस पर वामनराव से चर्चा भी की।

एक दिन मौसी जी ने अपने लडकों से कहा कि, 'मेरे औषधोपचार पर समिति का पैसा खर्च न होने दे। मैं चाहती हूं कि खर्च आप लोग ही करें। मुझसे मिलने अनेक बहनें शहर से आती हैं। उनका रिक्शा बस आदि का खर्च हो वे उन्हें पूछकर दे डालिए। "बेटों ने कहा, "आप कोई चिंता न करें। जैसा आप चाहेगी वैसा ही होगा।" यह कहकर मौसी जी के सामने कमलाकर ने खर्च के लिए छह हजार रुपये प्रमिलाताई को दिए।

मौसी जी ने जीवनभर पैंसो का व्यवहार एकदम चोखा रखा था। शाखा का बहिखाता वे स्वयं जांचती थीं। उसमें जरा सी लापरवाही भी उन्हें गंवारी नहीं होती थी। उनके व्यक्तिगत जमा खर्च की बहियों में एक एक पैसे का हिसाब लिखा रहता था। बेटों, बहुओं और पोतेवालों के जन्म दिवस वे कभी भूलती नहीं थीं। उन्हें उपहार में दी भेटवस्तु ओं का ब्यौरा भी उन बहियों में मिलता था। हिसाब का यह चोखापन उन्होने बिमारी में भी नहीं छोडा। मौसी जी का स्वास्थ्य घडी में तोला घडी में माशा हो जाया करता था। ऐसे में १५ नवंबर के आसपास मौसी जी के स्वास्थ्य में पुन: गंभीर गिरावट आई । बंबई के 'जसलोक' अस्पताल के हृदयरोग तज्ज्ञ डा. अश्विन मेहता को बुलाने का निर्णय लिया गया। नागपुर से फिर एक बार प्रात: मुझे फोन आया। अश्विन मेहता जैसे वरिष्ठ डाक्टर से सीधे संपर्क करना मुझे कुछ कठिन प्रतीत हो रहा था। अत: तत्कालीन राजस्व मंत्री श्री. उत्तमराव पाटील को फोन किया। बीच बैठक में फोन आने के कारण मुख्यमंत्री श्री. शरद पवार को भी मौसी सी जी की बिमारी का पता चला और सब चक्र धडाधड घूमने लगी।

सुबह ग्यारह बजे के आसपास जसलोक से डाक्टर अश्विन मेहता जी का फोन आया। "मुख्यमंत्री ने मुझे संदेश भेजा है कि नागपुर में किसी रोगी को देखने जाना है । यह महत्त्वपुर्ण रोगी कौन है ?" डाक्टर साहब ने मुझसे पूछा। हवाई जहाज से जाने का तुरंत प्रबंध करने की उन्होने सूचना दी और स्वयं नागपुर फोन करके रोगी के केस पेपर्स तैयार रखने को कहा।

दिनभर के प्रयासों के पश्चात दिनांक १७ के हवाई जहाज की टिकटे मिलीं और डाक्टर मेहता ने नागपुर के लिए प्रस्थान किया। उन्होने मौसी जी को भली भांति जांचा लेकिन उन्हें भी स्वास्थ्य विशेष आशादायक नहीं लगा । उन्होने वहां के डाक्टरों को बताया कि उपचार की उनकी दिशा उचित है। फिर भी कोई अडचन आ जाए तो अवश्य संपर्क करें। नागपुर के डाक्टरोंने डा. मेहता से निरंतर संपर्क बनाए रखा था।

स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। इसी प्रकार प्रगति होती गई तो चार-आठ दिनों में घर जाने की अनुमति मिल सकेगी ऐसा डाक्टरों का कहना था। मौसी जी अब एक स्वतंत्र कक्ष में थी। समिति की बैठकें वहीं होती रहतीं । प्रमिलाताई मेढे मौसी जी से एक क्षण भी दूर रहना नहीं चाहती थी। दिन रात वे उन्हीं के पास रहतीं। दिपावली अस्पताल में ही बीती। समिति के विस्तार की दृष्टी से अनेक पहलुओं पर विचार विनिमय वहीं हुआ। इसके लिए एक विस्तृत योजना भी बनाई गई। बंगलौर के आगामी समेंलन का भी विचार किया गया। मौसी जीने इस बारे में कुछ सुचनाएं दीं। मौसी जी के मन में दिन रात सिवाय समिति के कोई और बात आती ही नहीं थी। कभी कभी मध्यरात्री में भी वे प्रमिलाताई को पुकारती और अपने विचार बताया

करतीं। ऐसे ही एक रात को मौसी जी ने उन्हें पुकारा। समिति के विस्तार की ही बात वे कह रही थीं। वे बोली, 'प्रमिला, समिति को आत्मनिर्भर होना चाहिए। समिति कार्य की व्याप्ति बढती जा रही है। आप सब मिल जुलकर, एक दुसरे को संभाल कर समिति के कार्य को अधिकाधिक बढाएं।

दिन बीत रहे थे।सभी की आशा पल्लवित हो रही थी। इंदौर से मौसी जी की बहन अब आई थीं। इंदौर की शाखा के बारे में वे मौसी जी से खुलकर बातचीत करती थीं। मौसी जी के भाई वामनराव भी वहीं थे। दोनों भाई बहन अक्का से जी भरकर गपशप करते। बचपन की यादें निकलतीं जो कभी आनंद देती तो कभी क्लेष। मौसी जी के सभी बेटें उनसे मिल चुके थे। उनके मानसपुत्र दत्तोपंत वैशंपायन भी बीच बीच में आते रहते थे। केवल छोटा बेटा आनंद एक बार भी नहीं आ पाया था। तब उसे छुट्टी नहीं मिल रही थी। आनंद को थोडा भी पितृसुख नहीं मिला था। इसी कारण मौसी जी का वह सबसे अधिक लाडला था।

२६ नवंबर को नागपुर की कुछ सेविकाएं मौसी जी से मिलने आईं थी। मौसी जी ने उन्हें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की जयंति का स्मरण कराया और कहा, " रानी की प्रतिमा केवल हार चढाने की बजाए उसे मानवंदना दीजिए। " यही नहीं, उन्होने यह भी कहा कि , " हवा के कारण जलते दीपक बुझ सकते हैं अत: उन पर लालटेन की कांच अवश्य डालें।" इतनी अस्वस्थ होने पर भी रानी की जन्मतिथी का उन्हें स्मरण था। और साथ ही कार्यक्रम के आयोजन की बारीकियों का भी। रानी लक्ष्मीबाई, जिजाबाई, अहिल्याबाई, स्वतंत्रता सेनानी सावरकर, लो. तिलक और सभी देशभक्तों के प्रति मौसी जी के मने में अपार आदर था। वे उनकी निस्सीम भक्त थीं।

कार्तिक कृ. एकादशी २६ नवंबर की रात। सदा की भांति प्रमिलाताई ने मौसी जी को सारी दवाईयां दीं। परिचारिका नित्य की जांच पडताल कर गई। मंगला जोशी और शालू माडक मौंसी जी के कक्ष के बाहर बैठी थीं। मौसी जी सो रही थीं। प्रमिलाताई भी सो गई । रात के डेढ बजे के आसपास मौसी जी ने प्रमिलाताई को पुकारा। वे तपाक से उठीं । मौसी जी को बेडपैन चाहिए था। सो उन्होने दिया। गर्दन के नीचे हाथ देकर मौसी जी को बैठाया। तभी मौसी जी ने बडे विचित्र ढंग से गर्दन हिलाई और आंखे फैला दीं। बरामदे में बैठी सेविकाए और रिश्तेदार हडबडाकर जाग गए। सब की दौड भाग प्रारंभ हुई। डाक्टरों ने अपने प्रयास में कोई कसर नहीं छोडी। सभी संभव उपाय किए गए किंतु सफलता नहीं मिली। जीवनभर अडचनों का सामना करता रहा मौसी जी का जीवात्मा कोई पौने दो महिनों तक इस बीमारी से सारी शक्ति लगाकर जुझता रहा था। अंत में उनकी जरा जर्जर काया हार

गई। आत्मा को पकडे रखने की उसकी शक्ति समाप्त हो गई और अनगिनत प्रियजनों को दुख के संताप मे धकेल कर मौसी जी की आत्मा पंचत्व में विलिन हो गई।

जो होना था, सो हो गया था। अब आगे का प्रबंध जल्दीसे किया जाना था। प्रमिलाताई मुंजे ने लगभग सारे देश में फोन किए। आकाशवाणी ने भी अपने प्रात: समाचारों में यह दुखद समाचार देश को दिया। सभी सेविकाओं पर मानो आकाश टूट पडा। स्थान स्थान पर क्या शहरों में क्या गांवो में सेविकाएं एक दूसरी से मिलकर समाचार की सत्यता को परखने लगीं। समाचार तो सत्य ही था। सभी स्थानों की प्रमुख कार्यकर्त्रियां जो मिला सो वाहन लेकर नागपुर आने के लिए चल पडी। पास पडोस की सेविकाएं दोपहर से ही नागपुर के अहल्या मंदिर में आने लगीं। दूर-दूर की सेविकाओं का इतने शीघ्र नागपुर पहुंचना संभव नहीं था। अत: दिनांक २८ की दोपहर तक मौसी जी का पार्थिव शरीर दर्शनार्थ रखने का निर्णय लिया गया।

अधिकतर सेविकाएं बडी संख्या में बंबई पुणे से ही आनेवाली थीं। ताई आपटे अपनी नातिन के विवाह के लिए कल्याण गई थीं। उन्हें बंबई से संदेशा भिजवाया गया। बंबई से सेविकाए नागपुर पहुंची । पुणे से भी बडी संख्या में सेविकाएं आई थीं। मौसी जी का पार्थिव शरीर अहल्या मंदिर में दर्शन के लिए रखा। दर्शनियों का तांता लग गया था। संघ के बयोवृद्ध नेता अप्पाजी जोशी भी आए थे। वे तो अपना दुख रोके नही पा रहे थे। संघ के अनेक अधिकारी भी मौसी जी को श्रद्धाजंली अर्पित कर गए थे। अहल्या मंदिर में सैंकडो सेविकाएं थी किंतु कहीं पर किसी प्रकार की कोई अव्यवस्था नही थी न ही था कोई ऊहापोह। सभी सेविकाओं के लिए उचित प्रबंध कर दिया गया था। सेविकाएं नौ नो आंसू रो रहीं थीं। दोपहर चार बजे मौसी जी की अंत्ययात्रा प्रारंभ हुई। फुलों से सजाए गए ट्रक पर मौसी जी की पार्थिव देह रखा गया था। मौसी जी के पुत्र तथा प्रमिलाताई मेढे, मैनाताई गोखले, प्रभाताई देशपांडे ट्रक पर बैठे थे। ट्रक के पीछे पीछे समिति की सभी अखिल भारतीय अधिकारी, नगर की गण्यमान्य महिलाएं और उनके पीछे असंख्य सेविकाएं मौन चल रही थीं। अनुमान है कि कोई पांच-छह हजार महिलाएं इस अंत्ययात्रा में थी। चार पांच सौ बंधु भी चल रहे थे। एक महिला की अंत्ययात्रा में इस प्रकार हजारों महिलाओं का शामिल होना अपने में एक अद्‌भुत बात थी। नागपुरवासी यह दृष्य देखकर चकित रह गए। मार्ग में मौसी जी को सैकडों पुष्पमालाएं चढाई गईं। यह अंत्ययात्रा जिस किसी विद्‌यालय से होती हुई जाती, विद्‌यालय के छात्रों को पढाई रोक कर अनुशासन में बाहर लाया जाता और मौसी जी का अंत्यदर्शन कराया जाता था। यह बात स्वयंप्रेरित थी। अंत्ययात्रा दो घंटे चलकर अंत में श्री शक्ति पीठ

के प्रांगण में आई । मौसी जी के पार्थिव देह को वहां रखा गया। हजारो सेविकाओं ने अपनी इस प्राणप्रिय प्रमुख संचालिका को आंसुभरी आंखो से 'अंतिम प्रणाम' दिया। यही पर भारतीय बौद्धिक कार्यवाहि का कुसुमताई साठे ने घोषित किया कि स्वर्गवासी मौसी जी की अंतिम इच्छा के अनुसार अब श्रीमती ताई आपटे समिति की प्रमुख संचालिका होंगी। मौसी जी के पार्थिव देह को पुनः ट्रकपर रखा गया और यात्रा आगे बढी। उनके पुत्र और कुछ पुरुष अग्नि संस्कार के लिए आगे बढे। अब तक रोके रखा आंसु ओं का बांध टूट गया। सेविकाएं फूट फूटकर रोने लगीं। सिसकियां थामे नहीं थमती थीं। देरी से पहुची सेविकाएं अब भी चली आ रहीं थीं।

ताई जी आपटे ने सबको लौट जाने के लिए कहा। अब सब कुछ समाप्त हो गया था। एक निरंतर जलता दीप्तीमान दीपक शांत हो गया था। अब मौसी जी का वह शांत शुभ्र वेशधारी तथा सात्विक रूप अदृश्य हो गया था। उनकी आग्रही किंतु मृदुवाणी सदा के लिए मौन हो चुकी थी। अब वह किसी को सुनाई नहीं दे सकती थी। प्रत्येक कार्यक्रम नियत समय पर हो इसके लिए उनकी दक्षताभरी भागदौड अब समाप्त हो चुकी थी।सारा जीवन नारी- शक्ति केजागरण के लिए तथा हिंदु संगठन के लिए चंदन की भांति गलाने वाली मौसी जी चिरविश्राम के लिए चली गई थीं। यह बोध सभी सेविकाओं को अत्यंत बेचैन और आमुल कर रहा था। पथराए मन और भारी चरणों से मौसी जी को प्रणाम कर सभी सेविकाएं लौट गईं। एक समर्पित जीवन पंचत्व में विलिन हो गया। लाखों स्वर गुंज उठे -

लो प्रणाम कोटि करों का
कृतज्ञता से करते वंदन ॥
असंख्य उरों में भक्ति तुम्हारी
नयनों में हैं मूर्ति तुम्हारी
अचेत मन की तु ही प्रेरणा
स्मरण तुम्हारा पवित्र पावन ॥१॥
देखी तुममें प्रसन्न कमला
मूर्त तुम ही में उमा अमला
सरस्वती नित जागत तुम मे
पाया तव विविधांगी दर्शन ॥२॥

हो हिमनग की भव्य धवलता
तुम गंगासम पावन सरिता
गीता हो भगवान कृष्ण की
तुम्हारा मन में पूजन ॥३॥
अबला को प्रबला करने हित
देह गलाया चंदनसम नित
राष्ट्रोन्नति का मार्ग दिखाया
चुकता होगा क्या यह तव ऋण ? ॥४॥
राष्ट्रसेविका समिति बनाकर
राष्ट्रभक्तिका दीप जलाकर
कर्तव्य का बोध जगाया
किया देश को सर्वस्वार्पण ॥५॥

मौसी जी का जीवनपट

६ जुलाई, १९०५	-	आषाढ़ शु ।। १० जन्म।
१९११	-	पाठशाला में प्रवेश।
जून, १९१९	-	विवाह।
१९२०	-	प्रथम पुत्र मनोहर का जन्म।
१९२८	-	मौसी जी को गंभीर रोग।
६ जुलाई, १९३२	-	पति श्री. भाऊराव का निधन।
१९३४-१९३५	-	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार जी से भेंट तथा विचार विमर्श।
१९३६	-	विजयादशमी - राष्ट्र सेविका समिति का शुभारंभ।
१९३६-१९४२	-	महाराष्ट्र में तथा बाहर समिति के कार्य का विस्तार।
१५ अगस्त, १९४७	-	देश का विभाजन तथा मौसी जी द्वारा सिंध की सेविकाओं के एकत्रिकरण के लिए कराची भेंट, (उपस्थिति १२००).
३० जनवरी १९४८	-	महात्मा गांधी की हत्या एवं संघ पर प्रतिबंध - समिति का कार्य स्थगित।
१९४९	-	संघ पर से प्रतिबंध हटा।
१९५०	-	समिति के कार्य का पूर्ववत पुनरारंभ, रामायण कथा का शुभारंभ।
१९५३	-	भारतीय स्त्री जीवन विकास परिषद की मुंबई में स्थापना। छात्राओं के लिए अलग पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए गृहिणी विद्यालय की स्थापना।

१९५८	-	नासिक में राणी लक्ष्मीबाई स्मारक की स्थापना।
१९५८	-	रामायण प्रवचनों के माध्यम से समिति के कार्य का विस्तार। प्रार्थना केंद्र एवं उत्सव शाखाएं खोली गई। नागपूर में राणी लक्ष्मीबाई भजन मंडल की स्थापना।
१९६१	-	वर्धा में सम्मेलन। समिति के २५ वर्ष के कार्य का सिंहावलोकन। जेठानी उमाबाई केलकर का निधन।
१९६४	-	मौसी जी की षष्ट्यब्दिपूर्ती के निमित्त नागपुर में सम्मेलन तथा अहल्यादेवी मंदिर की स्थापना।
१९६६	-	नासिक में अधिकारी प्रशिक्षण वर्ग।
१९६७	-	देश भर में भगिनी निवेदिता की जन्म शताब्दि संपन्न
१९६९	-	मुंबई में राजमाता जिजाबाई ट्रस्ट की स्थापना।
१९७२	-	वर्धा में अष्टभुजा देवी के मंदिर का निर्माण।
१९७४	-	जिजामाता की ३००वी पुण्यतिथि के निमित्त उनके जन्मस्थान में मौसी जी की प्रेरणा से उत्सव।
१९७५	-	देशभर में आपात स्थिति की घोषणा किन्तु समिति का कार्य जारी।
१९७६	-	ठाणें में जिजामाता ट्रस्ट में अधिकारी प्रशिक्षण वर्ग तथा कन्याकुमारी की यात्रा।
१९७७	-	स्वास्थ्य गिरना प्रारंभ।
२७ नवंबर १९७८	-	मृत्यु।

॥ श्री अष्टभुजा देवी ॥

सर्व मंगल मांगल्ये, शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरी, नारायणी नमोऽस्तु ते ॥